बी. ए. (हिन्दी)

(प्रथम वर्ष)

BHIN 101

INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION
IDE
Rajiv Gandhi University

www.ide.rgu.ac.in

सामान्य हिन्दी-एक

सामान्य हिन्दी–एक

बी.ए. (हिंदी)

(प्रथम वर्ष)

BHIN 101

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA - 791 112

BOARD OF STUDIES

Dr. Vinod Kr. Mishra Head Department of Hindi Tripura University, Suryamaninagar Tripura (W)	**Chairman**
Dr. Oken Lego Associate Professor Department of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Amarendra Tripathi Assistant Professor Department of Hindi Hari Singh Gaur University Sagar, Madhya Pradesh	**Member**
Mr. Abhishek Yadav Assistant Professor Department of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. H.K. Sharma Head Department of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member Secretary**

Authors

Dr. Ashutosh Kumar Mishra, Assistant Professor, Department of Hindi, Dr. Hari Singh Gaur Vishwavidhyalaya, Sagar, (MP)

Dr. Amrendra Tripathi, Associate Professor, Department of Hindi, Mahatma Gandhi Kendriya Vishwavidhyalaya, Motihari, Bihar

Copyright © Reserved, 2017

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Information contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE—Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7361, Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110 055
Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गांधी विश्वविद्यालय (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च शिक्षा संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने, जो तत्कालीन प्रधानमंत्री थीं, 4 फरवरी, 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी। यहीं विश्वविद्यालय का वर्तमान कैंपस विद्यमान है।

आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित हैं। 28 मार्च, 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12-V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल, 2007 से, विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अद्भुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि. मी. और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए हैं कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक, स्नातकोत्तर, एम. फिल व पी. एच. डी. कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी. एड. का कोर्स भी चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध हैं। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फंडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही, विभिन्न फंडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है। देश–विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए हैं।

2000–2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढ़ीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामतः छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया। बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया। यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है। परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती हैं और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं। विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए हैं बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं, उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं।

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है।

आईडीई : एक परिचय

हमारे देश में उच्च शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों, सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। विभिन्न विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते हैं कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण सीखना और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिक–आर्थिक बाधाओं को दूर करने का वैकल्पिक माध्यम है। यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है, जो अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते हैं मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार व कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नहीं निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते, विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तर–पूर्वी भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में। सन् 2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर 'दूरस्थ शिक्षा संस्थान' (आईडीई) रखा गया।

दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने 2013–14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों (शिक्षा, अंग्रेजी, हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञान) को शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन (पहली मंजिल) का निर्माण किया गया है। विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती हैं।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

1. **नियमित माध्यम के समकक्ष**–पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।
2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री (एसआईएसएम)**– छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरस्थ शिक्षा परिषद (डीईसी), नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रवेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।
3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)**– शैक्षिक कार्यक्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7–15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बी.ए. पाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम.ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी।
4. **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट**– व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।
5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम**–परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।
6. **विषय परामर्श संयोजक**– पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं। ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

सामान्य हिन्दी–एक

Syllabi	Mapping in Book
इकाई 1 : हिन्दी साहित्य का इतिहास हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण, आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल की परिस्थितियां एवं प्रवृत्तियां।	इकाई 1 : हिंदी साहित्य का इतिहास **(पृष्ठ : 3–50)**
इकाई 2 : कविता–1 पाठ्य–पुस्तक : काव्य गौरव; सम्पा. –रामदरश मिश्र; वाणी प्रकाशन, दिल्ली o कबीरदास : पाठ्य–अंश– साधु को अंग। आलोचना – भक्ति एवं सामाजिक पक्ष। o सूरदास : पाठ्यांश– विनय के पद तथा वात्सल्य (गोकुल लीला) से प्रथम तीन पद। आलोचना – वात्सल्य एवं भक्ति। o जायसी : पाठ्यांश – पदमावत : उपसंहार खण्ड; प्राचीन काव्य संग्रह, सम्पा.– राजदेव सिंह, वाणी प्रकाशन दिल्ली o तुलसी : पाठ्यांश – पद संख्या 1, 6 एवं 8। आलोचना – भक्ति भावना एवं समन्वयवाद।	इकाई 2 : कविता – 1 **(पृष्ठ : 51–109)**
इकाई 3 : कविता–2 o मीराबाई : मीराबाई की पदावली; सम्पा.– परशुराम चतुर्वेदी; पद संख्या– 10, 17, 18, 35। आलोचना – मीरा की भक्ति एवं विद्रोह भाव o बिहारीलाल : पाठ्यांश– भक्ति : दोहा संख्या – 1, 5, 9, नीति : 2, 3; नायिका वर्णन– 2, 4 तथा विरह– 5। o घनानन्द : घनानन्द के पद; प्राचीन काव्य संगह; सम्पा.– राजदेव सिंह; वाणी प्रकाशन, दिल्ली; पद सं. – 1, 3, 11, 12। आलोचना – घनानन्द का प्रेम एवं भक्ति, रीतिमुक्त कविता के रूप में घनानन्द का मूल्यांकन। o मैथिलीशरण गुप्त : भारत की श्रेष्ठता आलोचना – काव्यगत विशेषताएं, राष्ट्रीय चेतना।	इकाई 3 : कविता – 2 **(पृष्ठ : 111–159)**
इकाई 4 : व्याकरण पाठ्य–पुस्तक : आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना– वासुदेवनन्दन प्रसाद सिंह पाठयांश–लिंग, कारक, वचन, काल, वाक्य–शुद्धि, विलोम शब्द, पर्यायवाची शब्द तथा मुहावरे एवं लोकोक्तियां।	इकाई 4 : व्याकरण **(पृष्ठ : 161–221)**
इकाई 5 : निबंध–लेखन निम्नलिखित में से किसी एक विषय पर निबन्ध लेखन: o विज्ञान से संबंधित विषय। o समसामयिक विषय। o अरुणाचल प्रदेश से संबंधित विषय। o हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं से संबंधित विषय।	इकाई 5 : निबंध–लेखन **(पृष्ठ : 223–253)**

विषय–सूची

परिचय 1

इकाई 1 हिंदी साहित्य का इतिहास 3–50

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 हिन्दी साहित्य का आरंभ
1.3 हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन एवं नामकरण के कारण एवं आधार
1.4 हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण की परंपरा
1.5 हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण
1.5.1 आदिकाल का काल–विभाजन
1.5.2 आदिकाल का नामकरण
1.5.3 भक्तिकाल का काल–विभाजन और नामकरण
1.5.4 रीतिकाल का काल–विभाजन और नामकरण
1.5.5 आधुनिक काल का काल–विभाजन और नामकरण
1.6 आदिकाल
1.6.1 आदिकाल की परिस्थितियां
1.6.2 आदिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां
1.7 भक्तिकाल
1.7.1 भक्तिकाल की परिस्थितियां
1.7.2 भक्तिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां
1.8 रीतिकाल
1.8.1 रीतिकाल की परिस्थितियां
1.8.2 रीतिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां
1.9 सारांश
1.10 मुख्य शब्दावली
1.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.12 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 2 कविता – 1 51–109

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 कबीरदास : सामान्य परिचय
2.2.1 कबीरदास–पाठ्यांश
2.2.2 कबीरदास की भक्ति–भावना
2.2.3 कबीरदास का सामाजिक पक्ष
2.3 सूरदास : सामान्य परिचय
2.3.1 सूरदास–पाठ्यांश
2.3.2 सूरदास का वात्सल्य–वर्णन
2.3.3 सूरदास की भक्ति–भावना
2.4 जायसी : सामान्य परिचय
2.4.1 जायसी : पाठ्यांश

2.5 तुलसीदास : सामान्य परिचय
2.5.1 तुलसीदास : पाठ्यांश
2.5.2 तुलसीदास की भक्ति–भावना
2.5.3 तुलसीदास का समन्वयवाद
2.6 पारिभाषिक शब्द
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 3 कविता – 2 111–159
3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 मीराबाई : सामान्य परिचय
3.2.1 मीराबाई : पाठ्यांश
3.2.2 मीरा की कविता में विद्यमान विद्रोह भावना
3.3 बिहारी : सामान्य परिचय
3.3.1 बिहारी की काव्यगत विशेषताएं
3.3.2 बिहारी की बहुज्ञता
3.4 घनानन्द : सामान्य परिचय
3.4.1 घनानन्द की प्रेम साधना और भक्ति
3.4.2 रीतिमुक्त कवि के रूप में घनानन्द का मूल्याकंन
3.5 मैथिलीशरण गुप्त : सामान्य परिचय
3.5.1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत की श्रेष्ठता
3.5.2 मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताएं
3.5.3 मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 4 व्याकरण 161–221
4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 लिंग
4.3 कारक
4.4 वचन
4.5 काल
4.6 वाक्य–शुद्धि
4.7 शब्द–अर्थ संबंध
4.8 विलोम शब्द
4.9 पर्यायवाची शब्द
4.10 मुहावरा
4.11 लोकोक्तियां (कहावतें)
4.11.1 मुहावरा और कहावत (लोकोक्ति) की तुलना
4.12 सारांश
4.13 मुख्य शब्दावली
4.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 5 निबंध–लेखन 223–253
5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 निबंध क्या है?
5.3 निबंध की परिभाषा
5.4 निबंध के प्रकार
5.5 निबंध के तत्व
5.6 निबंध–लेखन कैसे करें?
5.7 निबंध लेखन की विशेषताएं
5.8 निबंध लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियां
5.9 निबंध–लेखन
5.9.1 विज्ञान विषय से संबंधित निबंध
5.9.2 समसामयिक विषय से संबंधित निबंध
5.9.3 अरुणाचल प्रदेश से संबंधित विषय
5.9.4 हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं से संबंधित निबंध
5.9.5 अन्य विषय
5.10 सारांश
5.11 मुख्य शब्दावली
5.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'सामान्य हिन्दी' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.ए. हिन्दी, प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। हिन्दी भाषा समस्त भारत को एकतासूत्र में बांधकर, संपर्क भाषा के रूप में स्थापित होकर सर्वाधिक जनसमुदाय की भाषा का स्थान ग्रहण कर चुकी है। उत्तर भारत के अधिकांश भूभाग की भाषा तो यह है ही, भारत के अन्य भागों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन से हम हिन्दी के क्रमबद्ध सोपानों से अवगत हो सकते हैं। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल 'स्वर्णयुग' कहलाता है। इसी युग मे, कबीर, सूरदास, जायसी, तुलसीदास, मीरा सरीखे महान कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जन–जन को अभिभूत किया। बाद के वर्षों में भी बिहारी से लेकर मैथिलीशरण गुप्त के नाम उल्लेखनीय कहे जाते हैं। व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा उचित भाषा होने का गौरव भी हिन्दी को प्राप्त है। हिन्दी लेखन की एक प्रमुख विधा गद्य–लेखन है। रामचंद्रशुक्ल तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों के अध्ययन से हम निबंध लेखन की कला को संपूर्ण रूप से समझ सकते हैं।

इस पुस्तक में हिन्दी साहित्य के आरंभ से लेकर आधुनिक युग की कविता तक का अध्ययन विस्तार से किया गया है। हिन्दी व्याकरण एवं निबंध लेखन के विषयों का भी सविस्तार वर्णन इस पुस्तक का प्रमुख बिंदु है। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में बांटा गया है। प्रत्येक इकाई के आरंभ में विषय का विश्लेषण करने से पूर्व उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता परखने हेतु प्रश्न दिए गए हैं। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में हिन्दी साहित्य के काल विभाजन, नामकरण एवं भक्तिकाल और रीतिकाल की प्रवृत्तियों के संदर्भ में अध्ययन किया गया है।

दूसरी इकाई 'कविता–1' में कबीरदास, सूरदास, जायसी तथा तुलसीदास के भक्ति भावों एवं इन कवियों के प्रमुख पाठ्यांशों का विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

तीसरी इकाई 'कविता–2' में मीरा, बिहारी, घनानंद एवं मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताओं व प्रमुख कविता व्याख्या खंडों का विश्लेषण किया गया है।

चौथी इकाई 'व्याकरण' आधुनिक हिन्दी व्याकरण के मुख्य तत्वों का निरूपण करती है।

पांचवीं इकाई 'निबंध लेखन' में हिन्दी भाषा में निबंध लेखन के महत्व का वर्णन है, साथ ही विभिन्न विषयों में निबंध लेखन की विधाओं का परिचय भी इस इकाई में दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी भाषा एवं हिन्दी साहित्य, कविता, व्याकरण व निबंध लेखन आदि सभी विषयों का सांगोपांग अध्ययन किया गया है। उपरोक्त इकाइयों के अध्ययन से छात्र विषय के सभी पहलुओं से अवगत हो पाएंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर उनका ज्ञानवर्द्धन करेगी।

इकाई 1 हिंदी साहित्य का इतिहास

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 हिन्दी साहित्य का आरंभ
1.3 हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन एवं नामकरण के कारण एवं आधार
1.4 हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण की परंपरा
1.5 हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण
1.5.1 आदिकाल का काल–विभाजन
1.5.2 आदिकाल का नामकरण
1.5.3 भक्तिकाल का काल–विभाजन और नामकरण
1.5.4 रीतिकाल का काल–विभाजन और नामकरण
1.5.5 आधुनिक काल का काल–विभाजन और नामकरण
1.6 आदिकाल
1.6.1 आदिकाल की परिस्थितियां
1.6.2 आदिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां
1.7 भक्तिकाल
1.7.1 भक्तिकाल की परिस्थितियां
1.7.2 भक्तिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां
1.8 रीतिकाल
1.8.1 रीतिकाल की परिस्थितियां
1.8.2 रीतिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां
1.9 सारांश
1.10 मुख्य शब्दावली
1.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.12 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

हिन्दी भारत में सर्वाधिक जनसमुदाय द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। यह न केवल भारत की राजभाषा है बल्कि समस्त भारत को एकता के सूत्र में बांधने वाली सम्पर्क भाषा भी है। भारत की आजादी की लड़ाई इसी भाषा के नेतृत्व में लड़ी गयी थी। यह भाषा मुख्यतया भारत के उत्तरी भाग में बोली जाती है। हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, छतीसगढ़, मध्यप्रदेश, झारखंड और बिहार आदि दस राज्यों को हिन्दी प्रदेश के रूप में जाना जाता है। इन राज्यों के अलावा गोवा, अरुणाचल प्रदेश और अंडमान निकोबार द्वीप समूह की प्रधान भाषा भी हिन्दी ही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य के उद्‌भव और विकास' में हिन्दी शब्द का अर्थ इन शब्दों में उद्‌घाटित किया है– "हिन्दी भारतवर्ष के एक बहुत विशाल प्रदेश की साहित्यिक–भाषा है। राजस्थान और पंजाब राज्य की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार के पूर्वी सीमांत तक तथा उत्तर प्रदेश

टिप्पणी

के उत्तरी सीमांत से लेकर मध्यप्रदेश के मध्य तक के अनेक राज्यों की साहित्यिक भाषा को हम हिंदी कहते आए हैं। इस प्रदेश में अनेक स्थानीय बोलियां प्रचलित हैं। सबका भाषा–शास्त्रीय ढांचा एक–जैसा ही नहीं है, साहित्य में भी किसी एक ही बोली के ढांचे का सदा व्यवहार नहीं होता था, फिर भी हिंदी साहित्य की चर्चा करनेवाले सभी देशी–विदेशी विद्वान इस विस्तृत प्रदेश के साहित्यिक प्रयत्नों के लिए व्यवहृत भाषा या भाषाओं को हिंदी कहते रहे हैं। वस्तुतः हिंदी साहित्य के इतिहास में 'हिंदी' शब्द का व्यवहार बड़े व्यापक अर्थों में होता रहा है। जिस विशाल भू–भाग को आज हिंदी–भाषा–भाषी क्षेत्र कहा जाता है, उसका कोई एक नाम खोजना कठिन है। परंतु इसके मुख्य भाग को पुराने जमाने से ही मध्य–देश कहते रहे हैं।"

हिन्दी भाषा का विकास भारत की प्राचीनतम भाषा संस्कृत से हुआ है। भाषा वैज्ञानिक इस विकास–क्रम को निम्न रूपों में रेखांकित करते हैं–

संस्कृत – 1500 ई. पू से 500 ई.पू तक

पालि – 500 ई.पू से पहली ईसवी तक

प्राकृत – पहली ईसवी से 500 ई. तक

अपभ्रंश – 500 ई. से 1000 ई. तक

हिन्दी – 1000 ई. से आज तक

उपर्युक्त विकास–क्रम से स्पष्ट है कि हिन्दी का विकास सीधे–सीधे अपभ्रंश से हुआ है। हिन्दी के कुछ विद्वान अपभ्रंश को 'पुरानी हिन्दी' मानते है और उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल करने का सुझाव देते हैं। हिन्दी प्रदेश के अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग अपभ्रंश भाषाएं बोली जाती थीं और उनसे भिन्न–भिन्न आधुनिक भाषाओं की उत्पत्ति हुई। अपभ्रंश के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों से विभिन्न उपभाषाओं का जन्म इस प्रकार माना जाता है :

अपभ्रंश	**आधुनिक भाषाएं या बोलियां**
शौरसेनी	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती
पैशाची	लहंदा, पंजाबी
व्राचड़	सिंधी
महाराष्ट्री	मराठी
मागधी	बिहारी, बांग्ला, उड़िया, असमिया
अर्धमागधी	पूर्वी हिन्दी

इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी की प्रमुख उपभाषाओं या बोलियों का विकास अपभ्रंश के शौरसेनी, मागधी और अर्धमागधी रूपों से हुआ है।

इस इकाई में हिंदी साहित्य के इतिहास में काल–विभाजन और नामकरण का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे तथा आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल की परिस्थितियों तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों की विवेचना कर पाएंगे।

टिप्पणी

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण की कठिनाइयों को समझ पाएंगे;
- हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण के आधारों को पहचान पाएंगे;
- हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन कर पाएंगे;
- हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों का उचित नामकरण कर पाएंगे;
- हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों का सामान्य परिचय प्राप्त कर पाएंगे;
- आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल की परिस्थितियों से अवगत हो पाएंगे;
- हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों की साहित्यिक प्रवृत्तियों से परिचित पाएंगे।

1.2 हिन्दी साहित्य का आरंभ

हिन्दी साहित्य के इतिहास के आरंभ को लेकर हिन्दी के विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान इसकी शुरुआत सातवीं सदी से मानते हैं तो कुछ ग्यारहवीं सदी से स्वीकार करते हैं। हिन्दी साहित्य के आरंभिक इतिहास लेखकों में से शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में सातवीं सदी के पुष्य नामक कवि को हिन्दी का पहला कवि घोषित किया और इस प्रकार हिन्दी साहित्य का आरंभ सातवीं सदी से माना। सेंगर की यह घोषणा जनश्रुतियों पर आधारित थी जिसे उनके बाद के इतिहासकारों ने स्वीकार नहीं किया। परवर्ती अनुसंधानों से अब स्पष्ट हो गया है कि यह पुष्य कोई और नहीं बल्कि दसवीं शताब्दी में विद्यमान अपभ्रंश का सुप्रसिद्ध कवि पुष्पदंत है।

हिन्दी साहित्य के आरंभ को लेकर जो सबसे बड़ी मुश्किल खड़ी होती है वह अपभ्रंश के साथ उसके रिश्ते को लेकर है। पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वान अपभ्रंश को 'पुरानी हिन्दी' या 'प्राकृताभास हिन्दी' मानकर उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल करने की वकालत करते हैं लेकिन इसमें सबसे बड़ी समस्या यह आती है कि भाषावैज्ञानिक और व्याकरणिक आधारों पर अपभ्रंश हिन्दी से भिन्न भाषा है। इसीलिए भारत की किसी भी अन्य आधुनिक भाषा में अपभ्रंश की रचनाओं को जगह नहीं मिली है। लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि उपर्युक्त तमाम विद्वानों ने अपभ्रंश की आरंभिक रचनाओं को नहीं बल्कि सन् एक हजार के आसपास अपभ्रंश में लिखी जा रही उन रचनाएं से हिन्दी साहित्य की शुरुआत मानी जिनमें अपभ्रंश से भिन्न देशी भाषाओं के विकास के स्पष्ट चिह्न दिखायी पड़ रहे थे। 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' में विश्वनाथ त्रिपाठी इस समस्या का समाधान इस प्रकार करते हैं– "हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ तब हुआ होगा जब हिन्दी में रचना प्रारंभ हुई होगी। भाषा का प्रवाह धारा के प्रवाह के समान होता है। ठोस वस्तुओं की तरह उसका विभाजन संभव

टिप्पणी

नहीं। पूर्ववर्ती भाषा के कुछ ऐसे तत्त्व आ गए होंगे, जिनके कारण वह भाषा, जिसे हम हिन्दी कहते हैं, कुछ विशिष्ट हो गयी होगी। प्रश्न है कि ये विशेषताएं कौन–सी हैं। विद्वानों ने हिन्दी को विशिष्ट बनानेवाली तीन भाषा–प्रवृतियों की चर्चा की है : 1. क्षतिपूरक दीर्घीकरण, जैसे प्राकृत–अपभ्रंश के कज्ज, कम्म, हथ्थ जैसे शब्द हिन्दी में काज, काम, हाथ बन गये। 2. परसर्गों की प्रयोग बहुलता, जैसे 'घरहिं' के स्थान पर 'घरहिं मांझ'। और 3. तत्सम शब्दों का प्रचलन।"

स्पष्ट है कि अपभ्रंश भाषा जब उपर्युक्त प्रवृतियों से युक्त होने लगी तब ही हिन्दी के विद्वानों ने उसे 'पुरानी हिन्दी', 'प्राकृताभास हिन्दी' और 'देशी भाषा' कहना प्रारंभ किया। अब सवाल यह है कि अपभ्रंश की वे कौन सी रचनाएं हैं जिनमें इन प्रवृतियों के आरंभिक प्रयोग मिलते हैं। इस विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास ग्रंथ में लिखते हैं– "प्राकृत की अंतिम अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। उस समय जैसे 'गाथा' कहने से प्राकृत का बोध होता था वैसे ही 'दोहा' या दूहा कहने से अपभ्रंश या प्रचलित काव्यभाषा का पद्य समझा जाता था। अपभ्रंश या प्राकृताभास हिंदी के पद्यों का सबसे पहले पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं में विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है। मुंज और भोज के समय के लगभग तो ऐसी अपभ्रंश या पुरानी हिंदी का पूरा प्रचार शुद्ध साहित्य या काव्य रचनाओं में भी पाया जाता है।"

एक खास किस्म के वैचारिक पूर्वाग्रह की वजह से आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नाथों–सिद्धों के साहित्य को 'सांप्रदायिक' कहा जबकि राहुल सांकृत्यायन और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वान इस तथ्य को नकारते हैं। राहुलजी के अनुसार सिद्ध कवि सरहपा (सन् 760) हिन्दी का पहला कवि है और हिन्दी साहित्य का आरंभ सातवीं सदी से ही हो जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सातवीं से ग्यारहवीं सदी की तमाम रचनाओं पर विस्तार से विचार किया और उन्हें प्रामाणिक, अर्द्ध प्रामाणिक और संदिग्ध रचनाओं में वर्गीकृत करने के पश्चात हिन्दी की पहली प्रामाणिक रचना के रूप में 'संदेश रासक' की ओर संकेत किया। ग्याहरवीं शती की अपनी रचना 'संदेश रासक' में अब्दुर्रहमान ने लिखा था कि वह एक ऐसी भाषा में अपनी रचना कर रहा है जो आम आदमी को समझ में आने वाली है। 'संदेश रासक' की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश है लेकिन उसका झुकाव देशी भाषा की ओर है। 'बीसलदेव रासो' के रचयिता नरपति नाल्ह, भरतेश्वर बाहुबलि रास (रचनाकाल 1184 ई.) के रचयिता शालिभद्र सूरि, अमीर खुसरो, विद्यापति आदि का भी हिन्दी के पहले कवि के रूप में कई इतिहास ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के पहले रचनाकार की प्रामाणिक पहचान कठिन है लेकिन एक बात दावे के साथ कही जा सकती है कि ग्यारहवीं सदी के आरंभ से ही अपभ्रंश से भिन्न देशी भाषाओं में साहित्य लेखन के ठोस और क्रमबद्ध प्रमाण मिलने लगते हैं। इसमें रोड़ाकृत राउलवेल (11वीं शती), आचार्य हेमचन्द्र (1088–1172 ई.) द्वारा रचित 'प्राकृत व्याकरण', गाहड़वाल नरेश गोविंदचंद्र (1114–1155 ई.) के सभा–पंडित दामोदरकृत 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण', शेख फरीदुद्दीन शकरगंजी (1173–1265 ई.) का कलाम, चक्रधर स्वामी (1194–1274 ई.) के पद, रेवंतगिरि रास (1231 ई.) आदि उल्लेखनीय हैं।

टिप्पणी

1.3 हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन एवं नामकरण के कारण एवं आधार

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा में साहित्य लेखन की शुरुआत सन् 1000 के आसपास होने लगी थी। तब से लेकर आज तक यह सिलसिला जारी है। हिन्दी साहित्य लेखन के इतने वृहद इतिहास का अध्ययन एक निरंतरता में करना कठिन है। वैसे इस इतिहास की रचना एक नैरंतर्य में ही हुई है परंतु उसमें भी कई उतार–चढ़ाव होते रहे हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण उस उतार–चढ़ाव को पहचानने का ही एक उपक्रम है। इस उपक्रम में हिन्दी साहित्य की गतिशीलता और सामाजिक परिवर्तनों के बीच के सामंजस्य की तलाश सबसे जरूरी है। यह सही है कि साहित्य के इतिहास लेखन का लक्ष्य उसकी अखंड परंपरा का निरूपण है लेकिन समय–समय पर उसमें घटित हो रहे दिशा परिवर्तनों और रूप परिवर्तनों के विकासक्रम की पहचान के बिना यह संभव नहीं है, जैसे किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व का समग्र मूल्यांकन उसके आंतरिक–बाह्य व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर अलग–अलग विचार किये बिना संभव नहीं है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास एक सीधी–सरल रेखा में विकसित नहीं हुआ है। उसके कई अवांछित और अवांतर प्रसंग भी हैं, इसलिए हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन और नामकरण में कई कठिनाइयां हैं। इनमें से कुछ निम्न हैं–

1. हिन्दी साहित्य की तमाम आवश्यक सामग्री की अनुपलब्धता और उनके संग्रह का अभाव। उपलब्ध सामग्री के प्रकाशन के लिए किसी उपयुक्त व्यवस्था का न होना।
2. हिन्दी साहित्य की रचनाओं के खोजकार्य का असंगठित और अव्यवस्थित होना।
3. हिन्दी साहित्य और उसकी बोलियों के बीच का जटिल रिश्ता। ब्रज, अवधी, भोजपुरी जैसी बोलियां विस्तार और साहित्य भंडार के आधार पर यूरोप की किसी भी स्वतंत्र भाषा से ज्यादा समृद्ध हैं। इनके साहित्य के विस्तृत खोज, अध्ययन और हिन्दी साहित्य में उनके समावेश के बगैर कोई भी काल–विभाजन और नामकरण सार्थक नहीं होगा।
4. हिन्दी–उर्दू का रिश्ता। हिन्दी के कई विद्वान उर्दू को स्वतंत्र भाषा न मानकर उसे हिन्दी की एक शैली मानते हैं लेकिन उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में जगह नहीं देते। उर्दू का व्याकरण, भूगोल और इतिहास उसे हिन्दी से स्वतंत्र भाषा मानने की राह में बाधा है लेकिन लिपि, शब्द–भंडार, साहित्य रूप और साहित्यिक परंपरा उसकी स्वतंत्र पहचान को मजबूत आधार प्रदान करता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन के साथ–साथ किसी भी इतिहास के काल–विभाजन की भी अपनी मुश्किलें होती हैं। काल का प्रवाह अविरल और अखंड होता है। उसको किसी खास काल में विभाजित करना उस प्रवाह को खंडित करता है। इस विभाजन के समुचित आधारों की तलाश भी एक चुनौती है। इन आधारों के लिए किसी सर्वमान्य पद्धति का निर्धारण बेहद कठिन है क्योंकि प्रत्येक समाज और उसमें सृजित

टिप्पणी

साहित्य की निजी विशेषतायें होती हैं। साहित्य और समाज के बीच का रिश्ता भी बेहद जटिल होता है। इसे सरलीकृत रूप में बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव से लागू करने से साहित्य की स्वायतत्ता खतरे में पड़ जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' के प्रथम संस्करण की भूमिका में लिखा है कि, "शिक्षित जनता की जिन–जिन प्रवृतियों के अनुसार हमारे साहित्य स्वरूप में जो जो परिवर्तन होते आये हैं, जिन–जिन प्रभावों की. प्रेरणा से काव्य–धारा की भिन्न–भिन्न शाखाएं फूटती रही हैं, उन सबके सम्यक निरूपण तथा उनकी दृष्टि से किए हुए सुसंगत कालविभाग के बिना साहित्य के इतिहास का सच्चा अध्ययन कठिन दिखाई पड़ता था। सात आठ सौ वर्षों की संचित ग्रंथराशि सामने लगी हुई थी; पर ऐसी निर्दिष्ट, सरणियों की उद्‌भावना नहीं हुई थी जिसके अनुसार सुगमता से इस प्रभूत सामग्री का वर्गीकरण होता। भिन्न–भिन्न शाखाओं के हजारों कवियों की केवल कालक्रम से गुंथी उपर्युक्त वृतमालाएं साहित्य के इतिहास के अध्ययन में कहां तक सहायता पहुंचा सकती थीं? सारे रचनाकाल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर इत्यादि खंडों में आंख मूंदकर बांट देना– यह भी न देखना कि खंड के भीतर क्या आता है, क्या नहीं, किसी वृत्तसंग्रह को इतिहास नहीं बना सकता।"

किसी भी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण केवल पद्धतिगत अनिवार्यता न होकर उस इतिहास बोध की तलाश होती है जिसके भीतर मानवीय चेतना और उसके विशिष्ट कला व्यापारों की निर्मिति होती है। इतिहासकार के आलोचनात्मक विवेक के बिना इस इतिहास बोध का निर्माण नहीं हो सकता। यह विवेक साहित्य और समाज के रिश्ते के साथ–साथ, ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में, उसमें आ रहे बदलावों के स्वरूप की भी पहचान करता है। इतिहासकार अपने समय के सवालों के समाधान के लिए भी इतिहास की सैर करता है। उसके इतिहास दृष्टि के निर्माण में समसामयिक वैचारिक द्वन्द्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इतिहास दृष्टि नवजागरण की चेतना और साम्राज्यवादी प्रतिरोध की पृष्ठभूमि में निर्मित हुई है। इसीलिए उन्हें रीतिकालीन कविता प्रतिक्रियावादी, लोकोन्मुख एवं जनपक्षधर तथा भक्तिकालीन कविता प्रगतिशील लगती है। किसी भी इतिहासकार की इतिहास दृष्टि अतीतोन्मुखी न होकर भविष्योन्मुखी होती है। वह वर्तमान और भविष्य की समस्याओं के समाधान के लिए ही अतीत की ओर देखता है। वर्तमान की आंख से वह अतीत को देखता है लेकिन इस क्रम में वह अतीत की वस्तुनिष्ठता की उपेक्षा नहीं करता। इतिहास लेखन में विचारधारा की भी बड़ी भूमिका होती है। हिन्दी साहित्य के आरम्भिक इतिहास ग्रंथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद की विचारधारा के प्रभाव में लिखे गये थे जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने राष्ट्रवाद की विचारधारा के आइने में उसे देखा था। साहित्य का इतिहास केवल एक कलारूप का इतिहास न होकर मानवीय चेतना के विकास का भी इतिहास होता है। अतः उसकी पहचान में इतिहासकार की विचारधारा की बड़ी भूमिका होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'कालविभाग' के अंतर्गत लिखा है कि, "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता

टिप्पणी

है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अतः कारणस्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।"

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण न केवल एक जरूरी काम है बल्कि यह बेहद चुनौतीपूर्ण भी है। काल–विभाजन और नामकरण के लिए किसी भी सर्वमान्य पद्धति की खोज और निर्धारण नामुमकिन है क्योंकि राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या भाषा वैज्ञानिक विकास से जुड़े होने के बावजूद साहित्य का विकास स्वतंत्र होता है। इनके मध्य बिम्ब–प्रतिबिम्ब का भाव नहीं होता। आमतौर पर होता यह है कि साहित्य के इतिहास को किसी राष्ट्र के राजनीतिक इतिहास के साथ नत्थी करके उसका सरलीकृत काल–विभाजन और नामकरण कर दिया जाता है। जैसे भारत के इतिहास के प्राचीनयुग, मध्यकालीन युग और आधुनिक युग की तरह ही हिन्दी साहित्य के इतिहास को भी तीन युगों में विभाजित कर दिया जाये। साहित्य का इतिहास किसी देश के राजनीतिक इतिहास का सीधा समानुपाती नहीं होता। संभव है कि जिस काल में राष्ट्र अंधकार युग में पड़ा हो तब उसका साहित्यिक विकास चरम पर हो। हिन्दी साहित्य के जिस 'भक्तिकाल' को स्वर्णयुग कहा जाता है वह समय भारतीय राजनीति का काफी अस्त–व्यस्त समय था। तब ऐसे में किसी भी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण के आधार विशिष्ट साहित्यिक मानदंड ही होने चाहिए। डॉक्टर नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में काल–विभाजन और नामकरण के कुछ विशिष्ट आधारों का उल्लेख किया है, जो निम्न हैं–

1. ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार : आदिकाल, मध्यकाल, संक्रांतिकाल, आधुनिककाल आदि।
2. शासक और उसके शासनकाल के अनुसार : एलिजाबेथ युग, विक्टोरिया युग, मराठाकाल आदि।
3. लोकनायक और उसके प्रभावकाल के अनुसार : चैतन्यकाल (बांग्ला), गांधीयुग (गुजराती) आदि।
4. साहित्य–नेता एवं उसकी प्रभाव–परिधि के आधार पर : रवींद्रयुग, भारतेंदुयुग आदि।
5. राष्ट्रीय, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक घटना या आंदोलन के आधार पर : भक्तिकाल, पुनर्जागरणकाल, सुधारकाल, युद्धोत्तरकाल (प्रथम महायुद्ध के बाद का कालखंड), स्वातंत्र्योत्तर काल आदि।
6. साहित्यिक प्रवृत्ति के नाम पर : रोमानीयुग, रीतिकाल, छायावाद आदि।

वास्तव में इन सारी पद्धतियां में से कोई भी एक हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन और नामकरण में समग्रतया सटीक नहीं है और इन संब का प्रयोग व्यवहार्य नहीं है, फिर भी हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण में इन सब से प्रभाव ग्रहण किया गया है। राजनीतिक और सामाजिक इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण सामान्यतया किसी दूरगामी प्रभाव वाली घटना को आधार बनाकर कर दिया जाता है, जैसे हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल का आरंभ 1857 की क्रांति से मानने की

टिप्पणी

परंपरा है। कभी किसी शासक का व्यक्तित्व इतना प्रभावी होता है कि उसके सत्तासीन होने के वर्ष से ही नये युग की शुरुआत मान ली जाती है, जैसे अकबर का युग। इसी प्रवृति का पालन करते हुए हिन्दी में भी भारतेन्दु और महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर युगों का निर्धारण किया गया है। हिन्दी में स्वातंत्र्योत्तर युग की परिकल्पना ऐतिहासिक घटना को आधार बनाकर की गई है। परंतु काल–विभाजन की इन समस्त कोशिशों में साहित्य की आत्मा के असुरक्षित हो जाने का खतरा रहता है। जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि जनता की चित्तवृत्तियों के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में होने वाले परिवर्तन की परंपरा को आदि से अंत तक परखना और साहित्य की परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य के इतिहासकार का काम है। किसी भी भाषा के साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण उस भाषा के साहित्य–लेखन में होने वाले आंतरिक बदलावों के आधार पर ही होना चाहिए। इस संबंध में डॉ. नगेन्द्र के विचार ज्यादा उपयोगी हैं, उनके सुझावों के आधार पर ही हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन और नामकरण पर विचार करना उचित होगा। उनके सुझाव हैं–

1 काल–विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों और रीति–आदर्शों की समानता के आधार पर होना चाहिए।

2. युगों का नामकरण यथासंभव मूल साहित्य–चेतना को आधार मान कर साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुसार करना चाहिए, किंतु जहां ऐसा नहीं हो सकता, वहां राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रवृत्ति को आधार बनाया जा सकता है या फिर कभी–कभी विकल्प न होने पर निर्विशेष कालवाचक नाम को भी स्वीकारा जा सकता है। नामकरण में एकरूपता काम्य है, किंतु उसे सायास सिद्ध करने के लिए भ्रांतिपूर्ण नामकरण उचित नहीं है।

3. युगों का सीमांकन मूल प्रवृत्तियों के आरंभ और अवसान के अनुसार होना चाहिए। जहां साहित्य के मूल स्वर अथवा उसकी मूल चेतना में परिवर्तन लक्षित हो और नये स्वर एवं चेतना का उदय हो, वहां युग की पूर्व सीमा और जहां वह समाप्त होने लगे, वहां उत्तर सीमा माननी चाहिए।

1.4 हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण की परंपरा

हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रारंभिक लेखक गार्सा द तॉसी और शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास ग्रंथों में हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन नहीं किया था। काल–विभाजन का पहला प्रयास 'फ्रेंच विद्वान जार्ज ग्रियर्सन ने अपने इतिहास–ग्रंथ 'इस्त्वार द ला लितेरात्यूर एंदुई ए ऍंदुस्तानी' (1882) में किया। उनका काल–विभाजन क्रम निम्न है– (क) चारण काल (700–1300 ई.), (ख) पन्द्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण, (ग) जायसी की प्रेम कविता, (घ) ब्रज का कृष्ण सम्प्रदाय, (च) मुगल दरबार, (छ) तुलसीदास, (ज) रीति काव्य, (झ) तुलसीदास के अन्य परवर्ती, (त) अट्ठारहवीं शताब्दी, (थ) कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान, (द) विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान।

टिप्पणी

जार्ज ग्रियर्सन के काल–विभाजन में ऐतिहासिक चेतना के अभाव के साथ–साथ किसी स्पष्ट तार्किक आधार की भी कमी है। इसमें कालक्रम की निरन्तरता को भी ध्यान में नहीं रखा गया है। कुछ कालों का नामकरण साहित्यिक प्रवृतियों के आधार पर किया गया है तो कुछ का राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर। दरअसल यह काल–विभाजन न होकर हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्यायों में वर्गीकरण मात्र है। ग्रियर्सन की तुलना में मिश्रबंधुओं ने अपने इतिहास–ग्रंथ 'मिश्र–बंधुविनोद' (1913 ई.) में अपेक्षाकृत अधिक तार्किक और व्यवस्थित काल–विभाजन किया है। उन्होंने इसका आधार हिन्दी भाषा के विकास–क्रम को बनाया। उनका काल–विभाजन निम्नवत है–

1. आरंभिक काल– (क) पूर्वारम्भिक काल (700–1343 वि.)
   (ख) उत्तरारम्भिक काल (1344–1444 वि.)
2. माध्यमिक काल– (क) पूर्व माध्यमिक काल (1445–1560 वि.)
   (ख) प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561–1680 वि.)
3. अलंकृत काल– (क) पूर्वालंकृत काल (1681–1790 वि.)
   (ख) उत्तरालंकृत काल (1791–1889 वि.)
4. परिवर्तन काल (1890– 1925 वि.)
5. वर्तमान काल (1926 वि. से आद्यावधि)

सीमाएं

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा मिश्रबंधुओं के काल–विभाजन पर निम्न शब्दों में आपत्ति दर्ज की गयी– "सात आठ सौ वर्षों की संचित ग्रंथ राशि सामने लगी हुई थी, पर निर्दिष्ट सारणियों की उद्भावना नहीं हुई थी जिसके अनुसार सुगमता से इस प्रभुत सामग्री का वर्गीकरण होता। भिन्न–भिन्न शाखाओं के हजारों कवियों की केवल कालक्रम से गुथी उपर्युक्त वृत्तमालाएं साहित्य के इतिहास में कहां तक सहायता पहुंचा सकती थीं? सारे रचनाकाल को केवल आदि, मध्य, उत्तर इत्यादि खण्डों में आंख मूंद कर बांट देना– यह भी न देखना कि खण्ड के भीतर क्या आता है, क्या नहीं, किसी वृत्त संग्रह को इतिहास नहीं बना सकता।"
2. साहित्य के इतिहास को समग्रता में धारण नहीं करता। इसमें न रचनाकारों का क्रम निश्चित है और न ही नामकरण में निश्चयात्मकता है।
3. 700 से 1300 ई. के बीच के समय को भी हिन्दी साहित्य में शामिल कर देना जबकि इस समय हिन्दी प्रदेश में साहित्य लेखन हिन्दी में न हो कर हिन्दी के पूर्ववर्ती रूप अपभ्रंश में हो रहा था।
4. माध्यमिक काल के कुल दो सौ वर्षों के समय को पूर्व और प्रौढ़ में विभाजित करना उपयुक्त नहीं क्योंकि साहित्य के स्वरूप में इतना तीव्र परिवर्तन संभव नहीं होता।

टिप्पणी

5. वर्तमान काल के पहले के कुल पैंतीस वर्षों के समय को 'परिवर्तन काल' के रूप में रेखांकित करना अतार्किक है क्योंकि प्रत्येक नये युग के पहले परिवर्तन का समय आता है।

इन सीमाओं के बावजूद 'मिश्रबंधु विनोद' की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसमें पहली बार हिन्दी साहित्य की विपुल सामग्री का संचयन कर उसे एक निश्चित प्रारूप में वर्गीकृत किया गया। भले ही इसे इतिहास न मानकर केवल 'कवि वृत्त संग्रह' माना जाता हो परंतु हिन्दी का यह पहला इतिहास–ग्रंथ है जिसमें हिन्दी साहित्य के इतिहास की झलक मिलती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'मिश्रबंधु विनोद' के ढांचे को ही संस्कारित कर अपने इतिहास–ग्रंथ की रचना की।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास–ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) में हिन्दी साहित्य के इतिहास का सर्वमान्य काल–विभाजन किया, जो निम्न प्रकार से है–

1. वीरगाथा काल (1050–1375)
2. भक्तिकाल (1375–1700)
3. रीतिकाल (1700–1900)
4. गद्यकाल (1900–से अब तक)

पूर्ववर्ती इतिहासकारों की तुलना में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल–विभाजन और नामकरण अधिक व्यवस्थित, तार्किक, वैज्ञानिक और संक्षिप्त है। उन्होंने अपने इतिहास ग्रंथ में इस वर्गीकरण के आधारों का स्पष्टीकरण भी दिया है, संक्षेप में वे निम्न हैं–

1. जिस कालविभाग के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ी है, उसे शुक्लजी ने एक अलग काल माना है और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के अनुसार किया है। इन रचनाओं के आधार पर उन्होंने युग विशेष के सामान्य लक्षणों को चिह्नित करने की भी कोशिश की। उन्होंने चारों कालों का नामकरण इन्हीं आधारों पर किया है। आगे चलकर जिस 'वीरगाथा काल' और 'गद्य काल' पर सर्वाधिक विवाद हुआ और उसको अस्वीकृत भी किया गया उसके नामकरण के पीछे भी यही तर्क काम कर रहा था।
2. रचनाओं की प्रचुरता के साथ–साथ शुक्लजी ने उनकी प्रसिद्धि को भी काल–विभाजन और नामकरण का आधार बनाया। संभव है कि किसी कालविशेष में किसी खास प्रवृति की बहुत सारी रचनाएं उपलब्ध हों लेकिन वे सब अप्रसिद्ध और साधारण कोटि की हों, जबकि दूसरी प्रवृति की रचनाएं संख्या में कम हों तब भी उनकी लोकप्रियता बहुत अधिक हो, तब ऐसे में दूसरे ढंग की रचनाओं के आधार पर उस काल का नामकरण किया जाना चाहिए। शुक्लजी का मानना है कि रचनाओं की प्रसिद्धि लोकप्रवृति की प्रतिध्वनि होती है।
3. एक ही काल के भीतर यदि भिन्न–भिन्न प्रकार की परंपराएं चल रही हैं तो शुक्लजी ने उनका आंतरिक विभाजन भी किया है, जैसे 'भक्तिकाल' को उन्होंने सगुण और निर्गुण में विभाजित किया तो 'रीतिकाल' को रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त में।

टिप्पणी

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण की मौलिक, वैज्ञानिक, तार्किक और सर्वमान्य पद्धति की खोज की और उसके आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण का एक ऐसा ढांचा खड़ा किया जिसका विकल्प आज तक प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। वैसे शुक्लजी के बाद के इतिहासकारों ने इसमें फेरबदल की छोटी–बड़ी कोशिशें जरूर की हैं लेकिन उसके आधार को बदल पाने में कोई भी सफल नहीं हो सका है। आचार्य शुक्ल के काल–विभाजन में तो कोई खास बदलाव संभव नहीं हो पाया है लेकिन उनके द्वारा किये गये नामकरण में जरूर थोड़ा बहुत हेरफेर किया गया है। रामचंद्र शुक्ल ने 'आदिकाल' का नाम 'वीरगाथा काल' प्रस्तावित किया था क्योंकि उन्हें सिद्धों–नाथों की रचनाएं सांप्रदायिक लगती थीं। वैसे उन्हें इस काल का नाम 'आदिकाल' रखने में कोई आपत्ति नहीं थी और अपने इतिहास–ग्रंथ में स्थान–स्थान पर उन्होंने इस काल के लिए 'आदिकाल' शब्द का ही प्रयोग किया है। आगे चलकर हिन्दी के आरंभिक काल के लिए 'आदिकाल' नाम ही सर्वस्वीकृत हुआ। हिन्दी के आधुनिक काल के लिए शुक्लजी ने 'गद्य काल' नाम प्रस्तावित किया क्योंकि उन्हें इस युग में गद्य का प्रादुर्भाव एक ऐतिहासिक घटना प्रतीत हुई थी। परंतु इस युग विशेष को 'आधुनिक काल' के नाम से पुकारे जाने से भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। आज इस युग को हम 'आधुनिक काल' के नाम से ही जानते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद 'हिन्दी साहित्य' नामक पुस्तक में डॉ. श्याम सुन्दर दास ने काल–विभाजन और नामकरण का प्रयास किया लेकिन उसमें जरा भी नवीनता का अंश नहीं मिलता। आचार्य शुक्ल का पूर्णतया अनुसरण करते हुए श्याम सुन्दर दास ने उसमें महज इतना ही बदलाव किया है कि 'काल' शब्द के स्थान पर 'युग' शब्द का प्रयोग कर दिया है, जैसे 'आदिकाल' की जगह 'आदियुग'। इतिहास की विकासवादी अवधारणा को अपनाते हुए रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में हिन्दी साहित्य के इतिहास को आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल नामक तीन युगों में विभाजित किया और इसे हिन्दी साहित्य की बाल्यावस्था, किशोरावस्था और युवावस्था कहा। इस वर्गीकरण में नवीनता तो है लेकिन तार्किकता नहीं क्योंकि यदि साहित्य के इतिहास को हम मनुष्य के जीवन के विकास–क्रम के अनुरूप देखने की कोशिश करेंगे तो युवावस्था के बाद हमें उसके वृद्धावस्था और फिर उसकी मृत्यु की कल्पना भी करनी पड़ेगी, जो हास्यास्पद होगी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (1938 ई.) में हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण का एक गंभीर प्रयास किया। डॉ वर्मा ने अधिकांश तो शुक्लजी से ही ग्रहण किया है लेकिन उसमें इतना बदलाव किया है कि नाथों–सिद्धों की रचनाओं को 'सांप्रदायिक' न मानकर उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में जगह दे दी है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास की शुरुआत विक्रम संवत् 750 से ही हो जाती है, पर ऐतिहासिक प्रमाणों और चली आ रही मान्यताओं के आधार पर यह सहज स्वीकार्य नहीं है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के ढांचे को तोड़ने का तार्किक और साहसिक काम पहली बार डॉ. वर्मा ने ही किया। उनका काल–विभाजन इस प्रकार है–

टिप्पणी

1. संधिकाल – संवत् 750–1000
2. चारणकाल – संवत् 1000–1375
3. भक्तिकाल – संवत् 1375–1700
4. रीतिकाल – संवत् 1700–1900
5. आधुनिक काल – संवत् 1900–अब तक

'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (1940), 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' और 'हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास' (1952) इन तीन पुस्तकों के माध्यम से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ही सर्वाधिक सक्षम और सार्थक हस्तक्षेप किया। नाथों–सिद्धों, भक्तिकाल के उद्‌भव, कबीर आदि के बारे में आचार्य शुक्ल द्वारा किये गये संकुचित विश्लेषण का द्विवेदी जी ने न केवल प्रतिवाद किया बल्कि उनकी साहित्यिक प्रतिष्ठा भी की। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में ऐतिहासिक–सामाजिक प्रभाव की जगह साहित्यिक परंपरा पर ज्यादा जोर दिया। उन्होंने काल–विभाजन और नामकरण में कोई मौलिक बदलाव न करते हुए उसकी चली आ रही परंपरा को ही व्यवस्थित आधार प्रदान किया। आचार्य द्विवेदी का वर्गीकरण काफी उदार है–

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल – 1000 ई.–1400 ई.
2. भक्तिकाल का आविर्भाव – 1400–1650
3. रीतिकाव्य – 1650 ई.–1850 ई.
4. आधुनिक काल – 1850 ई.–1952 ई.

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने काल–विभाजन और नामकरण में कोई कठोरता नहीं बरती जिससे वे हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन और नामकरण का कोई ठोस प्रारूप दे पाने में असफल रहे। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में प्राकृतिक सर्जन शक्ति, वातावरण, परंपरा, द्वंद्व और संतुलन नामक 'नव प्रतिष्ठित पांच सूत्रों' के आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास के वैज्ञानिक काल–विभाजन और नामकरण का दावा किया। उनका वर्गीकरण निम्न है–

1. प्रारम्भिक काल – 1184 ई.–1350 ई.
2. मध्यकाल – (क) पूर्वमध्यकाल – 1350 ई.–1600 ई.
   (ख) उत्तर मध्यकाल – 1600 ई.–1857 ई.
3. आधुनिक काल – 1857 ई. से अब तक

डॉ. गुप्त के इस काल–विभाजन और नामकरण में किसी भी प्रकार की वैज्ञानिकता की पहचान मुश्किल है। यह इस समस्या का बेहद सरलीकृत समाधान है। 1184 ई. से हिन्दी साहित्य के इतिहास का आरंभ मानने का एकमात्र आधार तमाम साक्ष्यों के आइने में डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त द्वारा शालिभद्र सूरि द्वारा रचित 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' (1184 ई.) को हिन्दी की पहली रचना मानना है। आधुनिक खोजों द्वारा इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती और वैसे भी किसी एक रचना के आधार पर किसी भाषा के साहित्य के इतिहास का आरंभ

मानना बेहद अतार्किक है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में स्पष्ट रूप से विभाजित दो साहित्यिक प्रवृतियों को अनदेखा कर उन्हें पूर्व और उत्तर मध्यकाल में विभाजित करने का भी कोई तर्क समझ नहीं आता।

टिप्पणी

1.5 हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा पर विस्तार से विचार करने के पश्चात यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों के सीमांकन के साथ–साथ नामकरण के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस वजह से हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन और नामकरण एक मुश्किल समस्या बन जाता है। इसके समाधान के लिए यहां हम हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों पर अलग–अलग विचार करेंगे।

1.5.1 आदिकाल का काल–विभाजन

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल के नामकरण से लेकर सीमांकन तक को लेकर विद्वानों में सर्वाधिक मतभेद है। सबसे पहले हम इसकी समय सीमा पर विचार करते हैं। हिन्दी साहित्य के आरंभ को लेकर मुख्यतया दो मुद्दों पर विवाद है। पहला यह कि अपभ्रंश को हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल किया जाय या नहीं, और दूसरा नाथों–सिद्धों के साहित्य को शुद्ध साहित्य की श्रेणी में रखा जाय या नहीं। अपभ्रंश के साहित्य के स्वीकार–अस्वीकार के विषय में चले विवाद पर ऊपर विचार किया जा चुका है, जिसमें लगभग सभी विद्वान अंततः इस बात पर एकमत हैं कि अपभ्रंश के परवर्ती काल में रचित उन रचनाओं को हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल किया जाना चाहिए जिनमें देशी भाषाओं की ओर झुकाव की प्रवृत्ति है। इस आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास का आरंभ 1000 ई. से मानना ज्यादा उचित है। नाथों–सिद्धों के साहित्य के स्वीकार–अस्वीकार के मसले पर हिन्दी के विद्वान दो पक्षों में विभाजित हैं– पहला पक्ष राहुल सांकृत्यायन और रामकुमार वर्मा जैसे विद्वानों का है जो आदिकाल में नाथों–सिद्धों के साहित्य को शामिल करने के पक्षधर हैं और इस वजह से इस काल का आरंभ सातवीं सदी से मानते हैं। दूसरा पक्ष आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का है जो नाथों–सिद्धों के साहित्य को सांप्रदायिक मानकर उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल नहीं करते और हिन्दी साहित्य का आरम्भ 1000 ई. से ही मानते हैं। फिर भी उन्होंने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में नाथों–सिद्धों पर पर्याप्त चर्चा की है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथों–सिद्धों की रचनाओं को शुद्ध साहित्य की श्रेणी में परिगणित करने के बावजूद हिन्दी साहित्य के आदिकाल का आरंभ 1000 ई. से ही स्वीकारा है, जबकि अपरोक्ष रूप से वे भी आदिकाल का आरंभ सातवीं सदी से ही मानते हैं।

तात्पर्य यह है कि विद्वानों का बहुमत और ऐतिहासिक–साहित्यिक प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास का आरंभ सातवीं सदी से मानने के पक्ष में है लेकिन हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों की प्रचलित परिपाटी के अनुसार आदिकाल का आरंभ 1000 ई. से ही माना जाता है। अतः हम भी हिन्दी साहित्य के आदिकाल का आरंभ 1000 ई. से ही मानेंगे।

टिप्पणी

आदिकाल के आरंभ की तरह ही उसकी अंतिम सीमा भी विवादास्पद है। ग्रियर्सन इसकी अंतिम सीमा 1400 ई., मिश्रबंधु 1389 ई., आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 1318 ई., आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 1400 ई. और गणपति चन्द्र गुप्त 1350 ई. मानते हैं। विद्यापति (रचनाकाल– 1375–1418 ई.) को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल के भीतर परिगणित किया है, जबकि इनका रचनाकाल उसकी समय–सीमा के बाहर है। इस वजह से आदिकाल के अंत को लेकर समस्या पैदा हो जाती है। इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि भले ही शुक्लजी ने विद्यापति को आदिकाल का कवि माना हो लेकिन उनके साहित्य में पायी जाने वाली प्रवृतियां भक्तिकाल की हैं। अतः यदि उन्हें भक्तिकाल का कवि मान लिया जाय तो अनुचित नहीं होगा। इस प्रकार आदिकाल का अंत चौदहवीं सदी का मध्य अर्थात 1350 ई. मानना चाहिए।

1.5.2 आदिकाल का नामकरण

आदिकाल के नामकरण को लेकर भी विद्वानों में मतभेद हैं। विभिन्न विद्वानों ने आदिकाल के निम्न नाम सुझाये–

चारण काल : ग्रियर्सन

प्रारंभिक काल : मिश्र बंधु

वीरगाथा काल : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आदिकाल : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

चारणकाल : रामकुमार वर्मा

सिद्ध–सामन्त युग : राहुल सांकृत्यायन

बीजवपन काल : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

वीरकाल : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

हिन्दी के आरंभिक काल का सबसे पहला नामकरण ग्रियर्सन ने किया और उसका नाम रखा 'चारण काल'। इस काल का आरंभ वे 643 ई. से मानते हैं जबकि उस समय में लिखित चारण–साहित्य का वे कोई उल्लेख नहीं करते। 'चारण' शब्द में साहित्य–रचना की ध्वनि न होकर प्रशस्ति–लेखन का संकेत मिलता है जो हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल में हुई साहित्यिक कोशिशों का अवमूल्यन करता है। अतः यह नाम सर्वथा अनुपयुक्त है। मिश्रबंधुओं द्वारा दिये गये नाम 'प्रारंभिक काल' में काल विशेष की किसी भी प्रवृत्ति का संकेत न होकर महज एक सामान्य संज्ञा होना उसे अनुपयुक्त ही बनाता है।

हिन्दी साहित्य का पहला सुव्यवस्थित इतिहास लिखने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को 'वीरगाथा काल' नाम दिया। इसके पक्ष में उन्होंने निम्न तर्क दिये–

1. इस काल में रासो ग्रन्थों की प्रचुरता है जिनकी प्रधान प्रवृति वीरगाथात्मकता है। साहित्य के रूप में हम इन्हीं रचनाओं को स्वीकार कर सकते हैं, शेष धार्मिक साहित्य है।
2. रासो ग्रन्थों के अलावा इस काल में नाथों–सिद्धों की रचनायें भी प्रचुर मात्रा में मिलती हैं लेकिन इन्हें शुद्ध साहित्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। ये धार्मिक रचनाएं हैं और सम्प्रदाय विशेष की मान्यताओं के प्रचार के लिए लिखी गयीं थीं। यही स्थिति इस युग में मिलने वाली जैन रचनाओं की भी है।
3. इसके अलावा इस युग में बड़ी मात्रा में फुटकर दोहे भी मिलते हैं लेकिन इनमें किसी खास साहित्यिक प्रवृति का दर्शन नहीं होता जिसके आधार पर इस युग का नामकरण हो सके।

टिप्पणी

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सुझाया गया नाम ग्रियर्सन द्वारा सुझाये गये नाम का ही परिष्कृत रूप है। यह आदिकाल की एक खास प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर तय किया गया है। इसके विपक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं–

1. जिन रासो ग्रंथों के आधार पर शुक्ल जी ने इस काल का नामकरण किया है उनमें से अधिकांश अप्रमाणिक हैं जिसे स्वयं शुक्लजी ने ही स्वीकारा है। परवर्ती अनुसंधानों से न केवल इस तथ्य की पुष्टि हुई है बल्कि यह भी पता चला है कि उनमें से कई सोलहवीं–सत्रहवीं सदी में लिखे गए हैं।
2. अमीर खुसरो जैसे देशीभाषा के लेखक इस नामकरण के दायरे से बाहर हो जाते हैं।
3. नाथों–सिद्धों की जिन रचनाओं को शुक्ल जी ने साम्प्रदायिक कहकर नकार दिया था, बाद के इतिहासकारों ने उसे हिन्दी साहित्य का अभिन्न अंग माना।

अतः रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किया गया नामकरण बाद के विद्वानों द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। राहुलजी द्वारा दिया गया नाम 'सिद्ध–सामंत काल' केवल दो साहित्यिक प्रवृतियों की ओर संकेत करता है लेकिन इस वजह से ही नाथपंथी, हठयोगी और अमीर खुसरो (रचनाकाल– 1283–1324) जैसे फुटकर साहित्य लिखने वाले रचनाकारों की काव्य प्रवृत्तियों का इस नाम में समावेश नहीं हो पाता। 'वीरकाल' और 'बीजवपन काल' जैसे नाम तो अपनी नवीनता से केवल चौंकाते भर हैं, इनमें न कोई तथ्य है और न ही कोई विचार।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आदिकाल को विभिन्न प्रकार की साहित्यिक प्रवृतियों की प्रधानता वाला काल माना। 'आदिकाल' नाम में उपस्थित प्राचीनता की गंध से इत्तेफाक न रखते हुए भी उन्होंने इस युग के लिए सर्वाधिक उपयुक्त नाम 'आदिकाल' ही स्वीकार किया जो अब लगभग सर्वमान्य हो गया है। इस विषय में द्विवेदी जी का कहना है– "वस्तुतः हिन्दी साहित्य का आदिकाल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम मनोभावापन्न, परम्पराविनियुक्त काव्यरूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है। यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा प्रेमी, रूढ़िग्रस्त, सजग, सचेत कवियों का काल है।........यदि पाठक इस धारणा से सावधान रहे तो यह नाम बुरा नहीं है।"

असल में 'आदिकाल' ही वह नाम है जिसे सभी इतिहासकारों ने जाने–अनजाने स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल ने भले ही इस काल का नाम 'वीरगाथा काल' रखा हो लेकिन अपने इतिहास–ग्रंथ में विश्लेषण के क्रम में अक्सर वे 'आदिकाल' ही लिखते हैं। 'आदिकाल' नाम से हमें हिन्दी साहित्य की उस व्यापक पृष्ठभूमि का भी बोध होता है जिस पर आगे चलकर हिन्दी साहित्य का विशाल महल खड़ा हुआ। भाषा की दृष्टि से इसमें

हिन्दी का आदि रूप मिलता है तो भाव की दृष्टि से भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज मिल जाते हैं। अतः इस युग के लिए सर्वाधिक उपयुक्त एवं व्यापक नाम 'आदिकाल' ही है।

टिप्पणी

1.5.3 भक्तिकाल का काल–विभाजन और नामकरण

यदि आदिकाल का अंत हम 1350 ई. से मानते हैं तो स्वाभाविक तौर पर भक्तिकाल का आरंभ हमें इसी समय से मानना होगा। भक्तिकाल के अंत को लेकर विद्वानों में थोड़ा मतभेद है इसकी मूल वजह भक्तिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि तुलसीदास और रीतिकाल के आरंभिक कवि केशवदास (1555 ई.–1617 ई.) का समकालीन होना है। रामचन्द्र शुक्ल ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भी भक्तिकाल का अंत 1643 ई. माना है जिस वजह से केशवदास भक्तिकाल के कवि ठहरते हैं। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में केशवदास को भक्तिकाल की सगुण धारा के फुटकल रचनाकारों के अंतर्गत ही शामिल भी किया है पर उनकी साहित्यिक चेतना और अभिव्यक्ति शैली रीतिकालीन है। आश्रयदाताओं की प्रशंसा, लक्षण ग्रंथों की रचना, अलंकारों की बहुलता, चमत्कार प्रियता, छंदों की विविधता जैसी रीतिकालीन विशेषताएं केशवदास की रचनाओं में आसानी से मिल जाती हैं। इस संबंध में यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि केशवदास जिस वक्त ऐसी रचनाओं का सृजन कर रहे थे उस समय ऐसा करने वाले रचनाकारों की संख्या बेहद कम थी, जबकि भक्तिकाल का शीर्षस्थ कवि तुलसीदास उस वक्त सृजनरत था। लगभग चालीस–पचास वर्षों के बाद यह हिन्दी साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति बनी। तब केशवदास को संक्रांतिकाल का कवि स्वीकार करते हुए हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल का अंत 1650 ई. स्वीकार करना ही ज्यादा उचित होगा।

तमाम इतिहासकारों द्वारा भक्तिकाल के दो नाम सुझाये गये हैं– भक्तिकाल और पूर्वमध्यकाल। 'भक्तिकाल' नाम जहां तत्कालीन साहित्य के आंतरिक भाव को अभिव्यंजित करता है वहीं 'पूर्वमध्यकाल' कालबोधक है। इतिहासकारों के बीच इन दोनों नामों को लेकर कुछ ज्यादा मतभेद नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो इन दोनों नामों का एक साथ सहजता से प्रयोग किया है। भक्तिकाल प्रवृत्तिगत एकता की अद्भुत मिसाल प्रस्तुत करता है। इस युग में हिन्दी प्रदेश के अलग–अलग हिस्सों में रहने वाले रचनाकारों ने अपनी–अपनी मातृभाषाओं के साथ–साथ तत्कालीन समय की केंद्रीय साहित्यिक भाषा ब्रजभाषा और अवधी में भगवान की भक्ति के माध्यम से मानवीय संवेदना की जैसी अभिव्यक्ति की है वह हिन्दी ही नहीं भारतीय साहित्य में भी विरल है। भक्ति साहित्य ने जीवन के प्रश्न को कविता का प्रश्न बनाया, सामंती व्यवस्था की अमानवीयता के प्रति विद्रोह का स्वर बुलंद किया, समाज के सभी वर्गों को वाणी प्रदान की, एक वैकल्पिक व्यवस्था की अवधारणा प्रस्तुत की और यह सब भक्ति के आवरण में किया। उन्हें यह सब करने का साहस भी भगवान की भक्ति ने ही प्रदान किया। इसलिए इस काल के लिए 'भक्तिकाल' से ज्यादा उपयुक्त नाम कोई और हो ही नहीं सकता।

1.5.4 रीतिकाल का काल–विभाजन और नामकरण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल की समय–सीमा 1643 ई. से 1843 ई. तक स्वीकार की है। इसे अधिकांश विद्वानों ने मान्यता दी है। रीतिकाल के आरंभ को लेकर ऊपर चर्चा हो

चुकी है। अब सवाल यह है कि इसका अंत 1843 ई. ही क्यों माना जाए? इस संबंध में पहली बात तो यह है कि आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का काल–विभाजन विक्रम संवत् में किया है जो ईस्वी सन् से 57 वर्ष आगे चलता है। इस वजह से उन्होंने रीतिकाल का अंत संवत् 1900 माना, जो ईस्वी सन् में 1843 हो गया। बाद के इतिहासकारों ने इसे सम अंकों में बदलते हुए रीतिकाल का अंत 1850 ई. स्वीकार किया।

टिप्पणी

1850 ई. से रीतिकाल का अंत और आधुनिकाल का आरंभ मानने के दो बेहद मजबूत तर्क हैं। पहला, सन् 1857 में भारत की पहली जनक्रांति का होना और दूसरा हिन्दी के आधुनिक साहित्य के निर्माता भारतेंदु हरिश्चन्द्र का 1850 ई. में जन्म लेना। कुछ विद्वान यह आपत्ति करते हैं कि भारत की पहली जनक्रांति और भारतेंदु का लेखन दोनों सन् 50 के लगभग दस वर्षों बाद शुरू होता है फिर हिन्दी साहित्य के रीतिकाल का अंत 1850 ई. से ही क्यों माना जाए? इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि ऐसा कहने वाले इतिहासकारों की इतिहास–दृष्टि बेहद जड़ है। साहित्य के इतिहास में कोई भी परिवर्तन अचानक नहीं होता। उस बदलाव की जमीन बहुत पहले से तैयार हो रही होती है। सन् 1857 की जनक्रांति भी एकाएक नहीं हो गयी। यह सत्ता–परिवर्तन नहीं था जो किसी राजा के वध के साथ ही रातोंरात संभव हो गया। किसी भी जनक्रांति के लिए जमीन तैयार करने में वर्षों लगते हैं। यह सामूहिक चेतना में बदलाव के बिना संभव नहीं हो सकता। भारतेंदु हरिश्चन्द्र और उनके युग के लेखकों की चेतना के निर्माण में भी सन् 1857 की क्रांति की बड़ी भूमिका है। यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि सन् 1857 की क्रांति का नेतृत्व आमजन ने किया था जबकि सामंती शक्तियों ने अंग्रेजों का साथ दिया था। यह उस आधुनिक चेतना की ओर संकेत करता है जो सामंतवाद के खिलाफ निर्मित हो रहा था। अतः सामंतवाद के पोषक 'रीतिकाल' के अंत और स्वाधीनता आन्दोलन की ओर पैर बढ़ा रहे 'आधुनिक काल' का आरंभ सन् 1850 से मानना सर्वथा उपयुक्त है।

'आदिकाल' के बाद 'रीतिकाल' के नामकरण पर भी बहुत विवाद हुआ। इस काल का विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया नामकरण निम्न है–

अलंकृत काल – मिश्रबन्धु

रीतिकाल – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

कलाकाल – डॉ. रामकुमार वर्मा

काव्यकला काल – डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'

शृंगार काल – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

उत्तर मध्यकाल – गणपतिचन्द्र गुप्त

'अलंकृत काल', 'कलाकाल' और 'काव्यकला काल' जैसे नाम उस युग की मूल संवेदना में विद्यमान कलात्मक गौरव को रेखांकित करने के लिए रखे गये हैं लेकिन इनकी व्याप्ति बेहद सीमित है। 'अलंकृत' शब्द से केवल उस युग की कविता की बाह्य विशेषता ही उभर कर आती है, जबकि उस युग में नीति परक दोहे लिखने वाले रहीम और हृदयगत अनुभूतियों से संचालित होने वाले घनानन्द जैसे कवि भी हुए। इस नाम से 'लक्षण ग्रंथों' की परंपरा का भी पता नहीं चलता। 'कलाकाल' और 'काव्यकला काल' नाम से साहित्य की

टिप्पणी

सामूहिक विशेषता का संकेत तो मिलता है लेकिन उस काल विशेष की किसी खास प्रवृत्ति का कोई पता नहीं चलता। 'कलाकाल' नाम से तो कला मात्र के विभिन्न रूपों का बोध होता है जिसका साहित्य से सीधा संबंध नहीं है। 'काव्यकला काल' में इस कमी की भरपायी की गयी है लेकिन बेहद सरलीकृत तरीके से। 'उत्तर मध्यकाल' काल को सूचित करने वाला नाम है जिससे किसी भी इतिहासकार को कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन चूंकि यह उस काल की किसी खास साहित्यिक प्रवृत्ति का निर्देश नहीं करता अतः यह सर्वमान्य नहीं हो सका।

रीतिकाल के नामकरण को लेकर मुख्य विवाद 'रीतिकाल' और 'शृंगार काल' नामक दो नामों में है। इसको लेकर आचार्य शुक्ल के भीतर भी दुविधा थी इसीलिए उन्होंने एक जगह लिखा है कि यदि रस का विचार करके कोई इस काल को शृंगारकाल भी कहे तो कोई दिक्कत नहीं है। 'शृंगार काल' कहने से उसमें इस युग के कवियों की व्यापक प्रवृत्ति का समावेश हो जाता है। भक्तिकाल के बाद हिन्दी साहित्य की संवेदना में आये बदलाव को व्यंजित करने में भी यह नाम समर्थ है। इससे रीतिकालीन साहित्य की अनुभूति और प्रवृत्ति का दिशा–निर्देश भी हो जाता है। इन सब के बावजूद इस नाम में अव्याप्ति दोष है। इस नाम में लक्षण–ग्रंथों और वीर, भक्ति तथा शृंगारेतर रसों पर आधारित रचनाओं का समावेश नहीं हो पाता। लक्षण–ग्रंथ तो रीतिकालीन साहित्य की मुख्य पहचान है।

'रीति' का शाब्दिक अर्थ मार्ग या पद्धति है। संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द काव्यरचना के मार्ग अथवा पद्धति विशेष के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। हिन्दी में 'रीतिग्रंथ' उन रचनाओं को कहा जाता है जिनमें काव्य के सब अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया गया हो। रीतिकाल में 'लक्षण–ग्रंथ' लिखने की परंपरा थी जिसमें काव्य के विभिन्न अंगों की विशेषताएं बताते हुए उसके उदाहरण के रूप में कविता रचने का चलन था। इन लक्षण ग्रंथों में सर्वाधिक विचार अलंकारों और छंदों पर हुआ और उनके अधिकांश उदाहरण रति–प्रसंगों से निर्मित किये गये हैं। रसों में भी सर्वाधिक चर्चा शृंगार रस की हुई जिससे 'रीति' शब्द अपने परंपरागत अर्थ मार्ग या पद्धति को बनाये रखते हुए भी काव्य के साथ जुड़कर शृंगार का अर्थ भी ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार 'रीतिकाल' नाम से शृंगारिक साहित्य के साथ–साथ पद्धति, कौशल, नायिका भेद, कलात्मकता आदि का अर्थ भी ध्वनित होता है। 'रीतिकाल' नाम में घनानन्द, बोधा, आलम जैसे रीतिमुक्त कवियों और भूषण जैसे वीर रस के कवियों का समाहित न होना मुश्किल खड़ी करता है। इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि रीतिकाल जैसे वैविध्यपूर्ण साहित्यिक प्रवृत्तियों वाले युग को किसी एक नाम में बांध पाना कठिन है। 'रीतिकाल' नाम के पक्ष में जो सबसे बड़ी बात है वह यह है कि इससे साहित्यिक प्रवृत्तियों के साथ–साथ उस युग की सोच और उसके मानसिक ढांचे का भी प्रतिपादन होता है जबकि 'शृंगार काल' नाम साहित्य की सीमाओं से आगे नहीं जा पाता। अतः 1650 ई. से लेकर 1850 ई. तक फैले युग के लिए 'रीतिकाल' नाम सब प्रकार से उचित है।

1.5.5 आधुनिक काल का काल–विभाजन और नामकरण

आधुनिक काल के काल–विभाजन को लेकर अधिक मतभेद नहीं है। हिन्दी के लगभग सभी विद्वान सन् 1850 से हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत मानते हैं। सन् 1850 से हिन्दी साहित्य का आरंभ स्वीकार करने की सबसे बड़ी वजह सन् 1857 की जनक्रांति है। यह क्रांति अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ आम जनता का विद्रोह था। इस जनविद्रोह

टिप्पणी

का प्रभाव और विस्तार बहुत अधिक था। लगभग एक माह तक चले इस विद्रोह में विद्रोहियों ने दिल्ली की सत्ता अपने हाथों में ले ली थी। अंग्रेज सरकार लगभग पराजित हो गयी थी। इस विद्रोह का नेतृत्व किसी सामंत के हाथ में न होकर भारत की आम जनता के हाथों में था। यह विद्रोह भारत में आधुनिक चेतना के जन्म और विकास का प्रमाण था। सन् 1857 की जनक्रांति सामाजिक और राजनीतिक बदलाव की एक मंजिल होने के साथ–साथ हिन्दी प्रदेश की चेतना में बदलाव का भी एक मोड़ था। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के जन्म और निर्माण में इसकी बड़ी भूमिका है। भारतेंदु युग के सभी लेखकों की सोच पर इस क्रांति का व्यापक प्रभाव था। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सन् 1850 में हुआ था इसलिए भी हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ इसी वर्ष से माना जाता है।

गद्य लेखन की शुरुआत और प्रधानता को ध्यान में रखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल का नाम 'गद्य काल' रखा था। आधुनिक काल के आरंभिक युग 'भारतेंदु युग' में कविता ब्रजभाषा में लिखी जाती थी और गद्य हिन्दी में। 'भारतेंदु युग' के साथ ही हिन्दी में बड़े पैमाने पर गद्य लेखन का आरंभ हुआ जो समय के साथ निरंतर विकसित होता गया। गद्य की तमाम विधाओं में साहित्य लेखन का आरंभ हुआ। संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज जैसी कई नवीन गद्य विधाओं का जन्म हुआ। इस परिप्रेक्ष्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा आधुनिक काल का किया गया नामकरण अनुचित नहीं है। परंतु यहां यह भी ध्यान रखने की बात है कि 'भारतेंदु युग' के बाद यानी बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों से ही महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी पत्रिका 'सरस्वती' के निर्देशन में खड़ी बोली हिन्दी में काव्य लेखन की जिस परंपरा की शुरुआत हुई वह उत्तरोत्तर विकसित होती गयीं। 'छायावाद' ने हिन्दी कविता को शीर्ष पर स्थापित कर दिया। 'प्रगतिवाद' और 'प्रयोगवाद' के कवि अपने समय के गद्य लेखकों से किसी भी मायने में कम नहीं थे। ऐसी स्थिति में 'आधुनिक काल' को 'गद्य काल' कहना उचित प्रतीत नहीं होता। 'गद्य काल' नाम से पद्य की तुलना में गद्य को अधिक महत्व मिलता है और पद्य की उपेक्षा का भाव भी प्रकट होता है। 1857 ई. की क्रांति के बाद हिन्दी में आधुनिकता की चेतना का जन्म और विकास हुआ। इस चेतना ने साहित्य के सभी रूपों को प्रभावित किया। गद्य साहित्य का लेखन इस चेतना की ही देन है। आधुनिकता ने ही छापेखाने को जन्म दिया जिससे पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ और उसमें गद्य लेखन को जगह मिली। तात्पर्य यह कि गद्य का जन्म आधुनिकता के कारण हुआ न कि गद्य साहित्य के कारण आधुनिक चेतना का निर्माण हुआ। ऐसे में हिन्दी साहित्य के अंतिम काल को 'आधुनिक काल' कहना ज्यादा उचित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को भी इस नाम से कोई आपत्ति नहीं थी। गणपतिचन्द्र गुप्त ने 'आधुनिक काल' को 'वर्तमान काल' नाम दिया है। इस नामकरण का कोई तार्किक आधार नहीं है इसलिए इस पर अलग से विचार करने की कोई खास आवश्यकता नहीं है।

1.6 आदिकाल

आदिकाल (सन् 1000–1350 ई.) के काल–विभाजन और नामकरण के क्रम में हम इस युग से परिचित हो चुके हैं। आदिकाल संक्रांति का काल है। इसे 'संधिकाल' कहना अनुचित

अपनी प्रगति जांचिए

1. किसने नाथों एवं सिद्धों के साहित्य को सांप्रदायिक कहा है?
   (i) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
   (ii) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
   (iii) सांकृत्यायन
   (iv) मिश्रबंधु
2. हिंदी साहित्य के इतिहास में काल–विभाजन का पहला प्रयास किसने किया था?
   (i) गार्सां द तासी
   (ii) शिवसिंह सेंगर
   (iii) जॉर्ज ग्रियर्सन
   (iv) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन किस प्रकार किया है?
4. आदिकाल के लिए 'चारणकाल' नाम किस विद्वान ने सुझाया?
   (i) रामकुमार वर्मा
   (ii) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
   (iii) मिश्रबंधु
   (iv) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

टिप्पणी

नहीं होगा। इस युग में हिन्दी भाषा अपभ्रंश के केंचुल से निकलकर अपनी पहचान बनाने की कोशिश कर रही थी। भाषा, साहित्य, संस्कृति, राजनीति और समाज हर क्षेत्र में इस युग में परस्पर विरोधी प्रवृतियों का प्राधान्य था। इस युग में किसी भी सामान्य विशेषता की पहचान करना कठिन था। राजनीतिक स्तर पर उत्तर भारत में हर्षवर्द्धन के बाद ही किसी शक्तिशाली राजा के अभाव में कोई केंद्रीय सत्ता थी ही नहीं। साम्राज्य छोटे–छोटे राजाओं के बीच बिखरा हुआ था। भाषा के स्तर पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के साथ–साथ तमाम स्थानीय भाषाओं में लोग आपसी संवाद करते थे। मुसलमानों के आक्रमण के बाद अरबी–फारसी का भी प्रभाव बढ़ा। धार्मिक स्तर पर किसी एक धर्म का वर्चस्व नहीं था। लोग अनेकानेक संप्रदायों में विभाजित और भ्रमित थे। नाथ, सिद्ध, जैन, वैष्णव, शाक्त आदि कई मतों को मानने वाले लोग थे जिनके बीच का मतभेद चरम पर था। इन सब वजहों से आदिकाल में साहित्य के क्षेत्र में भी कई प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल में मिलने वाले रासो काव्य को ही केवल साहित्य माना और आदिकाल का नामकरण 'वीरगाथा काल' रख दिया। बौद्ध और जैन साहित्य को साम्प्रदायिक मानकर उन्होंने उन्हें हिन्दी साहित्य से बाहर का रास्ता दिखा दिया। लेकिन बाद के इतिहासकारों ने आदिकाल में पायी जाने वाली अनेक साहित्यिक प्रवृत्तियों को स्वीकार किया और उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में जगह दी। आइये अब हम आदिकाल की विभिन्न साहित्यिक धाराओं और उनकी रचनाओं का सामान्य परिचय प्राप्त करते हैं।

सिद्ध साहित्य

बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा से संबंधित साधकों को सिद्ध कहा जाता है। इनके यहां तंत्र–मंत्र की साधना का प्राधान्य है। आठवीं सदी के सरहपा को पहला सिद्ध माना जाता है। सिद्धों की कुल संख्या चौरासी बतायी जाती है। इन्होंने आम जनता की भाषा में पर्याप्त साहित्य लिखा जिसमें सहज–योग की सैद्धांतिक मान्यताओं की प्रतिष्ठा और वर्णाश्रम व्यवस्था की कठोर आलोचना मिलती है। इन्होंने संध्या भाषा में गूढ़ विचारों को प्रस्तुत करने वाली रचनाएं भी लिखीं जिसका प्रभाव कबीर की उलटवासियों में मिलता है। कबीर की खंडन–मंडन की प्रवृत्ति पर भी सिद्धों का प्रभाव है। सिद्धों ने दोहा और पद नामक दो काव्य रूपों में अपनी रचनाएं की जो आगे चलकर हिन्दी के कवियों का सर्वाधिक प्रिय काव्यरूप बना। सिद्ध कवियों के दोहों का संकलन 'दोहा कोष' और उनके द्वारा रचित पदों का संकलन 'चर्यापद' या 'चर्यागीत' नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दी में कुल चौदह सिद्धों की रचनाएं मिलती हैं। सर्वाधिक प्रसिद्ध सिद्ध कवि सरहपा की 32 रचनाओं का जिक्र मिलता है जिसमें सर्वाधिक प्रमुख रचनाएं हैं– 'कायाकोश', 'दोहाकोश', 'सरहपादगीतिका'। सरहपाद के शिष्य शबरपा की सोलह रचनाओं का उल्लेख मिलता है जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध 'चर्यापद' है। डोम्भिपा नामक सिद्ध ने 21 ग्रंथ लिखे जिसमें 'डोम्बि–गीतिका' प्रमुख है। इसमें गुरु की महत्ता का प्रतिपादन है। कण्हपा ने 74 ग्रंथ लिखे पर 'कण्हपादगीतिका' और 'दोहाकोश' को ही प्रसिद्धि मिली। इनके अलावा लुइपा, शान्तिपा आदि सिद्ध कवियों का जिक्र मिलता है।

नाथ साहित्य

नाथपंथ के संस्थापक आचार्य गोरखनाथ हैं जिन्हें शिव का अवतार माना जाता है। ये शैव थे। यह दसवीं सदी में सक्रिय थे। नाथ संप्रदाय को योग सम्प्रदाय, सिद्ध मत, अवधूत पंथ

टिप्पणी

आदि कई नामों से जाना जाता है। नाथ पंथ सिद्धों की ही परंपरा का विकसित रूप है। कई सिद्धों का जिक्र नाथ योगियों के रूप में भी मिलता है। गोरखनाथ ने पतंजलि के योग को विकसित कर हठयोग का प्रवर्तन किया। इसमें शरीर की कठोर साधना के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। बाह्य संसार से नाता तोड़कर नाथ पंथी गुरु के मार्गदर्शन में कुंडलिनी का जागरण कर परम आनन्द की प्राप्ति करते हैं। गोरखनाथ ने ब्रह्मचर्य के पालन, मांस और शराब के सेवन पर रोक, मन और शरीर की शुद्धि, आचरण की पवित्रता पर बहुत जोर दिया। नाथों के साहित्य में भी कर्मकांडों का विरोध और वर्णाश्रम की आलोचना मिलती है। भक्तिकाल के निर्गुण कवियों पर नाथपंथी रचनाकारों का गहरा असर है। कबीर ने हठयोग की साधना से संबंधित शब्दावली का खूब प्रयोग किया है। नाथ योगियों की कुल संख्या सिद्धों की तरह ही चौरासी बतायी जाती है। इनमें से प्रमुख नाथ योगी हैं– नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पटनाथ, जलंधर और मलयार्जुन। गोरखनाथ की अनेक रचनाएं हिन्दी में मिलती हैं। प्रकाशक पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने उनकी कुछ रचनाओं का प्रकाशन 'गोरखबानी' नाम से किया है। 'सबदी' और 'गोरखबोध' भी इनकी प्रमुख रचनाएं हैं।

जैन साहित्य

जैन शब्द 'जिन' से बना है जिसका मतलब 'विजय पाने वाला' है। जैन धर्म के प्रवर्तक श्री महावीर स्वामी हैं जो बुद्ध से पहले के माने जाते हैं। आदिकाल में जैनों का प्रचुर साहित्य मिलता है। इसके दो रूप हैं– (क) नाथों और सिद्धों की तरह दोहा छंद में रचित साहित्य जिनमें मन और शरीर की शुद्धि और कर्मकांडों का खंडन मिलता है। (ख) सांप्रदायिक साहित्य जिसमें जैन धर्म के सिद्धांत और जैन साधुओं के जीवन के प्रेरक प्रसंग उपलब्ध हैं। हिन्दी साहित्य के अंतर्गत पहली तरह की रचनाओं को ही शामिल किया जा सकता है। जैन आचार्य हेमचन्द्र (बारहवीं शती) की रचना 'प्राकृत व्याकरण' को हिन्दी का प्रमुख जैन साहित्य कहा जा सकता है। इसमें हेमचन्द्र के अलावा लोक में प्रचलित अन्य व्यक्तियों की रचनाएं भी शामिल हैं। जैन साहित्य में जैन धर्म की महत्ता और प्रचार, सदाचार का उपदेश, कर्मकांडों की आलोचना और रहस्य–साधना से संबंधित पदों की प्रधानता है। स्वयंभू का 'पउम चरिउ', पुष्पदंत (दसवीं शती) का 'णायकुमार चरिउ', मेरुतंग (तेरहवीं सदी) का 'प्रबंध–चिंतामणि', मुनि रामसिंह का 'पाहुड़ दोहा', धनपाल का 'भविसत्त कहा' जैन साहित्य की प्रमुख कृतियां हैं।

रासो साहित्य

अपभ्रंश से प्रभावित हिन्दी में लिखे जाने वाले वीरगाथात्मक रचनाओं को रासो साहित्य कहा जाता है। इसे वीरगाथात्मक काव्य और चारण काव्य भी कहा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जिन बारह रचनाओं की प्रवृत्तियों को केन्द्र में रखकर आदिकाल का नाम 'वीरगाथा काल' रखा था उनमें से अधिकांश रासो काव्य हैं। आचार्य शुक्ल ने इन्हें ही आदिकाल का प्रधान साहित्य माना था। रासो काव्यों की सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि इनमें से अधिकांश अप्रमाणिक हैं। इनमें से सबसे प्रसिद्ध 'पृथ्वीराज रासो' को स्वयं शुक्लजी ही अप्रमाणिक बता गये हैं। आदिकाल के प्रमुख रासो काव्य हैं– नरपति नाल्ह की रचना 'बीसलदेव रासो', जगनिक की रचना 'परमाल रासो', नल्लसिंह की रचना 'विजयपाल रासो', दलपति विजय की

टिप्पणी

रचना 'खुमाण रासो', भट्ट केदार की रचना 'जयचंद प्रकाश', मधुकर कवि की रचना 'जयमयंक जस चंद्रिका' आदि। इन रासो काव्यों को 'चारण काव्य' इसलिए कहा जाता था कि क्योंकि यह किसी राजा के आश्रित कवि द्वारा अपने आश्रय दाता की प्रशंसा में लिखा जाता था। इसमें राजा के विभिन्न युद्धों और विवाहों का वर्णन होता था। नायिका का नख–शिख वर्णन, युद्ध के चित्र, सेना के गमन के चित्र, बारह महीनों की प्रकृति का मनोरम वर्णन इसका प्रधान विषय था। वीर और श्रृंगार रसों की प्रधानता होती थी। एक कथा के भीतर कई उपकथाएं रहती थीं। महाकाव्य प्रिय काव्य रूप और छप्पय चारण कवियों का प्रिय छंद था।

लौकिक साहित्य

आदिकाल में कई ऐसे कवि और रचनाएं मिलती हैं जिन्हें उपर्युक्त किसी धारा में स्थान नहीं दिया जा सकता। ऐसे रचनाकारों में अमीर खुसरो (14 वीं शती) और विद्यापति (14 वीं शती) प्रमुख हैं। अमीर खुसरो को हिन्दी का पहला कवि भी कहा जाता है। इनके दोहों, मुकरियों और पहेलियों में अपभ्रंश से भिन्न खड़ी बोली हिन्दी का स्पष्ट रूप मिलता है। इनकी भाषा में आधुनिक काव्य–भाषा के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। खुसरो मूलतः फारसी के रचनाकार थे और बहुत सारी विद्याओं में निपुण थे। खड़ी बोली हिन्दी में लिखी इनकी रचनाएं अपने समय में बहुत लोकप्रिय थीं। विद्यापति मिथिला के राजा शिव सिंह के आश्रय में रहते थे। संस्कृत में इनकी ग्यारह और हिन्दी में कुल तीन रचनाओं का पता चलता है। 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' चरितकाव्य हैं जबकि विद्यापति की प्रसिद्धि का आधार स्तम्भ 'विद्यापति की पदावली' शृंगारिक तथा भक्तिपरक रचना है। विद्यापति ने अपनी पदावली में राधा–कृष्ण के ईश्वरीय रूप को त्यागकर लौकिक मनुष्य के रूप में उनके बीच विकसित हो रही प्रेम–भावना का बेहद अंतरंग चित्र खींचा है। 'पदावली' में युवा अवस्था की ओर बढ़ रहे किशोरों के मन में सक्रिय प्रेम के मनोवैज्ञानिक पक्ष का जैसा चित्रण विद्यापति ने किया है वह दुर्लभ है।

1.6.1 आदिकाल की परिस्थितियां

साहित्य और समाज के बीच अटूट संबंध होता है। समाज ही साहित्य की प्रेरक शक्ति है और सृजित होने के बाद साहित्य सदियों तक समाज को प्रभावित करता रहता है। किसी भी साहित्यिक रचना का अध्ययन उसके समय और समाज से अलग होकर नहीं किया जा सकता। किसी युग के साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उस युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थितियों को समझना आवश्यक है। आदिकाल का समय उलझनों से भरा समय रहा है। समाज के किसी भी क्षेत्र में किसी एक प्रवृत्ति का प्राधान्य नहीं था। राजनीतिक स्तर पर कोई केंद्रीय शक्ति नहीं थी। लगातार हो रहे बाहरी और आंतरिक आक्रमणों ने सामाजिक तानेबाने को छिन्न–भिन्न कर दिया था। केंद्रीय सत्ता के कमजोर हो जाने की वजह से असहाय हो गये लोग अनेकानेक धर्मों और सम्प्रदायों में भटकने के लिए बाध्य थे।

राजनीतिक परिस्थितियां

आदिकाल (1000–1350 ई.) का राजनीतिक इतिहास बाहरी आक्रमणों से तबाह हो रहे भारत का इतिहास है। भारत पर यवनों का आक्रमण तो भारत के अंतिम ताकतवर शासक और कनौज के राजा हर्षवर्द्धन (606–647 ई.) के समय से ही होने लगा था लेकिन उन्हें

सफलता नहीं मिली। उसकी मृत्यु के बाद मुहम्मद बिन कासिम सन् 710–11 ई. में पहली बार सिंध का क्षेत्र जीत पाने में सफल हुआ। लेकिन इसके लम्बे समय बाद तक मुसलमान सिंध से आगे नहीं बढ़ पाये। दसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में गजनी के शासक महमूद गजनवी ने भारत के उत्तर पश्चिमी हिस्से पर आक्रमण करना प्रारंभ किया। सन् 1000 से 1026 के बीच उसने भारत पर सत्रह बार आक्रमण किये और पंजाब से लेकर गुजरात तक के इलाके को जीत कर अपार सम्पत्ति एकत्रित की। उसकी रुचि भारत के धन में थी उसकी भूमि में नहीं। अतः उसके जाते ही फिर भारतीय रजवाड़े खड़े हो उठते थे। दसवीं–ग्यारहवीं सदी के दौरान उत्तर भारत में छोटे–छोटे राजपूत राजाओं का आधिपत्य रहा जिनमें आपस में अक्सर जमीन और स्त्री के लिए संघर्ष होते रहे। बारहवीं सदी में दिल्ली और अजमेर के राजा पृथ्वीराज चौहान (1179–1193 ई.) और कन्नौज के राजा जयचंद (1170–93 ई.) उत्तर भारत के अंतिम ताकतवर हिन्दू शासक थे। इनके बीच आपसी मतभेद बहुत ज्यादा था जिसका फायदा उठाते हुए मुहम्मद गोरी ने जयचंद की सहायता से तराइन के युद्ध में सन् 1192 में पृथ्वीराज चौहान को और फिर 1193 ई. में जयचंद को पराजित कर भारत में मुस्लिम शासन की नींव रखी। गोरी आरम्भ से ही भारत में अपनी सत्ता स्थापित करना चाहता था इसलिए अपनी हर विजय के बाद वह विजित प्रदेशों का एक प्रशासक नियुक्त करता था। अपनी मृत्यु (1206 ई.) के पहले उसने दिल्ली का गवर्नर कुतुबुद्दीन ऐबक को नियुक्त कर दिया था। गोरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया और दिल्ली में गुलाम वंश (1206–1290 ई.) की नींव रखी। इसके पश्चात अंग्रेजों के आगमन तक दिल्ली यानी भारत पर तुर्कों–मुगलों का शासन रहा। आदिकाल के दौरान दिल्ली पर गुलाम वंश के अलावा खिलजी वंश, तुगलक वंश का शासन रहा। तुर्क शासकों ने भारत को राजनीतिक अस्थिरता से मुक्त किया और एक शासन के अंतर्गत अधीन करने की कोशिश की पर जब–जब दिल्ली की सत्ता किसी कमजोर शासक के हाथों में गयी तब–तब राजनीतिक अस्थिरता के साथ–साथ बाहरी आक्रमण भी हुए। चंगेज खान और तैमुर लंग (1369 ई.) के आक्रमणों ने भारतीय जनता को असीम कष्ट पहुंचाये। दिल्ली सल्तनत के इल्तुतमीश, बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद बिन तुगलक और फिरोज तुगलक प्रसिद्ध शासक रहे।

सामाजिक परिस्थितियां

मुसलमानों के आक्रमण के बहुत पहले से ही भारतीय समाज वर्णों और जातियों में विभाजित था। यह उनके आगमन के बाद भी जारी रहा। यह विभाजन इतना सख्त था कि भारतीय समाज की बहुसंख्यक आबादी जाति के नाम पर मुख्य धारा से अलग थी। राजपूतों और ब्राह्मणों का समाज में प्रभुत्व था। लगातार हो रहे बाहरी आक्रमणों के चलते व्यापार के हालात बुरे थे इस कारण वैश्यों की स्थिति खराब थी। शूद्रों का जीवन गुलामों से भी बदतर था। हिन्दू समाज में उनकी स्थिति तो खराब थी ही आक्रमणकारी भी उनके साथ बुरा बर्ताव ही करते थे। वे उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर करते थे या गुलाम बनाकर बेच देते थे। युद्धों के कारण लोगों की आर्थिक स्थिति बदतर हो गयी थी। समाज का आर्थिक विभाजन बहुत अधिक था। सामंत और सत्ताधारी वर्ग के पास ऐश्वर्य के सभी साधन थे जबकि आम जनता भोजन तक लिए तरसती थी। मजबूरी में स्त्रियां और निम्न वर्ण के लोग अपने शरीर

टिप्पणी

टिप्पणी

और श्रम का विक्रय करते थे। गरीबी में पिस रही जनता अपने जीवन के सुधार के लिए धर्म की शरण में जाती थी लेकिन वहां भी उन्हें विभिन्न कर्मकांडों, रीति–रिवाजों और अंधविश्वासों का ही शिकार होना पड़ता था। तुर्कों के विजय के कारण ये हालात और भी अधिक बुरे हो गये। आक्रमणकारियों के लिए विजित भारतीयों के जीवन का कोई मूल्य नहीं था। तुर्कों ने इस्लाम के नाम पर बहुसंख्यक हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किये। उन्हें इस्लाम धर्म अपनाने के लिए मजबूर किया। उनकी स्त्रियों का अपहरण किया और उनकी संपत्ति छीन ली। कुल मिलाकर आदिकालीन भारतीय समाज एक विशृंखल समाज था।

धार्मिक परिस्थितियां

उत्तर भारत का अंतिम ताकतवर शासक हर्षवर्द्धन बौद्ध धर्म का अनुयायी था। इसके समय तक उत्तर भारत में राज्याश्रय में बौद्ध धर्म फल–फूल रहा था और आम जनता के बीच ब्राह्मण और शैव धर्म का प्रभाव था। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के बाद जो छोटे–छोटे सामंत उभरे उनमें से अधिकांश राजपूत थे और ब्राह्मण धर्म को मानते थे। सन् 1000 के आसपास तक उत्तर भारत में ब्राह्मण धर्म का वर्चस्व बढ़ने लगा और बौद्ध और जैन धर्म का प्रभाव कम होने लगा। वैसे बौद्ध धर्म राज्याश्रय से बाहर निकलकर बदले हुए रूप में आमजन के बीच फैल रहा था। नाथों और सिद्धों का प्रभाव इसे प्रमाणित करता है। इस समय बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा का बहुत प्रभाव था जिसमें तंत्र–मंत्र की प्रधानता थी। वज्रयानी बौद्ध जहां एक ओर तंत्र–मंत्र के द्वारा आम जनता को अंधविश्वासों की दलदल में ले जा रहे थे वहीं हिन्दू धर्म के कर्मकांड और वर्णाश्रम व्यवस्था पर चोट पहुंचाकर आम जन को जातिगत क्रूरता से बाहर निकालने का प्रगतिशील काम भी कर रहे थे। बारहवीं सदी तक आते–आते धार्मिक स्तर पर दो बड़े बदलाव हुए– पहला विदेशी धर्म इस्लाम का आगमन और सातवीं–आठवीं सदी में दक्षिण में शुरू हुई वैष्णव धर्म की लहर का इस क्षेत्र में फैलना। फिर भी वैष्णव धर्म का जन–जन के बीच विस्तार तो भक्तिकालीन दौर में ही हुआ। इस्लाम के आगमन ने भारतीय साधना पद्धतियों में फैले तमाम भेदभावों को दूर कर इस्लाम के समक्ष एकजूट होने का विकल्प प्रस्तुत किया। बौद्ध और जैन धर्म को छोड़कर हिन्दुओं के बीच लोकप्रिय अन्य अनेक साधना पद्धतियां हिन्दू धर्म की पताका के तले आदिकाल के अंतिम दौर में एकजुट होने लगीं। लेकिन इन सब के बीच यह भी सत्य था कि तमाम भारतीय धर्म अपने मूल स्वरूप को खोकर महज कर्मकांड होकर रह गये थे। धर्म की आत्मा मर गयी थी। भक्तिकालीन साहित्य ने उस मरी हुई आत्मा में पुनर्जीवन का समावेश किया।

1.6.2 आदिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां

आदिकाल के सामान्य परिचय के क्रम में हमने देखा कि इस काल का साहित्य स्पष्ट रूप से दो धाराओं में विभाजित था– एक तरफ सिद्धों–नाथों द्वारा धार्मिक साहित्य लिखा जा रहा था तो दूसरी तरफ रासो साहित्य का वर्चस्व था। इन दोनों धाराओं में भाव से लेकर भाषा तक में किसी प्रकार की समानता की खोज करना मुश्किल है। आदिकाल की किसी सामान्य प्रवृत्ति की खोज संभव नहीं है। अतः इस काल की प्रमुख साहित्य धाराओं पर अलग से विचार कर हम इस युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।

टिप्पणी

सिद्ध साहित्य

सिद्ध साहित्य का संबंध बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा से है। ये मंत्रों और कठिन साधना द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग बतलाते थे। इनकी कुल संख्या 84 बतायी जाती है जिनमें 21 सिद्धों की रचनाएं मिलती हैं। इनका समय संवत् 797 से संवत् 1257 के मध्य था। सिद्ध प्रायः निम्न जाति और अशिक्षित वर्ग से संबंधित थे। इन्होंने जन भाषा में साहित्य रचा। इनकी रचनाएं अर्द्ध मागधी अपभ्रंश में मिलती है। इनकी भाषा को 'संध्या भाषा' भी कहा गया है। इनकी रचनाओं में शांत और शृंगार रस की प्रधानता है। इन्होंने दोहा, चौपाई, चर्यागीत आदि छंदों का प्रयोग किया है। विषय के आधार पर सिद्ध साहित्य को मुख्य रूप से तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है– (क) नीति और आचरण से संबंधित साहित्य, (ख) साधना संबंधी साहित्य, (ग) उपदेशात्मक साहित्य।

सरहपा को पहला सिद्ध और इस धारा का प्रतिनिधि कवि माना जाता है। ये जाति के ब्राह्मण थे और इन्होंने बत्तीस ग्रंथों की रचना की थी। 'दोहाकोश' इनकी सर्वाधिक प्रमुख रचना है। सरहपा के साहित्य में गुरु की महत्ता पर बहुत बल दिया गया है। इन्होंने धार्मिक पाखंड और आडंबर का प्रबल विरोध किया है। इनकी रचनाओं में रहस्यवाद, वाह्याचारों का खंडन–मंडन, सहज मार्ग पर बल, शरीर की प्रधानता, सहज साधना और संयम की महत्ता, भोग के माध्यम से ही योग कर ब्रह्म की प्राप्ति का संदेश मिलता है। कबीर की वाणियों पर सरहपा का बहुत अधिक प्रभाव मिलता है। सरहपा ने परमात्मा से वियोग से संबंधित कई भावुक दोहे लिखे हैं। गुरु की महानता को बताते हुए सरहपा एक दोहे में लिखते हैं कि उसकी वाणी में सहजामृत का वास रहता है। अस्थिर चित वाले व्यक्तियों को मरुस्थल में न भटककर, शून्य में न विचरकर, मीन, पतंग, भ्रमर, हिरण की तरह विषयासक्ति में न पड़कर केवल अपने गुरु की अमृतमय वाणी का पान करना चाहिए–

गुरु–उवएसे अमिय–रसु, धाव ण पीअउ जेहि।
वहु–सत्थत्थ–मरुत्थलहिं, तिसिए मरिअउ तेहिम।।

हिन्दी के अन्य सिद्ध कवियों ने सरहपा के ही विचारों का विस्तार किया है। उनकी कविताओं का स्वर प्रायः एक जैसा ही है। सिद्धों की कविताओं की दो विशेषताएं रेखांकित करने योग्य हैं– जगत के प्रति सकारात्मक एवं स्वीकारात्मक दृष्टिकोण और निर्भीकता। सिद्ध कवियों ने घर को छोड़कर बन जाने और अपने शरीर को नश्वर मानकर उसकी उपेक्षा करने का विरोध किया। सरहपा ने 'घरहि म थक्कु म जाहि वणे, जहि तहि मण परिआण' लिखकर कहा कि मोक्ष की प्राप्ति घर में ही हो सकती है उसके लिए वन में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। सिद्धों ने बहुत ही साहस के साथ समाज में विद्यमान बुराइयों का विरोध किया। वेदों और पुराणों के ज्ञान को निरर्थक बताया। उन्होंने मूर्तिपूजा का खंडन किया और पंडित एवं पुजारियों के पीछे भागने वाले लोगों को जमकर फटकारा। पंडितों की आलोचना करते हुए प्रसिद्ध सिद्ध कण्हपा ने लिखा कि पंडित उस भौरे की तरह होते हैं जो केवल पके हुए श्रीफल के बाहर ही चक्कर लगाता है उसके भीतर के फल का स्वाद कभी चख नहीं पाता। पंडित आगम, वेद, पुराण के बीच ही चक्कर लगाता रह जाता है कभी भी परमात्मा के पास पहुंच ही नहीं पाता। कण्हपा ने लिखा–

टिप्पणी

आगम वेअ पुराणेहिं पण्डिअ माण वहन्ति।
पक्क सिरीफलें अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्तिम।।

सिद्धों का साहित्य अधिकांशतः अपने पंथ के प्रचार–प्रसार के लिए लिखा गया है इसलिए रामचन्द्र शुक्ल जैसे आचार्य इसे साम्प्रदायिक रचना मानते हैं। मूर्तिपूजा और कर्मकांडों का विरोध भी इन्होंने एक खास दृष्टि से किया है। फिर भी इनकी रचनाओं में संवेदना का पक्ष बहुत अधिक प्रबल है जो इसे साहित्य की श्रेणी में ले आता है। आम जनता के बीच इनके पदों की लोकप्रियता बहुत अधिक थी। सिद्धों ने दोहा, छंद और चर्यापद में कविता कर हिन्दी कविता को इन छंदों से परिचित कराया। आगे चलकर भक्तिकाल में यही दोनों छंद हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय छंद बने। इन्होंने अधिकांशतः मुक्त काव्यों की रचना की।

नाथ साहित्य

बौद्ध धर्म की सहजयान शाखा से नाथ पंथ का जन्म हुआ। यह सिद्ध संप्रदाय का ही विकसित रूप है। नाथ पंथ ने पूर्ववर्ती तमाम साधना पद्धतियों का मेल अपने भीतर कर लिया था। इसका आम जन पर व्यापक प्रभाव था। चौदहवीं सदी के मध्य तक उत्तर भारत की जनता पर इसका असर रहा लेकिन उसके बाद कर्मकांडों का विरोध करने वाले इस पंथ में अनेक विकृतियों का जन्म हो गया। नाथपंथी रहस्यमय कर्मकांडों द्वारा आम आदमी को भयभीत करने लगे। चौरासी सिद्धों की तरह चौरासी नाथों की भी चर्चा होती है लेकिन उनमें से नवनाथों को ही मान्यता प्राप्त है। हिन्दी के नाथ कवियों में गोरखनाथ सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हैं। इनकी रचनाओं में इस धारा का प्रतिनिधि स्वर आसानी से पाया जा सकता है। गोरखनाथ का मूल स्थान उत्तर प्रदेश की गोरखपुर नामक जगह है लेकिन उनके मत का अधिक प्रचार प्रसार पंजाब और राजस्थान के इलाके में हुआ। गोरखनाथ की कई रचनाओं का उल्लेख मिलता है लेकिन उसमें 'गोरखवाणी' का प्रमुख स्थान है। गोरखनाथ के अलावा इस धारा में चौरंगीनाथ, गोपीचंद, चुणकरनाथ और भरथरी का प्रमुख स्थान है।

नाथसाहित्य का सैद्धांतिक आधार शैवमत से ग्रहण किया गया है। इनकी साधना पद्धति हठयोग के काफी करीब है। हठयोग के द्वारा कायाशुद्धि कर प्राणायाम द्वारा कुंडलिनी जाग्रत करना हर नाथपंथी योगी का प्रधान लक्ष्य होता है। कुंडलिनी जागरण से ब्रह्मरंध में अनाहत नाद की निरंतर घोषणा होती रहती है जिससे परमात्मा के मिलन का आनन्द मिलता है। नाथपंथी कायाशुद्धि को ही ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र मार्ग स्वीकार करते हैं और बाह्य साधना को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इनके पदों में इसीलिए हठयोग की सैद्धांतिक मान्यताओं का विस्तार से वर्णन और इसके साथ ही मूर्तिपूजा या तीर्थ भ्रमण जैसे बाह्याचारों का जबरदस्त विरोध भी मिलता है। इन्होंने जगह–जगह पर इसी कारण शास्त्र आधारित ज्ञान का मजाक भी उड़ाया है।

सिद्धों की तरह नाथ साहित्य में भी गुरु की मुक्त कंठ से तारीफ की गयी है। इनका मानना है कि गुरु के बिना ईश्वर तक पहुंचना कठिन है। उसके अभाव में मनुष्य के पथभ्रष्ट हो जाने का बहुत खतरा है। नाथों ने भारतीय समाज में विद्यमान वर्णाश्रम की व्यवस्था की मुखर आलोचना की। इस कारण भारत की निम्न जनता के बीच इन्हें अपार लोकप्रियता

टिप्पणी

हासिल थी। इनका प्रभाव हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों पर समान रूप से था। उन्होंने एकेश्वरवाद की स्थापना की। नाथों ने अहंकार को परमात्मा प्राप्ति की राह की एक कठिनाई के रूप में देखा और दिखाया।

नाथ साहित्य अधिकांशतः अपने मत के प्रचार के लिए लिखा गया है। उन्होंने शून्य की साधना पर बल दिया। ईश्वर की प्राप्ति के लिए सहज–समाधि को सर्वाधिक सरल रास्ता बताया। आचारशुद्धि और कायाशुद्धि के बिना ईश्वर की राह पर एक कदम भी नहीं बढ़ा जा सकता। नाथ हठयोग के साधक और समर्थक थे जिसके लिए शरीर और मन दोनों का शुद्ध होना आवश्यक है। वे ईश्वर के अमूर्त रूप के आराधक थे। उन्होंने रहस्यवादी तरीके से अपनी बातें भी कहीं हैं। ईश्वर की जगत में उपस्थिति के विषय में गोरखनाथ ने लिखा है कि इस मूर्त जगत में ही वह अमूर्त रूप में रहता है। उसका सच्चा साधक ही उसकी उपस्थिति का अहसास कर सकता है। गोरखनाथ ने लिखा है–

अंजन मांहि निरंजन भेट्या, तिल मुख भेट्या तेलं।
मूरती मांहि अमूरति परस्या, भया निरंतर खेलं।।

नाथपंथियों का संबंध हिन्दी प्रदेश के पूर्वी अंचल से था इसलिए उनकी भाषा पर इस अंचल की जनपदीय भाषाओं अवधी, भोजपुरी, मैथिली और बंगला का प्रभाव है। इनकी भाषा में फारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। ये योगी घुमंतू किस्म के होते थे और अपने पंथ के प्रचार के क्रम में पंजाब और महाराष्ट्र तक गये थे। इस कारण इनके पदों में इन भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं। विभिन्न प्रांतों की भाषा के शब्दों के मेल से बनने के कारण नाथ साहित्य की भाषा को 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा गया। आम जन को चमत्कृत करने के लिए इन्होंने रहस्यमयी भाषा का प्रयोग किया इसलिए इनकी भाषा को 'संध्या भाषा' भी कहा गया। इनका साहित्य 'साखी', 'सबदी', 'दोहा', 'सोरठा' और 'चौपाई' में मिलता है।

जैन साहित्य

भारत के पूर्वी प्रांत में नाथ–सिद्ध कवियों का प्रभाव था और उसके पश्चिमी प्रांत में महावीर स्वामी के पंथ के अनुयायी जैन कवियों का। इन्होंने अपने धर्म के प्रचार के लिए साहित्य की रचना की। जैन धर्म हिन्दू धर्म के काफी निकट है। जैन धर्म में आचार–विचार की पवित्रता और अहिंसा, करुणा, त्याग एवं दया आदि भावों के प्रति लगाव को प्रमुखता दी गयी है। इस धर्म में अत्यधिक सहिष्णु बनने के लिए उपवास, गृह त्याग, कठोर व्रत आदि विधियों का प्रचलन है। इसमें कर्मकांड की आलोचना और समस्त मनुष्य को एक मानने की भावना पर जोर दिया गया है।

हिन्दी के आदिकाल में अनेक प्रसिद्ध जैन कवियों और उनकी रचनाओं का पता चलता है। जहां सिद्धों–नाथों ने मुक्तक काव्यों की रचना की है वहीं जैन कवियों ने अधिकांशतः प्रबंध काव्य ही लिखे हैं। स्वयंभू जैन साहित्य के सर्वश्रेष्ठ और प्रतिनिधि कवि हैं। ये आठवीं सदी में सक्रिय थे। इनकी सर्वाधिक प्रमुख रचना 'पउमचरिउ' है जो एक प्रबंध काव्य है। इसके अलावा 'पंचमीचरिउ' 'रिट्ठणेमिचरिउ' और 'स्वयंभूछन्दस' को भी इनकी रचनाओं में शामिल किया जाता है। 'पउमचरिउ' में राम की कथा का विस्तृत वर्णन है। लेकिन इस कथा में जैन सिद्धांतों के अनुसार काफी फेरबदल किया गया है। दसवीं सदी

टिप्पणी

के कवि पुष्पदंत भी इस धारा के एक प्रमुख कवि हैं। 'णयकुमारचरिउ' और 'जसहरचरिउ' इनकी प्रमुख रचनाएं हैं। 'हेमचन्द्रानुशासन्' के लेखक हेमचंद्र इस धारा के सर्वाधिक प्रभावशाली रचनाकार हैं। इनकी रचनाओं में जैन धर्म के सिद्धांत निरूपण के साथ-साथ अन्य विषयों का भी समावेश हुआ है। 'श्रावकाचार' के लेखक आचार्य देवसेन, 'भरतेश्वरबाहुबलीरास' के रचनाकार शालिभद्र सूरि, 'कुमारपालप्रतिबोध' के लेखक सोमप्रभ सूरि और 'प्रबंधचिंतामणि' के रचनाकार मेरुतुंग इस धारा के अन्य प्रमुख रचनाकार हैं।

जैन साहित्य मूलतः धर्म प्रचार का साहित्य है। लेकिन इसमें साहित्यिकता का अंश भी मिलता है। जैन कवियों ने कुछ व्याकरण ग्रंथों की भी रचना की है और उसमें तत्कालीन समाज का भी सजीव चित्रण मिलता है। इस मामले में 'हेमचन्द्रानुशासन्' जैन साहित्य की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक रचना है। भारतीय समाज में लोकप्रिय रामकथा को जैन सिद्धांतों के अनुकूल कर प्रबंध काव्य लिखने की मात्रा जैन साहित्य में बहुत अधिक देखने को मिलती है। जैन कवियों ने कुछ चरित-काव्यों का लेखन भी किया है। ऐतिहासिक पात्रों पर लिखे गये काव्यों में वीर और शृंगार रस का प्रयोग हुआ है। वैसे इनकी रचनाओं में शान्त रस की प्रमुखता है। इन्होंने मुक्तक काव्य भी लिखे हैं लेकिन प्रधानता प्रबंध काव्यों की ही है। जैन कवियों ने लोक में प्रचलित तमाम साहित्यिक शैलियों का अपने साहित्य में उपयोग किया है। उन्होंने आचार, रास, फागु, चरित आदि अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। जैन तीर्थंकरों के जीवन चरित के लेखन के लिए 'रास' का बहुत ज्यादा प्रयोग जैन साहित्य में हुआ है।

रासो साहित्य

आदिकाल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति रासो साहित्य है। रासो साहित्य के अलावा आदिकाल में जितनी तरह का साहित्य रचा गया उसका लक्ष्य शुद्ध साहित्य की रचना करना नहीं था। सिद्ध-नाथ और जैन साहित्य का लेखन अपने पंथ के प्रचार के उद्देश्य से किया गया था जबकि रासो ग्रंथों का मुख्य उद्देश्य पाठक का मनोरंजन था। आदिकालीन कवियों द्वारा बड़ी संख्या में वीरगाथात्मक साहित्य का लेखन हुआ जिसको ध्यान में रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस युग का नाम वीरगाथाकाल रखा था। रासो साहित्य का प्रधान विषय अपने आश्रयदाता राजाओं के चरित का गान और उनकी प्रशंसा थी। इन चरित काव्यों में राजा के वीरतापूर्ण कारनामों और उसकी प्रेमगाथाओं का रसात्मक और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन होता था। दलपति विजय कृत 'खुमाणरासो', नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो', जगनिक कृत 'परमाल रासो', चंदबरदायी कृत 'पृथ्वीराजरासो' इस युग के प्रधान रासो काव्य हैं। इन रासो काव्यों के साथ सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि इनमें से अधिकांश का पाठ प्रामाणिक नहीं है। कुछ रासो काव्यों का तो केवल नामोल्लेख ही मिलता है।

आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों के अध्ययन के दौरान हमने देखा कि केंद्रीय सत्ता के कमजोर हो जाने के कारण इस युग में भारत कई छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया था। प्रत्येक राजा अपनी स्वतंत्र सत्ता और अस्मिता को लेकर बहुत अधिक सचेत था। उसके दरबारी कवि उसकी वीरता के गीत लिखते थे। इसलिए रासो साहित्य के मूल में आश्रयदाताओं की प्रशंसा का भाव था। इस प्रशंसा में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ काफी

टिप्पणी

तोड़-फोड़ की जाती थी। रचना को प्रमाणिक साबित करने के लिए लेखक अनेक छद्म रचता था। 'पृथ्वीराज रासो' के लेखक चंदबरदायी ने अपनी रचना में अनेक स्थलों पर लिखा कि वह पृथ्वीराज का समकालीन था जबकि उसके द्वारा प्रस्तुत तथ्यों की ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्टि नहीं होती। उसकी भाषा भी परवर्ती युग की है। इस वजह से अनेक रासो काव्य संदिग्ध हो गये। उनकी प्रामाणिकता सवालों के घेरे में आ गयी।

रासो काव्यों में आश्रयदाताओं की प्रशंसा के क्रम में कुछ रुढ़ियों का पालन किया जाता था। अधिकांश रासो काव्यों में आश्रयदाता की वीरता के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के साथ ही उसके अनेक विवाहों का भी वर्णन होता था। इसमे स्वयंबर के दृश्य, राजकुमारियों के उद्धार, अनेक विजयों और आखेट के दृश्यों का भी चित्रण होता था। राजा के परदेश गमन पर रानियों के वियोग वर्णन की ओर भी कवि का ध्यान बना रहता था। रासो काव्य का प्रधान रस वीर और शृंगार रस था। रासो कवियों ने युद्धों का प्रत्यक्ष अनुभव किया था इसलिए उनके काव्य में युद्धों का सजीव वर्णन मिलता है। इन रचनाकारों की रुचि प्रेम प्रसंगों में भी थी। चंदबरदायी ने पृथ्वीराज और शशिव्रता के प्रेम प्रसंग का बहुत ही मनोहर चित्रण किया है।

रासो काव्य में इतिहास की तुलना में कल्पना की अधिक प्रधानता है। काव्य होने की वजह से ऐसा करना अनुचित भी नहीं कहा जा सकता। इसमें तथ्य और कल्पना का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। वीरगाथाओं में संश्लिष्टता की जगह वर्णन को अधिक महत्व दिया गया है। वस्तुओं की सूची, राजा की सेना के एक-एक अंग का विस्तार से वर्णन, नायक की अपरिमित शक्ति के प्रदर्शन के लिए उसके विजयों की लम्बी सूची जैसे वर्णन सभी रासो काव्यों में मिलते हैं। रासो काव्य में प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों का चित्रण मिलता है। नदी, नगर, पर्वत आदि का शोभायुक्त वर्णन भी इसमें किया गया है।

रासो साहित्य प्रबंध काव्य के रूप में ही लिखे गये हैं लेकिन कुछ मुक्तक रचनाएं भी मिलती हैं। 'बीसलदेवरासो' वीरगीतों के रूप में उपलब्ध है। वीरगाथाओं में विविध छंदों का उपयोग मिलता है। रासो कवियों ने सोरठा, तोमर, गाथा, आर्या, रोला, उल्लाला, कुंडलिया आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया है। वीरगाथाओं में महाकाव्य की पद्धति का समुचित प्रयोग दिखायी पड़ता है। इन रचनाओं की मुख्य भाषा डिंगल है। यह अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी होती थी। इसमें लिखित रचनाओं को लोक गायक स्वर में बांधकर सुनाते थे।

1.7 भक्तिकाल

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है। इसमें भारत के अधिकांश हिस्सों और समाज के विभिन्न वर्गों से निकलकर आये रचनाकारों ने साहित्य रचा। भक्तिकाल जैसा जन-साहित्य न उसके पहले लिखा गया था न ही उसके बाद ही लिखा गया। यही कारण है आज भी भारतीय जनता के बीच जैसी लोकप्रियता और सम्मान भक्तिकालीन कवियों को मिला वैसा किसी अन्य युग के कवियों को नहीं। इन कवियों का साध्य साहित्य नहीं था, वह तो मात्र साधन था भगवान की प्राप्ति का। इसके बावजूद इनकी कविता में जितनी सरसता और मानवीय संवेदना की जैसी अभिव्यक्ति है वह अद्वितीय है। भक्तिकाल के सभी

टिप्पणी

कवि अंततः भक्त थे लेकिन उनकी भक्ति का स्वरूप अलग–अलग था। इस आधार पर भक्तिकाल को सगुण और निर्गुण नामक दो धाराओं में विभाजित किया जाता है। निर्गुण धारा को दो और भागों में विभाजित किया गया– ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। इसी प्रकार सगुण धारा को भी दो और भागों में विभाजित किया गया– कृष्णभक्ति शाखा और रामभक्ति शाखा। इन शाखाओं का संक्षिप्त परिचय भक्तिकाल को समझने में आपकी मदद करेगा।

ज्ञानाश्रयी निर्गुण धारा

इस धारा के प्रतिनिधि कवि कबीर हैं। इस धारा के कवि निर्गुण ईश्वर की आराधना करते हैं। निर्गुण का मतलब होता है गुणों से परे होना। इस धारा के रचनाकारों का मानना है कि ईश्वर का कोई रूप नहीं होता। जिसने इस संसार को रचा है उसे सांसारिक मापदंडों के आधार पर कैसे व्याख्यायित किया जा सकता है। इस धारा के अधिकांश कवि तथाकथित निम्न जातियों से आते हैं। इनके साहित्य में मूर्तिपूजा और वर्णाश्रम व्यवस्था की कठोर आलोचना मिलती है। भगवान का नाम ही इनकी भक्ति का आधार है। ये श्रमजीवी थे और गृह–त्याग की आलोचना करते थे। अनुभव से प्राप्त ज्ञान द्वारा शास्त्रीय ज्ञान को चुनौती देना इनका प्रिय विषय था। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारत की बहुसंख्यक जनता को सम्मानजनक जीवन जीने का मौका दिया। इस धारा के प्रमुख कवि हैं– कबीर, रैदास, दादू, रज्जब, सूंदरदास आदि।

प्रेमाश्रयी निर्गुण धारा

हिन्दी के सूफी कवियों को इस धारा के अंतर्गत रखा जाता है। सूफी मत इस्लाम से ही पैदा हुआ था लेकिन इस पर भारतीय अद्वैतवाद और इस्लाम की गुह्य साधना का बहुत अधिक प्रभाव था। इस धारा के कवियों ने प्रेम के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति की वकालत की। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की अवधारणा को आधार बना कर सूफी कवियों ने मसनवी शैली में अनेक प्रबंध–काव्यों की रचना की। इन काव्यों के नायक हिन्दू घरों से आते थे। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दू–मुस्लिम एकता का महान प्रयास किया। इस धारा के प्रतिनिधि कवि 'पद्मावत' के रचयिता जायसी हैं। 'चंदायन' के लेखक मुल्ला दाउद, 'मृगावती' के लेखक कुतुबन, 'मधुमालती' के लेखक मंझन, 'चित्रावली' के लेखक उसमान इस धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं।

कृष्णभक्ति सगुण धारा

इस धारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास हैं। ये कृष्ण के सगुण रूप के आराधक हैं। कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण के वृंदावन–विहारी रूप का गान ज्यादा किया है। इनके काव्य के मूल में कृष्ण का बाल रूप और राधा–कृष्ण का रूप है। सूरदास की रचना 'सूरसागर' इस धारा की सर्वाधिक प्रतिष्ठित रचना है। पुष्टिमार्ग के अंतर्गत 'अष्टछाप' के कवियों ने कृष्णभक्ति–साहित्य में अनेक ग्रंथों की रचनाएं की। अष्टछाप के कवि हैं– कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास। इनके अलावा रहीम, मीरा, गंग आदि कवियों ने भी अपनी रचनाओं द्वारा इस धारा को समृद्ध किया।

टिप्पणी

रामभक्ति सगुण धारा

'रामचरितमानस' के लेखक तुलसीदास इस धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। अयोध्या के राजा राम इस धारा के कवियों के आराध्य हैं। वाल्मीकि से चली आ रही रामकाव्य की परंपरा को इस धारा के कवियों ने आगे बढ़ाया। तुलसीदास के पूर्व हिन्दी के किसी बड़े कवि ने राम को अपने काव्य का नायक नहीं बनाया। ईश्वरदास ने 'भरतमिलाप' और 'अंगद पैज', अग्रदास ने 'रामाष्टयाम' और 'रामध्यान मंजरी' और नाभादास ने 'अष्टयाम' नामक रचनाओं के माध्यम से रामभक्ति धारा का विकास किया। रामभक्त कवि राम के मर्यादावादी स्वरूप के पोषक हैं। उन्होंने अधिकांशतः प्रबंधकाव्यों का ही सृजन किया।

1.7.1 भक्तिकाल की परिस्थितियां

आदिकाल की तुलना में भक्तिकालीन समय (1350–1650 ई.) शांति और समृद्धि का समय था। दिल्ली की गद्दी पर मुसलमानों को राज करते हुए लगभग डेढ़ सौ वर्ष हो गये थे। अब वे बाहरी आक्रमणकारी नहीं रह गये थे। भारत उनकी जन्मभूमि थी और वे इससे प्यार करते थे। मुहम्मद बिन तुगलक, सिकन्दर लोदी, बाबर, हुमायूं, शेरशाह और अकबर जैसे शासकों ने भारत के अधिकांश हिस्से को जीतकर प्रशासनिक रूप से उसे मजबूत कर दिया था जिससे व्यापार का काफी विकास हुआ और समाज में समृद्धि आयी। फिर भी इस समय में भी धार्मिक अत्याचार हो रहे थे और सामान्य जनता की स्थिति खराब ही थी।

राजनीतिक परिस्थितियां

मुहम्मद बिन तुगलक (1325–1351 ई.) के शासन के अंतिम वर्षों से भक्तिकाल का राजनीतिक इतिहास आरंभ होता है। मुहम्मद बिन तुगलक एक उदार और साहित्य–संगीत को सम्मान देने वाला शासक था। लेकिन इसका उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक एक क्रूर शासक था। उसने हिन्दू जनता के ऊपर बहुत जुल्म ढाये। फिरोज तुगलक के बाद तुगलक वंश के अधिकांश शासक कमजोर और कठपुतली थे। 1412 ई. में खिज्र खां ने तुगलक वंश के अंतिम शासक को हटाकर दिल्ली की सत्ता अपने हाथ में ले ली और सैय्यद वंश की स्थापना की। इस वंश की सत्ता 1451 ई. तक रही और इस दौरान चार शासकों ने शासन किया लेकिन उनका भारतीय इतिहास में कोई खास नाम नहीं है। 1451 ई. में अफगान सरदार बहलोल लोदी ने दिल्ली पर कब्जा किया और लोदी वंश की स्थापना की। इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक सिकन्दर लोदी (1489–1517 ई.) था जिसने गुजरात तक का इलाका जीत लिया था। सिकन्दर लोदी ने ही अपने विजय अभियान के दौरान पूर्वी राजस्थान से व्यापारिक संबंध स्थापित करने के लिए आगरा शहर की नींव डाली थी जो आगे चलकर बड़ा व्यापारिक केंद्र हुआ। इसी आगरे के बाजार में हिन्दी भाषा का विकास हुआ। लोदी वंश का अंतिम शासक इब्राहीम लोदी (1517–1526 ई.) था जिसने अपना विशाल साम्राज्य खड़ा करने के लिए अफगानों और राजपूतों से दुश्मनी मोल ली। इनके बुलावे पर ही बाबर भारत आया और 1526 ई. में बाबर और इब्राहीम लोदी के बीच पानीपत की ऐतिहासिक लड़ाई हुई जिसमें इब्राहीम लोदी मारा गया और दिल्ली की सत्ता आगामी तीन सौ वर्षों के लिए मुगलों के हाथ में आ गयी। सन् 1526 में बाबर दिल्ली की गद्दी पर बैठा और मुगल सल्तनत की स्थापना की। अपने कुल चार वर्षों के छोटे कार्यकाल में ही

टिप्पणी

बाबर ने सारा राजस्थान जीत लिया। सन् 1530 ई. में बाबर की मृत्यु के बाद उसका बेटा हुमायूं राजा बना। हुमायूं ने आरंभ में कई लड़ाइयां जीतीं लेकिन सन् 1540 ई. में शेरशाह सूरी के हाथों पराजित होकर दिल्ली की सत्ता गवां बैठा। सन् 1540 से लेकर सन् 1555 तक दिल्ली पर शेरशाह और उसके उत्तराधिकारियों का शासन रहा। पंद्रह वर्षों के निर्वासन् के बाद 1555 ई. में हुमायूं पुनः दिल्ली पर आधिपत्य जमा पाने में सफल हुआ लेकिन कुछ ही दिनों के बाद उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मौत के बाद कुल तेरह वर्ष की उम्र में उसका बेटा अकबर सन् 1556 ई. में दिल्ली की गद्दी पर बैठा जो भारतीय इतिहास के सर्वाधिक महान शासकों में से एक था। अकबर (1556–1605 ई.) ने अपने शासन काल के दौरान अपनी सीमाओं को अफगानिस्तान से लेकर असम तक और कश्मीर से लेकर अहमदनगर तक फैला दिया। अकबर अकेला मुस्लिम शासक था जिसके भीतर सभी धर्मों के प्रति समान भाव था। इसके शासन काल में धार्मिक अत्याचार की घटनाएं नहीं के बराबर हुईं। इसने साहित्य, संगीत, कला, स्थापत्य सभी विधाओं को विकास का समुचित अवसर प्रदान किया। भक्तिकाल की समय सीमा के भीतर अकबर के बाद उसके दो अन्य योग्य उत्तराधिकारियों जहांगीर (1605–1627 ई.) और शाहजहां ने भी भारत पर शासन किया। इन्होंने अकबर की बनायी व्यवस्था का ही विकास किया। शाहजहां ने ही अपनी पत्नी की याद में प्रसिद्ध ताजमहल का निर्माण करवाया था।

सामाजिक परिस्थितियां

प्रशासनिक स्तर पर समूचे भक्तिकाल के दौरान भारत में एक केंद्रीय शासन व्यवस्था कायम रही। कभी–कभी कमजोर शासकों के आने की वजह से छोटे–छोटे सामंत आजाद हो जाते थे लेकिन आगामी ताकतवर राजा फिर उन्हें अपने नियंत्रण में कर लेता था। तुर्कों ने सुचारू शासन व्यवस्था के लिए केंद्रीय और स्थानीय स्तर पर बड़ी संख्या में प्रशासकों की नियुक्ति की थी। ये कृषि व्यवस्था से लेकर व्यापारिक गतिविधियों तक पर कड़ा नियंत्रण रखते थे। कर की उचित दरें थीं जिसके बदले में राज्य की ओर से व्यापारियों को अनेक प्रकार की सुविधायें प्रदान की जाती थीं। इस कारण भारतीय अर्थव्यवस्था का काफी विकास हुआ। तमाम छोटे और मझोले स्तर के व्यापारी समाज में सम्मान जनक जीवन जीने लगे।

मुसलमानों की शासन व्यवस्था की उल्लेखनीय उपलब्धि थी दिल्ली, आगरा, पटना, इलाहाबाद जैसे शहरों का उदय। इन शहरों ने भारत में तकनीकी विकास की नींव रखी। तुर्कों द्वारा लायी गयी अनेक तकनीकों के द्वारा उद्योग और व्यापार का काफी विकास हुआ। चरखे के आने से भारतीय वस्त्र उद्योग अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक फैल गया। यह अनायास नहीं है कि हिन्दी के पहले बड़े भक्तिकालीन कवि कबीर जाति से जुलाहा थे। इस दौरान परिवहन व्यवस्था में भी काफी सुधार हुआ। शेरशाह सूरी ने दिल्ली से कलकत्ता तक लम्बी सड़क बनवाई। मुगल शासकों ने यात्रियों और व्यापारियों के ठहरने के लिए बड़ी संख्या में सराय बनवाई। मुगल शासक स्वयं व्यापार करते थे। लेकिन इन सब के बावजूद भारतीय ग्रामीण जीवन में सुधार न के बराबर हुआ। अकाल, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के अतिरिक्त उन्हें जमींदारों के शोषण का भी शिकार होना पड़ता था। तुलसी ने 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड में इनकी दारुण परिस्थिति का मार्मिक चित्रण किया है।

टिप्पणी

भक्तिकाल के दौरान भी भारतीय समाज में जनता की पहचान का प्राथमिक आधार उसकी जाति ही थी। इस्लाम को मानने वाले जातियों में विभाजित नहीं थे। भारत में उनके आने से इस बात की संभावना थी कि भारतीय समाज से इस कुप्रथा की समाप्ति हो जाये लेकिन हुआ इसके उल्टा ही। हिन्दू समाज में पवित्रता की भावना और प्रबल हो गयी। गाय का मांस खाने वाले मुसलमानों से हिन्दुओं ने एक दूरी बना ली और जो हिन्दू मुसलमानों के संसर्ग में रहता था उसे धर्म से बहिष्कृत किया जाने लगा। इसका दूसरा उल्टा प्रभाव यह हुआ कि मुसलमानों के भीतर भी ऊंच–नीच और जाति प्रथा का चलन आरंभ हो गया। हिन्दुओं के बीच से जिस व्यक्ति ने इस्लाम स्वीकार किया वह मुसलमान तो हो गया लेकिन उसकी जातिगत पहचान नहीं मिट सकी। व्यापार का विकास होने से विभिन्न प्रकार के नवीन पेशों का उद्भव हुआ। आगे चलकर इसने जाति का रूप धारण कर लिया। तो इस काल में भारतीय समाज में कई नयी जातियों का जन्म हुआ। व्यापारिक विकास ने इन जातियों को आर्थिक रूप से सशक्त किया। इससे उनमें शक्ति आयी और उन्होंने वर्णाश्रम के भीतर अपने खिलाफ हो रहे अत्याचारों का विरोध करना आरंभ कर दिया। भक्तिकाल के अधिकांश निर्गुण संतों का संबंध तथाकथित निम्न जाति से था।

स्त्रियों की स्थिति इस काल में भी खराब रही। मुसलमानों की उपस्थिति से इनके शोषण में और अधिक वृद्धि हुई। एक तरफ मुसलमान गाहे–बगाहे हिन्दू स्त्रियों का अपहरण कर लेते थे दूसरी तरफ हिन्दू अपनी बेटियों के कौमार्य की रक्षा के लिए उनका बाल–विवाह करने लगे। मुसलमान स्त्रियों से प्रेरित होकर और अपनी रक्षा के लिए हिन्दुओं में भी पर्दा प्रथा का चलन बढ़ा। सती प्रथा, विधवा समस्या, अशिक्षा, बहुविवाह जैसी कुरीतियों से भी भारतीय स्त्रियों का जीवन नरक के समान था। तुलसीदास ने 'कतविधि सृजी नारी जग माहीं, पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' कहकर उनकी इसी पीड़ा की ओर संकेत किया है।

धार्मिक परिस्थितियां

भारत में प्राचीन काल से विदेशी आक्रांताओं का आगमन होता रहा था। शक, हूण, कुषाण, यवन, कम्बोज आदि न जाने कितनी जातियां आयीं और भारतीय समाज में विलीन हो गयीं। लेकिन तुर्क और मुगल शासकों ने अपनी अलग पहचान को सायास बनाये रखा। तीन सौ वर्षों के लम्बे समय के बाद भी भारतीय समाज धर्म के नाम पर हिन्दू और मुसलमान नामक दो वर्गों में विभाजित रहा। इस बीच इतना जरूर हुआ कि मूर्तिपूजा करने वाला और वर्णाश्रम में आस्था रखने वाला हिन्दू समाज, जो कई संप्रदायों में विभाजित था वह एक धर्म के झंडे के तले आ गया। इस नवीन संगठित धर्म, जिसके संगठन की प्रेरक और प्रेणादायी शक्ति इस्लाम थी, ने अपने लिए 'हिन्दू' संज्ञा धारण की जो खुद मुसलमानों ने उन्हें दिया था। आदिकाल के दो विशाल धर्म जैन और बौद्ध धर्म वैष्णव आन्दोलन के आगे टिक नहीं पाये और भारत के कुछ समुदायों तक सीमित हो गये या हिन्दू धर्म में विलीन हो गये।

मुसलमान शासकों द्वारा हिन्दू जनता पर किया जाने वाला धार्मिक अत्याचार इस काल में भी जारी रहा। हिन्दुओं को इस्लाम ग्रहण करने के लिए मजबूर किया जाता था। उनके धर्म–स्थलों को उनकी आंखों के सामने तोड़ा जाता था। गैर–मुसलमानों द्वारा पूजा–स्थलों के निर्माण पर भी प्रतिबंध था। उन्हें हिन्दू या बौद्ध धर्म को मानने के लिए राजा

टिप्पणी

को जजिया जैसा कर देना पड़ता था। सत्ता में उनकी भागीदारी बहुत कम थी। लेकिन इस सब के साथ हिन्दू और मुसलमानों के बीच साथ रहते–रहते सदभाव की भावना भी विकसित हो रही थी। भक्तिकाल के दौरान सूफी कवियों ने मुसलमान होते हुए भी हिन्दू घरों की कहानियों को अपने काव्य का विषय बनाया। कबीर, रहीम, बखना, बाजिंद जैसे अनेक मुस्लिम रचनाकारों ने हिन्दू देवी–देवताओं के प्रति अपनी आस्था प्रकट की।

1.7.2 भक्तिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां

भक्तिकाल में भारत के अधिकांश हिस्सों से आये रचनाकारों ने अपनी लेखनी से योगदान किया। इनकी रचनाओं की मूल विशेषता थी अपने अराध्य ईश्वर के प्रति अटूट आस्था से पैदा हुई भक्ति की उपस्थिति। परंतु इनकी भक्ति ऐकांतिक नहीं थी। ये दीन–दुनिया से बेखबर होकर केवल अपनी मुक्ति के लिए ईश्वर के सामने मस्तक नहीं झुकाते थे, बल्कि इनकी भक्ति के केंद्र में था उनका समाज, जिसमें परिवर्तन की विराट चेष्टा इनके साहित्य में मिलती है। भक्तिकाल की सभी धारा के कवियों ने अपने समय और समाज की समस्याओं को समझा और उसके समाधान की उचित राह भी बतायी। एक ओर जहां उन्होंने तमाम धार्मिक–सामाजिक कुरीतियों की कठोर आलोचना की वहीं समाज में विद्यमान भेदभाव के अनेक आधारों में सुधार कर समन्वय की व्यापक कोशिश भी की। भक्तिकाल के कवियों में भक्ति के स्वरूप से लेकर सामाजिक सवालों पर पर्याप्त मतभेद हैं लेकिन उनके साहित्य में कुछ सामान्य विशेषताएं भी हैं जिन पर आगे विचार किया जा रहा है।

भक्ति–भावना का प्राधान्य

भक्तिकाल के सभी कवि जिस एक बिन्दु पर एकमत हैं वह है ईश्वर की भक्ति। कबीर निर्गुण राम की आराधना करते हैं और तुलसी सगुण राम की, लेकिन दोनों का मानना है कि भगवान की भक्ति ही सांसारिक संकटों से मुक्ति का एकमात्र सहारा है। सूफी कवियों को छोड़कर अन्य सभी कवियों ने नवधा भक्ति को ही भगवान की आराधना का आधार बनाया है। नाम–स्मरण, कीर्तन, सद्आचरण, संत की संगति, दैन्य भावना, गुरु की महिमा जैसे विचारों की अभिव्यक्ति भक्ति–काव्य के केन्द्र में है। भक्ति की चली आ रही परंपरा से भिन्न भक्त–कवियों में ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम दिखायी पड़ता है। निर्गुण कबीर, सूफी जायसी, कृष्ण भक्त सूर एवं मीरा और रामभक्त तुलसी जिस एक जगह पर आकर मिलते हैं वह है अपने ईश्वर से अटूट प्रेम। ये सभी अपने भगवान के अनन्य भक्त हैं और उनकी शरणागति के आकांक्षी हैं। इनमें से किसी को जीवन–मरण से मुक्ति नहीं चाहिए, ये तो बस अपने राम–कृष्ण की शरण चाहते हैं। उनके साथ के अभाव और उनसे अलगाव के अहसास के कारण इनके भीतर गहरी विरह भावना व्याप्त रहती है। मीरा कहती हैं– हे री मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोई। सूर भी मीन और चातक के उदाहरण द्वारा हरि के दर्शन की भूख को प्रस्तुत करते हैं– तलफत रहति मीन चातक ज्यों, जल बिनु तृषानु छीजै–अंखिया हरि दर्शन की भूखी। भक्ति के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा माया की आलोचना भी इनकी भक्ति की प्रधान विशेषता है। माया की आलोचना के क्रम में इन्होंने नारी की आलोचना भी की है जो इनकी संकुचित दृष्टि का परिचायक है।

टिप्पणी

गुरु की महिमा

सभी धारा के भक्त कवियों के भीतर गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा मिलती है। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिल सकता और ज्ञान के बिना ईश्वर की प्राप्ति असंभव है। अधिकांश भक्त कवियों ने प्रसिद्ध गुरुओं से दीक्षा ली थी। कबीर तो रामानन्द से दीक्षा प्राप्त करने के लिए गंगा की सीढ़ियों पर सो गये थे। वल्लभाचार्य के कहने पर सूरदास ने कृष्ण की लीला के पद गाना आरंभ किया। सूफियों के यहां गुरु ही साधक को राह दिखाता है। 'पद्मावत' में जायसी ने लिखा है कि, 'गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा, बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।' सभी निर्गुण संतों की वाणी में 'गुरु को अंग' अनिवार्य रूप से मिलता है। गुरु का स्थान उनके यहां सर्वोपरि है। वही अपने शिष्य का एकमात्र हितैषी और सच्चा पथ–प्रदर्शक है। कबीर ने तो लिखा है कि परमात्मा की नाराजगी के बाद भी संसार में रहा जा सकता है लेकिन गुरु के गुस्सा हो जाने पर तो दुनिया में कहीं भी जगह नहीं मिल सकती– 'हरि रूठै गुरु ठौर हैं गुरु रूठे नहिं ठौर।' तुलसीदास ने 'बंदउ गुरु पद पदुम परागा, सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।' कहकर अपने गुरु की वंदना की है।

नाम–जाप और सहज साधना पर जोर

भक्त कवियों ने देखा कि संस्थागत धर्मों में ईश्वर की आराधना बेहद जटिल है और उस पर भी एक खास वर्ग का आधिपत्य है। नाथों और योगियों की साधना ने तो उसे विकृत भी कर दिया था। वे पंच मकारो की साधना करते थे औंर आम जन में आतंक फैलाकर उनका शोषण करते थे। बड़ी संख्या में लोग उनके प्रभाव में आकर घर परिवार को छोड़कर सन्यासी हो जाते थे। ऐसी परिस्थिति में भक्त कवियों ने भगवान की आराधना का सहज मार्ग निकाला। उनका मानना था कि ईश्वर के केवल नाम के ध्यान से भी उनका साहचर्य प्राप्त हो सकता है। तुलसीदास ने जोर देकर कहा कि 'सदा राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, मूढ़ मन बारं बार'। उन्होंने ने तो कई स्थानों पर राम के नाम को राम से भी ज्यादा शक्तिशाली बताया है। 'रे मनु कृस्न नाम कहि लिजे', 'अब तुम नाम गहौ मन नागर' कहकर सूरदास ने भी कृष्ण के नाम के स्मरण को ही भक्ति का आधार बताया। नाम–जप को इतनी अधिक महत्ता देने का मूल कारण यह था कि इससे मनुष्य सहजता से ईश्वर का स्मरण कर सकता था। कबीर ने योग की कठिन साधना के बदले में सहज साधना की बात भी इसीलिए कही। 'घर में जोग, भोग घर ही में घर तजि बन नहीं जाओ' कहकर कबीर ने सन्यास का जबरदस्त विरोध किया। अधिकांश भक्त कवि गृहस्थ थे या गृहस्थ धर्म के समर्थक थे। किसी भी भक्तिकालीन कवि ने गृह–त्याग और कर्मकांड से भरे भक्ति के मार्ग का समर्थन नहीं किया है। दरअसल वे भगवान का द्वार सबके लिए खोलना चाहते थे और उसका मार्ग सरल बनाना चाहते, जिससे उस पर सभी चल पायें।

अहंकार का त्याग और दैन्य भाव की अभिव्यक्ति

कबीर ने लिखा कि 'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।' अर्थात जब मेरे भीतर मैं यानी अहंकार था तब मेरे पास भगवान नहीं थे लेकिन अब मेरे भीतर का अहंकार समाप्त हो गया है और वहां हरि का निवास हो गया है। भक्तिकालीन कवि मानते थे कि अहंकार के त्याग के बिना ईश्वर की सच्ची भक्ति संभव नहीं है। अहंकार के त्याग के बाद ईश्वर

के विराट स्वरूप के समक्ष भक्तों की दीनता का प्रकट हो जाना स्वाभाविक है। इसलिए भक्तिकाल के सभी कवियों में अहंकार के त्याग और दीनता का भाव समान रूप से मिलता है। कबीर तो अपने राम के सामने कुत्ता तक बन जाते हैं और सूरदास को लगता है कि मैं दुनिया का सर्वाधिक पतित व्यक्ति हूं। कबीर अपने राम के समक्ष निवेदन करते हैं कि 'कबीर कुत्ता राम का' और सूरदास अपने प्रभु से कहते हैं– 'प्रभु हौं सब पतितन को टीकौं'।

बाह्याचारों का खंडन और सामाजिक समन्वय पर बल

कबीर, रैदास आदि निर्गुण संतों ने विभिन्न धर्मों में विद्यमान कर्मकांडों और बाह्याचारों का पुरजोर विरोध किया। हिन्दू, मुसलमान, नाथ–योगी आदि धर्मों में अलग–अलग प्रकार के रीति–रिवाज थे जो जनता का व्यापक स्तर पर शोषण करते थे। मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए कबीर ने कहा कि यदि पत्थर पूजने से भगवान मिल जायेंगे तो मैं पहाड़ ही पूज दूंगा, ऐसा करने से और जल्दी भगवान को मिल जाना चाहिए– 'पाथर पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहाड़'। कबीर आगे कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति से घर की चक्की अच्छी है क्योंकि उससे पीसे गये आटे को खाकर सारा संसार जीवित है। कबीर आदि संत कवि बाह्याचारों का खंडन कर किसी को आहत नहीं करना चाहते थे बल्कि अलग–अलग समुदायों में व्याप्त कट्टरता को खत्म कर वे उनके बीच समन्वय की चेष्टा कर रहे थे। जात–पांत के आधार पर समाज में व्याप्त विभाजन की सूर–तुलसी सहित तमाम कवियों ने आलोचना की। भक्तिकाल के सभी कवियों का मूल मंत्र था– 'जाति–पांति पूछै न कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।' उनकी सैद्धांतिक मान्यता थी कि कण–कण में ईश्वर है, तो फिर सामाजिक स्तर पर विभाजन का क्या मतलब, क्योंकि इस सिद्धांत के अनुसार तो प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर का वास है। ब्राह्मण–शूद्र, ऊंच–नीच, अमीर–गरीब, शिया–सुन्नी, हिन्दू–मुसलमान, स्त्री–पुरुष जैसे अनेकानेक सामाजिक विभेदों के प्रत्येक रूप का कड़ा विरोध करते हुए भक्तिकालीन संतों ने मानव–मानव के बीच प्रेम का रिश्ता विकसित करने का प्रयास किया और उसमें बहुत हद तक वे सफल भी रहे। वे विश्वबंधुत्व और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व में विश्वास रखते थे।

शास्त्रीय ज्ञान का खंडन और अनुभवजन्य ज्ञान पर बल

भक्तिकालीन कवियों ने शास्त्रीय ज्ञान का खंडन किया और अपने अनुभवों से प्राप्त ज्ञान पर बल दिया। यह प्रवृत्ति उनके विचारों से लेकर उसकी अभिव्यक्ति तक में दिखायी देती है। कबीर से लेकर तुलसी तक ने शास्त्रीय भाषा संस्कृत और उसमें उपलब्ध ज्ञान परंपरा को नकारा या परिवर्तित किया। तत्कालीन समाज के अनुरूप उन्होंने भाव और भाषा दोनों का चयन किया। कबीर ने स्पष्ट कहा कि 'तू कहता है कागद लेखी, मैं कहता हूं आखिंन देखी'। तत्कालीन विद्वत समाज को ललकारते हुए कबीर ने कहा कि तुम्हारा ज्ञान किताबों में लिखे तक सीमित है जबकि मैं किताबें जिस सांसारिक अनुभव से रची जाती हैं उन से सीधा संवाद कर अपनी बात कह रहा हूं, इसीलिए मेरी बात तुम्हारी बात से ज्यादा प्रामाणिक है। सूरदास भी भ्रमरगीत प्रसंग में ज्ञान के प्रतीक उद्धव को ग्रामीण समाज की अबोध गोपियों के द्वारा पराजित करते हैं। गोपियां उद्धव को ज्ञान का व्यापारी कहती हैं– 'आयो घोष बड़ो व्यापारी। लादि खेप गुन ज्ञान–जोग की ब्रज में आय उतारी।' तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में रामकथा में काफी बदलाव किया। उन्होंने लोक में उपलब्ध राम के

चरित्र के अनुसार वाल्मीकि से चली आ रही रामकथा की परंपरा में बहुत बदलाव किया। 'सीता–निर्वासन्' से लेकर 'शम्बूक–वध' तक के प्रसंगों को हटाने और केवट तथा शबरी जैसे नवीन प्रसंगों की उद्भावना के पीछे तुलसी का अनुभवजन्य ज्ञान ही सक्रिय था। तुलसी ने ईश्वर की आराधना के लिए अनिवार्य संस्कृत के ज्ञान को नकारते हुए लोकभाषा में भी उनकी अराधना का द्वार खोल दिया। मीरा, रैदास, दादू जैसे रचनाकारों ने जनभाषाओं में साहित्य रचकर शास्त्रीय ज्ञान की परंपरा को खुली चुनौती दी।

लोकभाषाओं में साहित्य लेखन

भक्तिकालीन कवि जनता के कवि थे। जनता से उनका लगाव इतना गहरा था कि आदिकाल और रीतिकाल के कवियों की तरह उन्होंने दरबारों तक में जाने से मना कर दिया। उन्होंने जनता की भाषा में साहित्य रचा। कबीर ने "संसकीरत है कूप जल भाखा बहता नीर" कहकर संस्कृत की आलोचना और बोलचाल की भाषा की तारीफ की। कबीर, रैदास, दादू आदि निर्गुण कवियों ने बोलचाल की भाषा में पद लिखे जिसे 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा गया। सूफी और रामभक्ति धारा के सगुण कवियों ने अवधी को अपने काव्य का आधार बनाया जबकि सूरदास आदि कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा में पद लिखे। मीरा ने राजस्थानी मिश्रित हिन्दी में पदों की रचना की। इन कवियों की रचनाओं में स्थानीय बोलियों के शब्दों का प्राधान्य था। अधिकांश निर्गुण कवियों को अक्षर ज्ञान नहीं था इसलिए उनकी कविताओं के कई रूप मिलते हैं। काव्यरूपों के चयन में भी भक्तकवियों ने लोक में प्रचलित छंदों को बहुत अधिक महत्व दिया। इन्होंने मुख्य रूप से प्रबंध और मुक्त शैली में रचनाएं कीं लेकिन इसमें प्रयुक्त होने वाले छंद और राग–रागिनियों पर लोकगीतों का गहरा प्रभाव था। भक्तिकाल में गेय पदों के लेखन का प्राधान्य था। अधिकांश रचनाओं का मुख्य रस शांत और शृंगार था।

1.8 रीतिकाल

रीतिकाल हिन्दी साहित्य की प्रमुख काव्यधारा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में रीतिकाल की समय सीमा 1643–1843 ई. तक मानी है। इस कालखण्ड के काव्य में रीति तत्व की प्रधानता के कारण इसे रीतिकाल कहा गया। यह लगभग सर्वमान्य है। कुछ विद्वानों ने रीतिकाल के स्थान पर कुछ अन्य नामों का प्रस्ताव किया था। काल–विभाजन और नामकरण की इकाई में हमने इस पर विस्तार से विचार किया है। रीतिकाल का आरम्भ चिन्तामणि के 'रस विलास' और मतिराम के 'रसराज' से माना जाता है तो वहीं ग्वाल कवि रीतिकाल के अन्तिम कवि माने जाते हैं।

रीति को प्रधान प्रवृत्ति मानते हुए रीतिकाल को तीन भागों में विभाजित किया गया है– रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। जिन कवियों ने रीति से बद्ध होकर रीति ग्रंथों अर्थात लक्षण ग्रंथों की रचना की उन्हें रीतिबद्ध कवि कहा गया। चिंतामणि, केशवदास, देव और कुलपति मिश्र प्रसिद्ध रीतिबद्ध कवि हैं। जिन कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना तो नहीं की लेकिन उससे अच्छी तरह से परिचित थे और उसके आधार पर ही काव्य रचे उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा गया। बिहारी इस धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। जिन कवियों ने न लक्षण

टिप्पणी

ग्रंथ लिखे और न ही उसकी परंपरा में काव्य की रचना की उन्हें रीतिमुक्त कवि कहा गया। ये रीति' के बन्धन से मुक्त हैं। इस धारा के कवियों ने कोई लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखा। इस धारा के कवि अपने जीवन और रचना दोनों स्तरों पर मुक्त थे। जीवन में इन्होंने किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं किया तो वहीं मन की मुक्त वृत्तियों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। इस धारा के प्रमुख कवि घनानन्द, बोधा, आलम और ठाकुर हैं।

1.8.1 रीतिकाल की परिस्थितियां

रीतिकाल (1650–1850 ई.) की समयावधि लगभग दो सौ वर्षों की है। रीतिकाल के आरंभिक वर्षों में मुगलिया सल्तनत का वैभव चरम पर था। लेकिन औरंगजेब की मृत्यु (1707 ई.) के पहले से ही मुगल–सल्तनत को विद्रोहों का सामना करना पड़ रहा था। शिवाजी ने औरंगजेब के जमाने में ही मराठा साम्राज्य की स्थापना कर दी थी। औरंगजेब की कट्टर नीतियों के कारण कई हिन्दू सामंत नाराज थे जिन्होंने उसकी मृत्यु के बाद ही खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। इस दौरान महाराष्ट्र में मराठा साम्राज्य का विस्तार बहुत ज्यादा हो गया। हिन्दू सामंतों के उद्‌भव के कारण उनके दरबारों में हिन्दू कविगों की रौनक बढ़ने लगी और उसके परिणामस्वरूप दरबारी कविता का चलन बढ़ा। दरबारी कवि भक्तिकाल की व्यापक लोकप्रियता से प्रभावित थे लेकिन सामंतों की मांग के अनुरूप उन्हें श्रृंगारिक कवितायें लिखनी पड़ती थीं। उन्होंने बीच का रास्ता अपनाया। राधा–कृष्ण को ही अपने काव्य का विषय बना दिया। उनका कहना था कि यदि आगे के कवि हमारी श्रृंगारिक कविताओं पर आकर्षित होंगे तो ठीक, नहीं तो इसे हम राधा–कृष्ण की आराधना का बहाना मान लेंगे। एक रीतिकालीन कवि भिखारीदास ने लिखा– 'आगे के कवि रीझिहैं, तौ कबिताई, न तौ। राधिका कन्हाई सुमिरन कौ बहानौ हौ।' आइये अब हम रीतिकाल की परिस्थितियों पर विस्तार से विचार करते हैं–

राजनीतिक परिस्थितियां

रीतिकाल के आरंभ के समय भारत पर शाहजहां (1643–1658 ई.) का शासन था। इस काल में मुगलों का वैभव चरम पर था। शाहजहां अपने पूर्वजों की अर्जित विरासत की रक्षा करने में सक्षम था। इसके शासन काल में कांधार से लेकर असम तक और कश्मीर से लेकर दक्षिण के अहमद नगर, गोलकुंडा और बीजापुर तक मुगलों का शासन था। मुगलों का खजाना भरा हुआ था और शांति का साम्राज्य फैला हुआ था। साहित्य, संगीत और कला के प्रेमी शाहजहां के शासन काल में साहित्य की भी अपार वृद्धि हुई। उसने मयूर सिंहासन और ताजमहल का निर्माण कर अपनी सौन्दर्यप्रियता की अद्‌भुत मिसाल पेश की। 1658 ई. में शाहजहां बीमार पड़ा और सत्ता पर उसकी पकड़ के कमजोर होते ही उसके पुत्रों दाराशिकोह और औरंगजेब के बीच सत्ता के लिए संघर्ष प्रारंभ हो गया। शाहजहां फारसी के विद्वान और उदार चरित्र वाले दाराशिकोह को दिल्ली की सत्ता सौंपना चाहता था लेकिन औरंगजेब ने उसका कत्ल कर अपने पिता शाहजहां को जेल में डाल दिया और दिल्ली की सत्ता पर आसीन हो गया। वह अपनी मृत्यु (1707 ई.) तक भारत के सिहासन् पर बैठा रहा। वह एक बेहद क्रूर शासक था। जनता से मनमाना कर वसूल कर उसे युद्धों में खर्च करना उसकी शासन नीति थी। हिन्दुओं पर उसने बड़े पैमाने पर अत्याचार किया जिस कारण इसका शासन काल लगातार होने वाले विद्रोहों की वजह से बेहद अशांत रहा। आगरा में

टिप्पणी

जाटों ने, अवध में राजपूतों ने और इलाहाबाद में जमींदारों ने औरंगजेब के खिलाफ खुला विद्रोह किया। उधर मराठा और सिक्ख भी औरंगजेब की नाक में दम किये हुए थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल सल्तनत बेहद कमजोर हो गयी। उसके कमजोर उत्तराधिकारियों के पास शासन को संभाल पाने का सामर्थ्य नहीं था। इसी बीच 1739 ई. में नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया और लगभग महीने भर तक दिल्ली को लूटता और रौंदता रहा। इसके बाद के लगभग सौ वर्षों का इतिहास युद्धों और उसमें भारतीयों के पराजय की ही कहानी है। मुगल सल्तनत के कमजोर होने और सामंतों के आपसी मतभेद का फायदा उठाते हुए ब्रिटिश सत्ता व्यापारी के रूप में धीरे–धीरे भारत में प्रवेश करने लगी। इस वक्त तक बंगाल भारत का एक मजबूत प्रांत हो चुका था। अंग्रेजों ने 1757 ई. में प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब को हराकर पूरा बंगाल प्रांत अपने कब्जे में कर लिया। सन् 1761 में अहमदशाह अब्दाली और मराठों के बीच पानीपत का युद्ध हुआ जिसमें मराठे पराजित हुए और अंग्रेजों की राह का एक बड़ा कांटा अपने आप समाप्त हो गया। 1764 ई. के बक्सर के युद्ध में दिल्ली के शहंशाह शाहआलम के नेतृत्व में एक बड़ी सेना अंग्रेजों से टकरायी और हार गयी। इस पराजय ने अंग्रेजों के हाथ में दिल्ली की सत्ता भी दे दी। अठारवीं सदी का अंत होते–होते समस्त उत्तर भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया और मुगल बादशाह अंग्रेजों के गुलाम बन कर रह गये। अंग्रेजों का शासन बेहद क्रूर था। अंग्रेज सामंतों को तो प्रसन्न रखते थे लेकिन आम जनता के प्रति उनके भीतर जरा भी संवेदना नहीं थी। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् 1857 ई. में भारत की पहली जनक्रांति हुई जो हिन्दी प्रदेश ही नहीं बल्कि अखिल भारत में आधुनिकता के आगमन की एक जोरदार दस्तक थी।

सामाजिक परिस्थितियां

केंद्रीय सत्ता के कमजोर हो जाने के कारण रीतिकालीन समाज एक बार फिर संकटपूर्ण स्थितियों का शिकार हो गया। रीतिकालीन समाज मुख्य रूप से दो वर्गों में विभक्त था– सामंत वर्ग और आम जनता। सामंत वर्ग हर प्रकार की सुख–सुविधाओं से संपन्न था जबकि आम जनता अनेकानेक संकटों का सामना करने के लिए अभिशप्त थी। सामंत वर्ग अत्यधिक विलास में डूबा रहता था। मुगलों की सत्ता के कमजोर होने की वजह से अनेक हिन्दू और मुसलमान सामंत भारत के अलग–अलग हिस्से में उभरने लगे। इनके नियंत्रण में इलाका भले ही छोटा हो लेकिन इनका दिखावा मुगल सम्राटों की तरह था। राजकाज से इनका कोई सीधा वास्ता नहीं था। इनके कारिंदे इनकी कमजोरी का फायदा उठाते हुए जनता पर असंख्य अत्याचार करते थे। भोग–विलास में डूबे रहने वाले सामंत अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिए दरबारों में कवियों का पोषण करने लगे। उन्हीं कवियों को प्रमुखता मिलने के कारण हिन्दी साहित्य में रीतिकाल का आगमन हुआ।

सामंतों के आश्रय में रहने वाले लोग और उनके समर्थन से पोषित होने वाले सेठ, जमींदार और रईस वैभवपूर्ण जीवन जीते थे। इनके जीवन में विलास के अलावा कुछ नहीं था। इनका समाज दिखावे की मानसिकता के कारण भीतर से खोखला हो गया था। इनके पास न किसी प्रकार का आदर्श था और न ही किसी प्रकार की नैतिकता। भक्तिकालीन कवियों ने भारतीय समाज को जो आदर्श प्रदान किये थे रीतिकाल में वे सब धूमिल हो गए।

टिप्पणी

भगवान भी उनके लिए भोग की वस्तु हो गये। राधा–कृष्ण के प्रेम को नायक–नायिका के प्रेम में बदल दिया गया।

आम जनता सामंतों के वैभव–विलास की पूर्ति करने वाला उपादान मात्र बन कर रह गयी। किसान–मजदूरों का जीवन नारकीय हो गया था। वे सामंतों की बेगारी करते थे। शासकों द्वारा किसी भी प्रकार का विकास कार्य नहीं किया जा रहा था। इससे बेरोजगारी में काफी बढ़ोतरी हो गयी थी। बार–बार पड़ने वाले अकाल और शासक वर्ग के द्वारा इसके प्रति की जाने वाली उपेक्षा के कारण किसानों की स्थिति और अधिक खराब थी। सामंती समाज के आधार किसान ही होते हैं इसलिए शासकों द्वारा समय–समय पर लगाये जाने वाले करों का भार भी इन्हीं किसानों को ही उठाना पड़ रहा था। किसान करों के बोझ तले घुट–घुट कर मरने के लिए अभिशप्त था। डॉ. नगेन्द्र ने रीतिकाल में किसानों की अवस्था पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि, "सचमुच इस समय के प्रासाद इन्हीं लोगों की हड्डियों पर खड़े थे। इन्हीं के आंसू और रक्त की बूंदे जमकर अमीरों के मोती और लालों का रूप धारण कर लेती थीं। राजा के अबाध अपव्यय की क्षतिपूर्ति अनेक प्रकार के उचित अनुचित कार्यों द्वारा की जाती थी, कर्मचारीगण राजा का और अपना उदर (पेट) किसानों का खून चूसकर भरते थे। सम्राट, सूबेदार, फौजदार, जमींदार आदि सभी का शिकार बेचारा किसान था।"

धार्मिक परिस्थितियां

रीतिकाल तक आते–आते भारत में इस्लाम एक ताकतवर धर्म के रूप में स्थापित हो चुका था। सत्ता का समर्थन प्राप्त होने के कारण बड़ी संख्या में हिन्दुओं और अन्य धर्मावलम्बियों ने धर्म–परिवर्तन कर इस्लाम को स्वीकार कर लिया था। धार्मिक अत्याचार इस युग में भी जारी रहे। अकबर और उसके परवर्ती शासकों ने धार्मिक सहिष्णुता की जो नीति अपनायी थी उसे औरंगजेब ने आकर खत्म कर दिया। उसने हिन्दुओं पर जजिया के अलावा अन्य कई कर लगाये। औरंगजेब ने कई मंदिरों को भी तोड़ा। इसकी हिन्दू समुदाय में तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई। शिवाजी और सिक्खों ने औरंगजेब के कार्यकाल में ही धर्म के नाम पर इस्लाम के खिलाफ शक्तिशाली साम्राज्यों की स्थापना कर दी थी। अंग्रेजों के आगमन के समय तक ये राज्य भारत के सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में उभरे। तात्पर्य यह कि रीतिकाल में भारतीय समाज का धार्मिक विभाजन और अधिक गहरा हुआ।

इस्लाम के आगमन के साथ ही हिन्दू धर्म के अलग–अलग पंथों के एकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी थी। रीतिकाल तक आते–आते भारत के अनेक संप्रदाय हिन्दू नाम से प्रसिद्ध हो गये। धर्म–परिवर्तन की कोशिशों के बीच हिन्दू धर्म के भीतर जड़ता और शुद्धता का आग्रह और अधिक बढ़ा। जात–पांत की दीवारें और अधिक मजबूत हुईं। छूआ–छूत की भावना में वृद्धि हुई। भक्तिकालीन कवियों ने सामाजिक विभेदों को चुनौती देते हुए जिस आदर्श समाज की परिकल्पना की थी वह रीतिकाल तक आते–आते कमजोर पड़ गयी। आधिकांश हिन्दू सामंतों ने वर्णाश्रम धर्म को पोषित किया जिसका परिणाम यह हुआ कि तथाकथित निम्न जातियों का शोषण और अधिक तीव्र हुआ।

भक्तिकाल में भक्ति मानव मन का आदर्श थी लेकिन रीतिकाल तक आते–आते यह मनोरंजन का साधन मात्र रह गयी। भक्तिकाल के दौरान वैष्णव धर्म का प्रभाव बढ़ा था।

टिप्पणी

इसमें राम और कृष्ण को समान महत्व मिला। रीतिकालीन समाज भोग की मानसिकता से ग्रस्त था इसलिए उसमें मर्यादावादी राम की तुलना में छैल–छबीले कृष्ण को अधिक स्थान मिला। इस युग में कृष्णभक्त संप्रदायों की प्रधानता बढ़ी। वल्लभ संप्रदाय के ही अनेक उप–संप्रदाय बन गये। ये संप्रदाय धीरे–धीरे मठों में बदल गये। रीतिकाल में ये मठ विलासिता और शोषण के केंद्र के रूप में विकसित हो गये। इस युग में धर्म मनुष्य की मुक्ति का नहीं बल्कि बंधन का पर्याय हो गया और इससे भी मुश्किल बात यह कि उसको चुनौती देने वाला कोई नहीं था।

1.8.2 रीतिकाल की साहित्यिक प्रवृतियां

रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियां बहुत कुछ अपनी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुकूल ही हैं। सामंती समय और सामंतों के आश्रय में रचे जाने के कारण रीतिकालीन काव्य में दरबारी काव्य की सभी प्रवृत्तियां विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों के निजी परिवेश और जीवन को भी उनकी रचनाओं में लक्षित किया जा सकता है। विशेषकर दरबारों में मनोरंजन के निमित्त रचे जाने के कारण रीतिकालीन काव्य में अलंकार प्रियता, चमत्कार, श्रृंगार और कौतूहल की प्रवृत्ति सहज ही उपलब्ध है। साथ ही सांमती भाव –भंगिमा, धार्मिक आडम्बर, भोग विलास आदि इस काल की कविताओं का मूल भाव बन गया था। किन्तु बिहारी ,घनानन्द जैसे कवियों के काव्य में लोकजीवन के सहज क्रियाव्यापार भी उपलब्ध हैं। रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नलिखित शीर्षकों में समझा जा सकता है–

1. **रीति निरूपण** – रीति निरूपण का अर्थ है लक्षण ग्रन्थों की रचना करना। इसी के आधार पर इस कालखण्ड का नामकरण हुआ है। जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना की उन्हें आचार्य कहा जाता है। इन आचार्यों का प्रमुख कार्य संस्कृत काव्यशास्त्र को हिन्दी में उपलब्ध कराना है। इन आचार्य कवियों ने अपने लक्षण ग्रन्थों में काव्य के विभिन्न लक्षणों को उदाहरणों के साथ प्रस्तुत किया। यह कहीं–कहीं विद्वता प्रदर्शन का माध्यम भी बन गया। फिर भी काव्य लक्षणों और रीति निरूपण के प्रति इन कवियों का आग्रह इन्हें विशिष्ट बनाता है। केशव की 'कविप्रिया', चिन्तामणि की 'कविकुल कल्पतरु', मतिराम की 'ललित ललाम', देव की 'रस विलास' आदि प्रमुख लक्षण ग्रन्थ हैं।

2. **श्रृंगार भावना** – श्रृंगारिकता रीतिकालीन काव्य के मूल में है। रीतिकालीन कवियों के प्रस्थान बिन्दु चाहें जो हों किन्तु लक्ष्य श्रृंगार ही रहा है। यह उनके काव्य पर अपने समकालीन सामंती तंत्र का प्रभाव है। रीतिकालीन कवियों ने नखशिख से लेकर शिखनख की पद्धति में नायिका के सौन्दर्य को पूरे आत्मविश्वास के साथ चित्रित किया है। राधा–कृष्ण की प्रेम लीलाओं को भी इन कवियों ने श्रृगार के उत्सव में बदल दिया है। देह रीतिकालीन श्रृंगार की सीमा है। वह मन को मुक्त नहीं करना बल्कि बांधता है। इसीलिए स्थूलता उसका स्वभाव बन गया है। रीतिकालीन कवियों का श्रृंगार नायिका भेद, नखशिख नायिका भेद, श्रृंगार के विभिन्न भेद–उपभेद, हाव–भाव का विस्तृत निरूपण करता है। रीतिकाल में श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का चित्रण मिलता है। सामाजिक एवं सामंती

टिप्पणी

परिस्थितियों के प्रभाववश संयोग वर्णन मुखर है तो वियोग वर्णन हास्य का विषय बन गया है। संयोग और वियोग शृंगार का एक–एक उदाहरण दृष्टव्य है–

कंज–नयनि मुजनू किए, बैठी ब्यौरति बार।
कच–अंगुरी–बिच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार।।
इत आवति चलि जात उत, चली छः सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन् साथ।।

इस तरह देखा जा सकता है कि रीतिकालीन काव्य की शृंगारिता रूपलोभ, प्रेमआधारित विलास, भोग की प्रवृत्ति, सुख की कामना आदि भावों से भरी पड़ी है। वियोग श्रृगांर का उत्कट रूप घनानन्द के काव्य में मिलता है।

3. अलंकारप्रियता – सामंती समाज और दरबारी काव्य होने के कारण रीतिकालीन काव्य में अलंकारों के प्रति अतिरिक्त लगाव देखा जा सकता है। रीतिकालीन कवि अलंकारों को उसकी शोभा की तरह चित्रित करते थे। विलासी संस्कृति के प्रभाव के कारण रीतिकालीन कवियों में सहजता के स्थान पर अलंकारों के प्रति प्रबल मोह था। दूसरे यह कि रीतिकाल में अलंकारों के माध्यम से ही कवि गण अपनी कविता में चमत्कार उत्पन्न कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करते थे। केशव तो अलंकारों के प्रति इतने आग्रही थे कि वे बिना आभूषण की स्त्री और बिना अलंकारों की कविता की कल्पना भी नहीं कर पाते–

जदपि सुजाति सुलच्छनि सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त।।

अर्थात वे स्त्री और कविता दोनों की प्रतिष्ठा के लिए अलंकारों को आवश्यक मानते थे। अलंकारों के प्रति इस आग्रह के चलते कई स्थलों पर केशव की कविता कठिन और भाव हीन हो गयी है। कविता में अलंकारों के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता किन्तु कविता में अलंकार स्वभाविक रूप से आने चाहिए जिससे कविता की शोभा बढ़े। जब कविता में प्रयत्न पूर्वक अलंकार भरे जाते हैं तो कविता अपना असर खो देती है।

रीतिकालीन काव्य में लगभग सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलता है। अनुप्रास, यमक, श्लेष और उत्प्रेक्षा अलंकार की प्रचुरता से रीतिकालीन काव्य अत्यधिक समृद्ध भी हुआ है। बिहारी के काव्य से उत्प्रेक्षा का श्रेष्ठ उदाहरण है–

सोहत ओढ़ैं पीत पट स्याम सलोने गात।
मनौं नीलमनि सैल पर आतप पर्यो प्रभात।।

कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कवियों ने अलंकार का प्रयोग विद्वता, चमत्कार और कौतूहल के प्रदर्शन के लिए ही किया है किन्तु जहां अलंकार को भाव के साधन के रूप में प्रयोग किया है वहां एक श्रेष्ठ कविता का सृजन हुआ है।

4. आश्रयदाताओं की प्रशंसा – अपने युग की परम्परा के अनुसार रीतिकाल के अधिकांश कवियों को विभिन्न राजाओं का आश्रय प्राप्त था। बिहारी, देव, भूषण,

टिप्पणी

केशव, सूदन और मतिराम आदि कवि विभिन्न राज दरबारों से सम्बद्ध थे। उनकी यह सम्बद्धता उनके जीवन यापन का माध्यम थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि ये कवि अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में काव्य रचना करें। देव ने अपने आश्रयदाता भवानी सिंह के लिए 'भवानी–विलास' और कुशल सिंह के लिए 'कुशल–विलास' लिखा। सूदन ने भरतपुर के नरेश सुजान सिंह की प्रशंसा में 'सुजान चरित' तो भूषण ने शिवाजी के आश्रय में रहते हुए 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी' तो बुंदेल खण्ड के महान राजा छत्रसाल बुन्देला के लिए 'छत्रसाल दशक' जैसे महत्वपूर्ण वीर रस प्रधान ग्रन्थ लिखे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भूषण के ग्रन्थों के महत्व को स्वीकारते हुए लिखा है कि "शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता। वे आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं हैं। इन दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिन्दू जनता स्मरण करती है, उसी की व्यजंना भूषण ने की है।" भूषण का काव्य आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा का उज्ज्वल पक्ष है किन्तु दूसरे कवियों का काव्य आश्रयदाताओं की प्रशंसा का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन का चरम उदाहरण बन कर रह गया है। दरबारी संस्कृति द्वारा पोषित अधिकांश कवियों का काव्य कविता के घोषित लक्ष्यों से पीछे रह गया है।

5. भक्ति और नीति – रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियों में भक्ति और नीति सम्बन्धी कविताएं भी हैं। जहां कहीं भी रीतिकालीन कवियों को शृंगार वर्णन से अवकाश मिला है, वहां ये कवि भक्ति और लोक व्यवहार से सम्बन्धित रचनाओं में भी प्रवृत्त हुए हैं। अपने होने का दुःख और बाधाओं से मुक्ति के लिए, अपने विरूद की रक्षा के लिए ईश्वर की आराधना की गयी है। जैसे–

कौन भांति रहियै विरुद अब देखिबौ मुरारि।
बीधे मोसौं आनि कैं गीधे गीधहिं तारि।।

यहां भक्त भगवान को चुनौती देते हुए कहता है कि अब मुझे तारो तब मैं जानूं। रीतिकालीन कवियों ने राधा–कृष्ण की आराधना को आधार बनाकर जो रचनाएं की हैं उनमें भक्ति का भाव का कम शृंगार का स्वर प्रमुख हो गया है। रीतिकालीन भक्ति के इस स्थूल प्रवृत्ति के सन्दर्भ में भिखारीदास ने कहा है कि–

'रीझिहैं सुकवि जो तौ जानौ कविताई।
न तौ राधिका–कन्हाई सुमिरन को बहानो है।।'

अधिकांश रीतिकालीभ कवियों ने अपने जीवन काल के उत्तरार्ध में भक्ति और वैराग्य से सम्बन्धित रचनाएं की हैं। जिसको लेकर डा. नगेन्द्र की टिप्पणी है कि "रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है–हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उसके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करे अथवा सैद्धान्तिक निषेध कर सके।" रीतिकालीन काव्य में जहां भक्ति का उज्ज्वल रस प्रवाहित हुआ है वहां सुन्दर और श्रेष्ठ कविता का सृजन हुआ है, उदाहरण के लिए बिहारी के इस दोहे को देखा जा सकता है–

टिप्पणी

परिस्थितियों के प्रभाववश संयोग वर्णन मुखर है तो वियोग वर्णन हास्य का विषय बन गया है। संयोग और वियोग श्रृंगार का एक–एक उदाहरण दृष्टव्य है–

कंज–नयनि मुजनू किए, बैठी ब्यौरति बार।
कच–अंगुरी–बिच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार।।
इत आवति चलि जात उत, चली छः सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन् साथ।।

इस तरह देखा जा सकता है कि रीतिकालीन काव्य की श्रृंगारिता रूपलोभ, प्रेमआधारित विलास, भोग की प्रवृत्ति, सुख की कामना आदि भावों से भरी पड़ी है। वियोग श्रृगांर का उत्कट रूप घनानन्द के काव्य में मिलता है।

3. **अलंकारप्रियता** – सामंती समाज और दरबारी काव्य होने के कारण रीतिकालीन काव्य में अलंकारों के प्रति अतिरिक्त लगाव देखा जा सकता है। रीतिकालीन कवि अलंकारों को उसकी शोभा की तरह चित्रित करते थे। विलासी संस्कृति के प्रभाव के कारण रीतिकालीन कवियों में सहजता के स्थान पर अलंकारों के प्रति प्रबल मोह था। दूसरे यह कि रीतिकाल में अलंकारों के माध्यम से ही कवि गण अपनी कविता में चमत्कार उत्पन्न कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करते थे। केशव तो अलंकारों के प्रति इतने आग्रही थे कि वे बिना आभूषण की स्त्री और बिना अलंकारों की कविता की कल्पना भी नहीं कर पाते–

जदपि सुजाति सुलच्छनि सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त।।

अर्थात वे स्त्री और कविता दोनों की प्रतिष्ठा के लिए अलंकारों को आवश्यक मानते थे। अलंकारों के प्रति इस आग्रह के चलते कई स्थलों पर केशव की कविता कठिन और भाव हीन हो गयी है। कविता में अलंकारों के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता किन्तु कविता में अलंकार स्वाभाविक रूप से आने चाहिए जिससे कविता की शोभा बढ़े। जब कविता में प्रयत्न पूर्वक अलंकार भरे जाते हैं तो कविता अपना असर खो देती है।

रीतिकालीन काव्य में लगभग सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलता है। अनुप्रास, यमक, श्लेष और उत्प्रेक्षा अलंकार की प्रचुरता से रीतिकालीन काव्य अत्यधिक समृद्ध भी हुआ है। बिहारी के काव्य से उत्प्रेक्षा का श्रेष्ठ उदाहरण है–

सोहत ओढ़ैं पीत पट स्याम सलोने गात।
मनौं नीलमनि सैल पर आतप पर्यो प्रभात।।

कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कवियों ने अलंकार का प्रयोग विद्वता, चमत्कार और कौतूहल के प्रदर्शन के लिए ही किया है किन्तु जहां अलंकार को भाव के साधन के रूप में प्रयोग किया है वहां एक श्रेष्ठ कविता का सृजन हुआ है।

4. **आश्रयदाताओं की प्रशंसा** – अपने युग की परम्परा के अनुसार रीतिकाल के अधिकांश कवियों को विभिन्न राजाओं का आश्रय प्राप्त था। बिहारी, देव, भूषण, केशव, सूदन और मतिराम आदि कवि विभिन्न राज दरबारों से सम्बद्ध थे। उनकी यह सम्बद्धता उनके जीवन यापन का माध्यम थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि ये कवि अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में काव्य रचना करें। देव ने अपने आश्रयदाता भवानी सिंह के लिए 'भवानी–विलास' और कुशल सिंह के लिए 'कुशल–विलास' लिखा। सूदन ने भरतपुर के नरेश सुजान सिंह की प्रशंसा में 'सुजान चरित' तो भूषण ने शिवाजी के आश्रय में रहते हुए 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी' तो बुंदेल खण्ड के महान राजा छत्रसाल बुन्देला के लिए 'छत्रसाल दशक' जैसे महत्वपूर्ण वीर रस प्रधान ग्रन्थ लिखे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भूषण के ग्रन्थों के महत्व को स्वीकारते हुए लिखा है कि "शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता। वे आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं हैं। इन दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिन्दू जनता स्मरण करती है, उसी की व्यंजना भूषण ने की है।" भूषण का काव्य आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा का उज्ज्वल पक्ष है किन्तु दूसरे कवियों का काव्य आश्रयदाताओं की प्रशंसा का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन का चरम उदाहरण बन कर रह गया है। दरबारी संस्कृति द्वारा पोषित अधिकांश कवियों का काव्य कविता के घोषित लक्ष्यों से पीछे रह गया है।

5. **भक्ति और नीति** – रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियों में भक्ति और नीति सम्बन्धी कविताएं भी हैं। जहां कहीं भी रीतिकालीन कवियों को श्रृंगार वर्णन से अवकाश मिला है, वहां ये कवि भक्ति और लोक व्यवहार से सम्बन्धित रचनाओं में भी प्रवृत्त हुए हैं। अपने होने का दुःख और बाधाओं से मुक्ति के लिए, अपने विरूद की रक्षा के लिए ईश्वर की आराधना की गयी है। जैसे–

कौन भांति रहियै विरुद अब देखिबौ मुरारि।
बीधे मोसौं आनि कैं गीधे गीधहिं तारि।।

यहां भक्त भगवान को चुनौती देते हुए कहता है कि अब मुझे तारो तब मैं जानूं। रीतिकालीन कवियों ने राधा–कृष्ण की आराधना को आधार बनाकर जो रचनाएं की हैं उनमें भक्ति का भाव का कम श्रृंगार का स्वर प्रमुख हो गया है। रीतिकालीन भक्ति के इस स्थूल प्रवृत्ति के सन्दर्भ में भिखारीदास ने कहा है कि–

'रीझिहैं सुकवि जो तौ जानौ कविताई।
न तौ राधिका–कन्हाई सुमिरन को बहानो है।।'

अधिकांश रीतिकालीन कवियों ने अपने जीवन काल के उत्तरार्ध में भक्ति और वैराग्य से सम्बन्धित रचनाएं की हैं। जिसको लेकर डा. नगेन्द्र की टिप्पणी है कि रीतिकालीन कवियों में भक्ति भावना से हीन नहीं है–हो भी नहीं सकता था, "रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है–हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उसके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करे अथवा सैद्धान्तिक निषेध कर सके।" रीतिकालीन काव्य में जहां भक्ति का उज्ज्वल रस प्रवाहित हुआ है वहां सुन्दर और श्रेष्ठ कविता का सृजन हुआ है, उदाहरण के लिए बिहारी के इस दोहे को देखा जा सकता है–

हिंदी साहित्य का इतिहास

टिप्पणी

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।

जा तनकी झाईं परत,स्याम हरित दुति होय।।

टिप्पणी

भक्ति के साथ रीतिकालीन काव्य में नीति सम्बन्धी रचनाएं भी प्राप्त होती हैं। रीतिकालीन कवियों ने सामान्य जीवन में लोकाचार, व्यवहार ज्ञान सम्बन्धी नीति कथनों को भी अपने काव्य का विषय बनाया है। 'बिहारी सतसई' में नीति से सम्बन्धित अनेक दोहे मिलते हैं। बिहारी एक दोहे में कहते हैं कि संगीत, कविता, प्रेम और रति प्रसंग ऐसे विषय हैं जिनमें आधे–अधूरे मन से प्रयत्न करने पर सफलता नहीं मिलती। इन विषयों में सफलता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को पूरी निष्ठा और पूरे मन से समर्पण के भाव से प्रयत्न करना पड़ता है–

तन्त्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।

अनबूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग।।

नीति सम्बन्धी रचनाएं घाघ, बेताल, वृन्द और गिरिधरदास की रचनाओं में बहुतायत मे मिलती हैं। गिरिधरदास की कुंडलियां तो अपने नीति कथनों के लिए ही प्रसिद्ध हैं।

6. **प्रकृति चित्रण** – रीतिकालीन काव्य में प्रकृति अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित है। अधिकांश कवियों ने प्रकृति का उद्दीपन एवं अलंकार के रूप में ही चित्रण किया है। प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण अपेक्षाकृत कम है। नायक–नायिका की मानसिक दशा और प्रसंगों के अनुसार प्रकृति कभी सुख के तो कभी दुःख के विषय के रूप में चित्रित की गयी है। परम्परा के अनुसार बारहमासा और षड्ऋतु वर्णन भी मिलता है। कहीं–कहीं प्रकृति का मोहक रूप भी उपलब्ध है। रीतिकाल के प्रमुख कवि सेनापति अपने प्रकृति वर्णन के लिए प्रसिद्ध हैं। सेनापति के अतिरिक्त देव, मतिराम, भिखारीदास, पद्माकर जैसे कवियों की रचनाओं में भी प्रकृति वर्णन मिलता है। सेनापति के काव्य में उपलब्ध वर्षा ऋतु का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

सेनापति उनए नए जलद सावन के,

चारिहु दिसान घुमरत भरे तोय कै।

सोभा सरसाने न बखाने जात कँहूं भांति,

आने हैं पहार मानों काजर के ढोय कै।

तो वहीं कवि पद्माकर वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

द्वार में दिसान में दुनी में देस–देसन् में

देखी दीप दीपन में दीपत दिगन्त है।

बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,

बनन में, बागन में बगर्यो बसन्त है।

रीतिकाल में प्रकृति को अप्रस्तुत विधान के रूप में चित्रित किया गया है। प्रकृति के विभिन्न उपमानों जैसे चन्द्र, कमल, हंस, कोकिल, चातक, मेघ, पर्वत आदि का

प्रयोग नायिका के रूप–सौन्दर्य के लिए किया गया है। रीतिकाव्य में प्रकृति के प्रति आर्कषण और कौतूहल अधिक है प्रकृति का उदात्त स्वरूप कम।

टिप्पणी

7. **मुक्तक काव्य की प्रधानता** – रीतिकाल मुक्तक काव्यों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ काल है। यद्यपि इस काल में कुछ अच्छे प्रबन्ध काव्य भी लिखे गए। मुक्तक काव्य रीतिकाल की साहित्यिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल था। राज दरबारों में विभिन्न प्रकार की काव्य प्रतिस्पर्धाएं आयोजित होती थीं। कवियों के भीतर प्रतियोगिता का भाव और एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा के चलते कवियों में आलंकारिता, चमत्कारप्रियता और बहुज्ञता प्रदर्शन पर बहुत अधिक जोर दिया जाता था। इस साहित्यिक दृष्टि के कारण इस काल के कवियों के लिए मुक्तक काव्य सर्वदा अनुकूल था। प्रबन्धात्मकता के लिए उस समय उतनी जगह नहीं थी। कविता से तात्कालिक तौर पर मनोरंजन की प्राप्ति की लालसा ने भी मुक्तक काव्य के लिए जमीन तैयार की थी। इन सभी कारणों से मुक्तक काव्य को रीतिकाल में प्रसिद्धि मिली। उस काल का सर्वश्रेष्ठ मुक्तक काव्य बिहारी का 'बिहारी सतसई' है।

8. **ब्रज भाषा का उन्नत प्रयोग** – रीतिकालीन काव्य में ब्रज भाषा का उन्नत स्वरूप मिलता है। ब्रजभाषा का प्रयोग भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति धारा के सूर आदि कवियों की रचनाओं में होता रहा है, किन्तु रीतिकालीन काव्यों में ब्रज भाषा अपने सर्वोत्तम रूप में प्रकट हुई और लगभग दो सौ सालों तक हिन्दी साहित्य की मुख्य भाषा बनी रही। इस युग में अवधी और ब्रजभाषा दोनों का साहित्य में प्रयोग हो रहा था। इन दोनों भाषाओं के कवियों की काव्यभाषाओं के आपसी मिश्रण के कारण भी ब्रजभाषा का शुद्ध रूप विकसित नहीं हो पाया। रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल में ब्रजभाषा के परिमार्जित रूप का विकास नहीं हो पाने पर अफसोस व्यक्त किया है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. सिद्धों की कुल संख्या कितनी है?
   (i) 32
   (ii) 84
   (iii) 24
   (iv) 74
6. अपभ्रंश से प्रभावित हिंदी में लिखे जाने वाली वीरगाथात्मक रचनाओं को कहा जाता है–
   (i) सिद्ध साहित्य
   (ii) नाथ साहित्य
   (iii) जैन साहित्य
   (iv) रासो साहित्य
7. रीतिकाल के आरंभ के समय भारत में किसका शासन था?
   (i) बाबर
   (ii) अकबर
   (iii) शाहजहाँ
   (iv) औरंगजेब

1.9 सारांश

हिन्दी भाषा का विकास भारत की प्राचीनतम भाषा संस्कृत से हुआ है। भाषा वैज्ञानिक इस विकास–क्रम को निम्न रूपों में रेखांकित करते हैं–

संस्कृत – 1500 ई.पू से 500 ई.पू तक

पालि – 500 ई.पू से पहली ईसवी तक

प्राकृत – पहली ई. से 500 ई. तक

अपभ्रंश – 500 ई. से 1000 ई. तक

हिन्दी – 1000 ई. से आज तक

उपर्युक्त विकास–क्रम से स्पष्ट है कि हिन्दी का विकास सीधे–सीधे अपभ्रंश से हुआ है।

टिप्पणी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में ऐतिहासिक–सामाजिक प्रभाव की जगह साहित्यिक परंपरा पर ज्यादा जोर दिया।

आचार्य द्विवेदी का वर्गीकरण काफी उदार है–

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल– 1000 ई.–1400 ई.
2. भक्तिकाल का आविर्भाव– 1400–1650
3. रीतिकाव्य– 1650 ई.–1850 ई.
4. आधुनिक काल– 1850 ई.–1952 ई.

आदिकाल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति रासो साहित्य है। रासो साहित्य के अलावा आदिकाल में जितनी तरह का साहित्य रचा गया उसका लक्ष्य शुद्ध साहित्य की रचना करना नहीं था। सिद्ध–नाथ और जैन साहित्य का लेखन अपने पंथ के प्रचार के उद्देश्य से किया गया था जबकि रासो ग्रंथों का मुख्य उद्देश्य पाठक का मनोरंजन था।

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है। इसमें भारत के अधिकांश हिस्सों और समाज के विभिन्न वर्गों से निकलकर आये रचनाकारों ने साहित्य रचा। भक्तिकाल जैसा जन–साहित्य न उसके पहले लिखा गया था न ही उसके बाद ही लिखा गया। यही कारण है आज भी भारतीय जनता के बीच जैसी लोकप्रियता और सम्मान भक्तिकालीन कवियों को मिला वैसा किसी अन्य युग के कवियों को नहीं। इन कवियों का साध्य साहित्य नहीं था, वह तो मात्र साधन था भगवान की प्राप्ति का। इसके बावजूद इनकी कविता में जितनी सरसता और मानवीय संवेदना की जैसी अभिव्यक्ति है वह अद्वितीय है।

रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियां बहुत कुछ अपनी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुकूल ही हैं। सामंती समय और सामंतों के आश्रय में रचे जाने के कारण रीतिकालीन काव्य में दरबारी काव्य की सभी प्रवृत्तियां विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों के निजी परिवेश और जीवन को भी उनकी रचनाओं में लक्षित किया जा सकता है। विशेषकर दरबारों में मनोरंजन के निमित्त रचे जाने के कारण रीतिकालीन काव्य में अलंकार प्रियता, चमत्कार, शृंगार और कौतूहल की प्रवृत्ति सहज ही उपलब्ध है।

1.10 मुख्य शब्दावली

- **लौकिक साहित्य** : आम जनता की भावनाओं को केन्द्र में रखकर लिखा गया साहित्य।
- **वीरगाथात्मक साहित्य** : मनुष्य की वीरता और साहस को केन्द्र में रखकर लिखा जाने वाला आख्यानपरक साहित्य।
- **व्यवहृत** : व्यवहार में लाया गया।
- **आविर्भाव** : प्रकट होना, उत्पत्ति।
- **पूर्वाग्रह** : पहले से निश्चित किया गया मत।

टिप्पणी

- **परिनिष्ठित** : पूर्वतया कुशल।
- **नैरंतर्य** : निरंतरता।
- **निरूपण** : विवेचना करना।
- **अवांतर** : मध्य, अंतर्गत।
- **सम्यक्** : समुदाय, समूह।
- **उद्भावना** : कल्पना, मन की अद्भुत सूझबूझ।
- **स्वायत्तता** : स्व–शासन।
- **व्याप्ति** : व्याप्त होने का भाव।
- **रिपोर्ताज** : रिपोर्ट के रूप में घटनाओं का वर्णन।

1.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. जॉर्ज ग्रियर्सन
3. (i) वीरगाथा काल 1050–1375
   (ii) भक्तिकाल 1375–1700
   (iii) रीतिकाल 1700–1900
   (iv) गद्यकाल 1900 से अब तक
4. रामकुमार वर्मा
5. 84
6. रासो साहित्य
7. शाहजहां

1.12 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 'आदिकाल' नाम की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।
2. आदिकाल की साहित्यिक प्रवृतियों पर प्रकाश डालिए।
3. भक्तिकाल की सगुण और निर्गुण भक्ति धाराओं की विवेचना कीजिए।
4. रीतिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

टिप्पणी

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन और नामकरण की समस्या पर विचार कीजिए।
2. आदिकाल की परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
3. भक्तिकाल की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों को सोदाहरण बताइए।
4. रीतिकाल का सामान्य परिचय देते हुए उसकी राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों को स्पष्ट कीजिए।

1.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास – विश्वनाथ त्रिपाठी।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास – हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

इकाई 2 कविता – 1

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 कबीरदास : सामान्य परिचय
2.2.1 कबीरदास–पाठ्यांश
2.2.2 कबीरदास की भक्ति–भावना
2.2.3 कबीरदास का सामाजिक पक्ष
2.3 सूरदास : सामान्य परिचय
2.3.1 सूरदास–पाठ्यांश
2.3.2 सूरदास का वात्सल्य–वर्णन
2.3.3 सूरदास की भक्ति–भावना
2.4 जायसी : सामान्य परिचय
2.4.1 जायसी : पाठ्यांश
2.5 तुलसीदास : सामान्य परिचय
2.5.1 तुलसीदास : पाठ्यांश
2.5.2 तुलसीदास की भक्ति–भावना
2.5.3 तुलसीदास का समन्वयवाद
2.6 पारिभाषिक शब्द
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल को 'स्वर्णयुग' कहा जाता है। ऐसा कहने की कई वजहें हैं। इसकी सबसे बड़ी वजह तो यह है कि इस युग में कबीरदास, सूरदास, जायसी, तुलसीदास, मीरा, रैदास, दादू और रज्जब जैसे महान कवियों का जन्म हुआ जिन्होंने अपनी कविताओं के द्वारा अपने समय और समाज को बहुत अधिक प्रभावित किया। भक्तिकाल से पहले आदिकाल में और उसके बाद रीतिकाल में दरबारी कवियों की प्रधानता थी जिनकी रचनाओं में एक सीमित जीवन–बोध को जगह मिलती थी। ये रचनाएँ सामंतों के दरबार में और उनकी ही भावनाओं की तुष्टि के लिए लिखी जाती थीं। इन कवियों का बहुसंख्यक जनता से कोई संबंध नहीं था। इससे भिन्न भक्तिकाल के कवि भारत की बहुसंख्यक जनता के बीच से निकले थे और उन्हीं के सुख–दुख के गायक थे। इन्होंने दरबारों के सुख को यह कहकर नकार दिया कि– 'संतन को कहां सीकरी सों काम।' भक्तिकालीन कवियों ने जनता की भाषा में कवितायें लिखीं जिससे ये जन–जन के हृदय में स्थापित हो गये। भक्तिकालीन कवियों जैसी अपार लोकप्रियता हिन्दी साहित्य के इतिहास के किसी भी काल में किसी भी कवि को नहीं मिली थी और न मिलने की संभावना है।

टिप्पणी

इस इकाई में भक्तिकाल की चार प्रमुख प्रवृतियों का प्रतिनिधित्व करने वाले चार कवियों का विस्तृत अध्ययन है। भक्तिकाल को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जाता है– निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा। निर्गुण काव्यधारा को भी दो भागों में विभाजित किया जाता है– ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। इसी प्रकार सगुण काव्यधारा को भी दो भागों में विभाजित किया गया है– कृष्णभक्ति और रामभक्ति। कबीर ज्ञानाश्रयी निर्गुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं जबकि जायसी प्रेमाश्रयी निर्गुण काव्यधारा के। कृष्णभक्त सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास हैं और रामभक्त सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास हैं।

भक्तिकाल के इन प्रमुख कवियों की कविताओं और काव्य की अलग–अलग विशेषताओं के अध्ययन के द्वारा आप भक्तिकाल की सामान्य विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। आप इन कवियों की भक्ति–भावना से तो परिचित होंगे ही, उनके साहित्य की खास प्रवृतियों को भी जान सकेंगे। इसके साथ ही इन रचनाकारों का साहित्य आपको अपने समय और समाज की समस्याओं का मुकाबला करने में भी मदद करेगा। मसलन, कबीर अपने क्रांतिकारी विचारों के लिए विख्यात हैं। उन्होंने तमाम धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों पर करारा प्रहार किया था। ये बुराइयाँ आज भी हमारे समाज का हिस्सा हैं। कबीर को पढ़कर आप अपने समय की समस्याओं को देखने और उनके मूल्यांकन का नया नजरिया पा सकते हैं। आधुनिकता की दौड़ में हमारे समाज का बचपन कहीं खो गया है। माता–पिता को अपने बच्चों की देखभाल का समय नहीं है। सूरदास का वात्सल्य वर्णन अपने आस–पास के बालकों के प्रति आकर्षण पैदा करेगा। तुलसी का समय आज की तरह ही कई आधारों पर विभाजित था। तुलसी ने अपनी रचनाओं के द्वारा उनके बीच की खाई को पाटने का प्रयास किया। तुलसी के समन्वयवाद का अध्ययन अपने समाज के विभाजन को समाप्त करने की प्रेरणा और राह देगा।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भक्तिकाल के प्रमुख कवियों कबीरदास, सूरदास, जायसी और तुलसीदास के जीवन और रचनाओं का सामान्य परिचय प्राप्त कर पाएंगे;
- कबीरदास, सूरदास, जायसी और तुलसीदास के कुछ प्रतिनिधि पदों और साखियों की शब्दगत और अर्थगत व्याख्या कर पाएंगे;
- कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास की भक्ति–भावना से परिचित हो पाएंगे;
- कबीरदास के सामाजिक चिंतन के मुख्य पहलुओं का अध्ययन कर पाएंगे;
- सूरदास के वात्सल्य–वर्णन पर प्रकाश डाल पाएंगे;
- जायसी की प्रेमानुभूति का परिचय प्राप्त कर पाएंगे;
- तुलसी के समन्वयवाद की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे।

2.2 कबीरदास : सामान्य परिचय

टिप्पणी

कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा भगवान की भक्ति का सीधा और सरल मार्ग दिखाया। शास्त्रीय ज्ञान को चुनौती देते हुए कबीर ने आँखिन देखी ज्ञान या अनुभवजनित ज्ञान की महत्ता स्थापित कर अशिक्षित आम जनता के बीच गौरव का भाव भर दिया। उन्होंने अपने समय और समाज में फैली तमाम तरह की कुरीतियों पर सीधे–सादे तर्कों के द्वारा अचूक प्रहार कर उसमें बदलाव का प्रयास किया। उनकी भक्ति और कविता भारतीय समाज के अत्यंत पिछड़े समुदाय को संबोधित थी जिससे भारत की बहुसंख्यक आबादी के बीच इनको अपार लोकप्रियता हासिल हुई। कबीर के पदों का प्रसार हिन्दीभाषी समाज से बाहर गुजरात, पंजाब और असम तक में हुआ।

कबीरदास के जीवन से संबंधित अनेक प्रकार की किंवदंतियाँ मिलती हैं। कहा जाता है कि इनका जन्म किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, जिसने सामाजिक भय से वाराणसी के लहरतारा तालाब के पास उसे फेंक दिया। वह बालक नीरू और नीमा नामक निस्संतान दंपति को मिला जिन्होंने पाल–पोसकर उसे बड़ा किया। यह बात कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है परंतु, निर्विवाद रूप से इतना कहा जा सकता है कि कबीर का पालन–पोषण वाराणसी के एक ऐसे मुसलमान जुलाहा परिवार में हुआ था जिन्होंने एक दो पीढ़ी पहले ही इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। इस्लाम स्वीकार करने के पहले यह जुलाहा जाति नाथपंथी योगियों की शिष्य थी। कबीर के भीतर योग, हिन्दू और इस्लाम के विचारों की समान उपस्थिति की यही मूल वजह है।

कबीर के जन्म को लेकर बहुत सारी धारणाएँ है पर इतना स्पष्ट है कि वे सिकन्दर लोदी (1488–1517) के समय में थे। अब तक प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उनका जन्म सन 1399 ई. में काशी के लहरतारा इलाके में माना जाता है। ये विवाहित थे और इनके बच्चे भी थे। कबीर के गुरु को लेकर भी भ्रम की स्थिति है। इनके दो गुरु बताये जाते हैं– स्वामी रामानन्द और सूफी संत शेख तकी। कबीर ने अपने एक पद 'घट–घट है अबिनासी सुनहु तकी तुम शेख' में शेख तकी का नाम अश्रद्धा के साथ लिया है, इससे यह लगता है कि शेख तकी उनके गुरु नहीं थे। इतिहास के अनेकानेक प्रमाणों से पता चलता है कि रामानन्द के बारह शिष्यों में कबीर सर्वाधिक प्रमुख थे। उन्हें राम नाम के जाप की दीक्षा रामानन्द से ही मिली थी। कबीर ने कई स्थलों पर रामानन्द का नाम बहुत ही सम्मान के साथ लिया है। एक जगह वे लिखते हैं– 'सतगुरु के परताप से मिटि गयो दुख दंद। कह कबीर दुविधा मिटि, गुरु मिलिया रामानंद।' अतः रामानन्द को ही कबीर का गुरु मानना चाहिए। कबीर की मृत्यु को लेकर भी बहुत मतभेद है। एक जनश्रुति के अनुसार कबीर का देहांत संवत 1575 अर्थात सन 1518 ई. में बिहार के एक शहर मगहर में हुआ था। काशी में मरने वाले व्यक्ति को स्वर्ग और मगहर में मरने वाले को नरक मिलता है इस बात की कबीर ने अपने कई पदों में आलोचना की है। शायद यही वजह है कि उनके अनुयायियों ने यह प्रचारित कर दिया हो कि उनकी मौत मगहर में हुई थी। चाहे जो हो लेकिन अब तक उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कबीर का जन्म सन 1399 में काशी में और देहांत सन 1518 को मगहर में मानना चाहिए। इस प्रकार कबीर ने 120 वर्षों का दीर्घ जीवन जीया।

टिप्पणी

कबीर साक्षर नहीं थे उन्होंने स्वयं लिखा है–'मसि कागद छुयौ नहीं, कलम गहौ नहिं हाथ।' वे अपने पदों को गाया करते थे जो उनके भक्तों द्वारा देश भर में प्रसारित हुए। कबीर के शिष्य धर्मदास द्वारा उनकी रचनाओं को सबसे पहले लिपिबद्ध किये जाने की सूचना मिलती है। कबीर के कुछ पद सिखों के धर्मग्रंथ गुरुग्रंथसाहिब में भी संकलित हैं जिन्हें सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। कबीर के नाम से पचास ग्रंथों की जानकारी प्राप्त होती है लेकिन उनमें से कितने प्रामाणिक है और कितने अप्रामाणिक यह कहना कठिन है। आचार्य हजारी प्रसाद ने कबीर की रचनाओं के रूप में निम्न का उल्लेख किया है–

कबीर ग्रंथावली : इस ग्रंथ की तीन प्रतियाँ उपलब्ध हैं जिनका पाठानुसंधान कर 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित किया गया। इसका संपादन श्री श्यामसुंदर ने किया था। इसकी आधारभूत प्रति के विषय में दावा किया जाता है कि यह कबीर की मृत्यु के पंद्रह वर्ष पहले ही तैयार की गयी थी। लेकिन यह दावा प्रामाणिक नहीं लगता।

आदिग्रंथ के पद : सिखों के आदिग्रंथ गुरुग्रंथसाहिब का संकलन 1605 ई. में किया गया था। इसमें कबीर की बहुत से पद संग्रहित हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इन्हें अलग कर उनका संपादन किया है। कबीर के पदों का सबसे पुराना संग्रह इसे ही माना जाता है।

बीजक : बीजक के विषय में यह प्रसिद्ध है कि कबीरदास ने स्वयं ही इस ग्रंथ को अपने दो शिष्यों जगजीवनदास और भगवानदास को दिया था। बाद में इस ग्रंथ को कबीर के प्रमुख शिष्य धर्मदास ने संग्रहित किया। इस ग्रंथ की कबीरपंथी संप्रदाय में बहुत अधिक प्रतिष्ठा है। इस रचना पर कई टीकाएँ भी लिखी गयी हैं। बीजक का अर्थ होता है– गुप्त धन बताने वाली सूची। बीजक के तीन भाग हैं– साखी, सबद और रमैनी। 'साखी' दोहा छंद में लिखा जाता है। 'सबद' गेय पद होते हैं। रमैनी में सात–सात चौपाइयों के बाद एक–एक दोहा संकलित होता है।

2.2.1 कबीरदास–पाठ्यांश

पाठ्यक्रम में निर्धारित कबीरदास की ये साखियाँ 'साध कौ अंग' से ली गयी हैं। 'साखी' शब्द संस्कृत भाषा के साक्षी शब्द का तद्भव रूप है जिसका अर्थ है प्रत्यक्षतः देखा हुआ। कबीर ने लिखा है कि 'साखी आँखी ज्ञानकी, समुझि देखु मनमाहिं। बिन साखी संसारको, झगरा छूटत नाहिं।' अर्थात साखी में उपस्थित सत्य ज्ञान की आंखों से पाया गया है, यह पुस्तकीय ज्ञान से ज्यादा प्रमाणिक है। गुरु को साक्षी मानकर 'साखी' लिखने की परम्परा कबीर के बहुत पहले से चली आ रही थी। कबीरदास के शिष्य धर्मदास ने जब कबीर की वाणियों का संग्रह किया तब विषयवस्तु के अनुसार उसका विभाजन अंगों में कर दिया। प्रस्तुत साखियाँ 'साध कौ अंग' से ली गयी हैं जिसमें साधु अर्थात भगवद–भक्ति में लीन व्यक्ति की महत्ता को स्थापित किया गया है।

1. *कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ।*
   चंदन होसी बाँवना, नीब न कहसी कोइ।।

शब्दार्थ : संगति = साथ, **साध** = साधु, **कदे** = कभी, **निरफल** = व्यर्थ, **होसी** = होना, **बाँवना** = छोटा, **नीब** = नीम, **कहसी** = कहना।

सन्दर्भ : कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय समाज को भगवान की भक्ति की एक–सी राह दिखायी जो सबके लिए खुली थी। सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए इन्होंने तमाम धार्मिक पाखंडों का साहसिक पर्दाफाश किया। मध्यकाल में प्रचलित अनेकानेक साधना पद्धतियों के प्रगतिशील तत्वों का मेल कर इन्होंने भक्ति की अपनी राह बनायी थी प्रस्तुत साखी हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित कबीरदास के पाठ से ली गई है।

टिप्पणी

प्रसंग : प्रस्तुत साखी में कबीरदास ने साधु व्यक्ति की संगति की सराहना की है। उनका मानना है कि ईश्वरोन्मुख व्यक्ति का साथ हमें कभी भी नुकसान नहीं पहुँचा सकता है।

व्याख्या : इस साखी में कबीर दास का कहना है कि साधु की संगति या साथ कभी भी निष्फल या व्यर्थ नहीं जाता। जो व्यक्ति भगवान के भक्तों अथवा सज्जन लोगों के साथ रहता है उसका लाभ उसे कभी न कभी मिलता ही है। साधु की समाज में स्थिति चंदन की तरह होती है वह जहाँ भी रहता है अपने गुण रूपी सुगंध से आसपास के वातावरण को पवित्र और सुगंधित बनाये रखता है। साधु बाह्य रूप में चाहे जैसा दिखता हो अपने आंतरिक गुणों के कारण सदैव ही समाज की भलाई करता है, लेकिन जो दुर्जन या असाधु लोग हैं वे बाहरी स्तर पर चाहे जितने भी सुंदर दिखते हों वे समाज का कभी भला नहीं कर सकते। इस तथ्य को एक उदाहरण के द्वारा समझाते हुए कबीर कहते हैं कि जिस तरह चंदन चाहे जितना भी छोटा हो लेकिन कभी भी उसे कोई नीम नहीं कह सकता वैसे ही साधु बाह्य रूप में चाहे जितना भी नगण्य दिखता हो उसे असाधु नहीं कहा जा सकता।

विशेष : साखी की अंतिम पंक्ति में निदर्शना अलंकार का प्रयोग है।

चंदन और नीम की तुलना की वजह यह है कि ये दोनों वृक्ष बिल्कुल एक जैसे दिखते हैं जबकि गुण में एक दूसरे के विपरीत हैं। एक खुशबूदार और दुर्लभ है तो दूसरा कड़वा और सर्वत्र उपलब्ध है।

मनुष्य के बाह्य रूप की जगह उसके आंतरिक गुण की महत्ता स्थापित की गयी है। वर्तमान समय और समाज में इस साखी की प्रासंगिकता यह है कि आज हमारा सारा जोर केवल दिखावे पर है जो संगत नहीं कहा जा सकता है। आज का युग विज्ञापन का युग है।

2. *कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ।*
   दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ।।

शब्दार्थ : बेगि = तीव्रता या जल्दी, **करीजै** = करना, **दुरमति** = कुबुद्धि अथवा खराब बुद्धि, **गँवाइसी** = गंवाना या हटाना, **देसी** = देना, **सुमति** = सुबुद्धि अथवा अच्छी बुद्धि।

सन्दर्भ : कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय समाज को भगवान की भक्ति की एक–सी राह दिखायी जो सबके लिए खुली थी। सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए इन्होंने तमाम धार्मिक पाखंडों का साहसिक पर्दाफाश किया। मध्यकाल में प्रचलित अनेकानेक साधना पद्धतियों के प्रगतिशील तत्वों का मेल कर इन्होंने भक्ति की अपनी राह बनायी थी। प्रस्तुत साखी हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित कबीरदास के पाठ से ली गई है।

प्रसंग : इस साखी में कबीर साधु व्यक्ति का साथ पाने के लिए लोगों को तत्पर रहने की सलाह देते हैं। इसकी वजह यह है कि साधु व्यक्ति हमारे भीतर विद्यमान विकृत बुद्धि को समाप्त कर अच्छी बुद्धि का निर्माण करता है।

टिप्पणी

व्याख्या : कबीर दास कहते हैं कि साधु या सज्जन व्यक्ति का साथ स्वयं आगे बढ़कर तत्काल प्राप्त कर लेना चाहिए। अर्थात साधु के साथ को पाने के लिए खुद ही प्रयास करना चाहिए और जितनी जल्दी हो उसके पास जाना चाहिए। क्योंकि साधु व्यक्ति आपके भीतर विद्यमान समस्त विकृत बुद्धि या कुबुद्धि को तत्काल आपसे दूर भगा देता है या समाप्त कर देता है, और आपका परिचय सुमति या अच्छी बुद्धि से कराता है। तात्पर्य यह है कि सज्जन व्यक्ति मनुष्य के भीतर सद्विवेक को जगाने में समर्थ होता है।

विशेष : सज्जन व्यक्ति की महत्ता बतायी गयी है। वह हमें गलत राह से दूर और श्रेष्ठ विचारों के नजदीक ले जाता है जिससे हम तमाम बुराइयों से बचते हैं।

3. *मथुरा जावै द्वारिका, भावैं जावैं जगनाथ।*
साध संगति हरि भगति बिन, कछू न आवै हाथ।।

शब्दार्थ : **भावैं** = भाना या अच्छा लगना, **जावैं** = जाना, **भगति** = भक्ति।

सन्दर्भ : कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय समाज को भगवान की भक्ति की एक–सी राह दिखायी जो सबके लिए खुली थी। सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए इन्होंने तमाम धार्मिक पाखंडों का साहसिक पर्दाफाश किया। मध्यकाल में प्रचलित अनेकानेक साधना पद्धतियों के प्रगतिशील तत्वों का मेल कर इन्होंने भक्ति की अपनी राह बनायी थी। प्रस्तुत साखी हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित कबीरदास के पाठ से ली गई है।

प्रसंग : कबीर इस साखी में तीर्थ यात्रा की तुलना में साधु की संगति को ज्यादा महत्व दे रहे हैं। उनका कहना है कि तीर्थ यात्रा करने से भगवान नहीं मिलते बल्कि अच्छी संगत से प्राप्त अनुभव और भगवत भजन से उनका दर्शन होता है।

व्याख्या : कोई व्यक्ति चाहे मथुरा जाये या द्वारिका जाये, या मन को अच्छा लगे तो जगन्नाथपुरी भी चला जाये। पर साधु की संगति और हरि की भक्ति के बिना उसके हाथ कुछ भी नहीं आएगा। तात्पर्य यह कि तीर्थ यात्राओं से भगवान के दर्शन नहीं होते और न ही जीवन–विवेक ही मिलता है। यदि साधु व्यक्ति के साथ रहा जाए और मन से भगवान की भक्ति की जाए तो मथुरा, द्वारिका और जगन्नाथपुरी की यात्रा किये बगैर भी भगवान को पाया जा सकता है।

विशेष : मथुरा, द्वारिका और जगन्नाथ हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ–स्थल हैं जहाँ कृष्ण भगवान के विशाल मंदिर हैं। इनकी यात्रा हिन्दू समाज में काफी पवित्र मानी जाती है। इनमें से मथुरा उत्तर प्रदेश में एवं और द्वारिका गुजरात में स्थित हैं जबकि जगन्नाथजी का मन्दिर उड़ीसा के पुरी नामक स्थान पर स्थित है।

इस साखी में कबीरदास हिन्दू समाज में विद्यमान बाह्याचारों के साथ–साथ अन्य तमाम धर्मों और पंथों में विद्यमान कुरीतियों का भी खंडन कर रहे हैं।

साधु की संगति की महत्ता को स्थापित किया गया है क्योंकि इसके बिना सांसारिक जीवन में फंसा मनुष्य भगवान की भक्ति की ओर कभी भी उन्मुख हो ही नहीं हो सकता।

टिप्पणी

4. *मेरे संगी दोइ जणाँ एक वैष्णों एक राँम।*
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाँम।।

शब्दार्थ : **संगी** = साथी, **दोइ** = दो, **जणाँ** = जन या लोग, **वैष्णों** = वैष्णव अर्थात विष्णु भगवान की पूजा करने वाला, **दाता** = दानी, **मुकति** = मुक्ति अर्थात जन्म–जन्मान्तर के बंधन से मुक्ति, **सुमिरावै** = सुमिरन कराना, भगवान का स्मरण करना।

सन्दर्भ : कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय समाज को भगवान की भक्ति की एक–सी राह दिखायी जो सबके लिए खुली थी। सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए इन्होंने तमाम धार्मिक पाखंडों का साहसिक पर्दाफाश किया। मध्यकाल में प्रचलित अनेकानेक साधना पद्धतियों के प्रगतिशील तत्वों का मेल कर इन्होंने भक्ति की अपनी राह बनायी थी। प्रस्तुत साखी हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित कबीरदास के पाठ से ली गई है।

प्रसंग : प्रस्तुत साखी में कबीर राम और उनके भक्त वैष्णव की महत्ता स्थापित कर रहे हैं। उनका कहना है कि यही दोनों मेरे साथी हैं। वैष्णव ने राम नाम से मेरी लगन लगा दी है और राम तो स्वयं मुक्ति का ही दाता है।

व्याख्या : कवि का कहना है कि मेरे साथी केवल दो ही लोग हैं– एक वैष्णव और दूसरा राम। वैष्णव से यहाँ कबीर का तात्पर्य भगवान के भक्त से है। वैष्णव सांसारिक भव–बाधाओं से हमें विमुख करता है और राम उससे हमारी रक्षा करते हैं। वैष्णव का साथ हमें भगवान के नाम–स्मरण की ओर प्रवृत करता है जिससे मुक्ति दाता राम का अनुग्रह प्राप्त होता है, और जीव सासारिक बंधनों से मुक्ति प्राप्त करता है।

विशेष : वैष्णव का शाब्दिक अर्थ विष्णु की अराधना करने वाला होता है। राम और कृष्ण विष्णु के ही अवतार माने जाते हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में वैष्णव के साथ से ईश्वर कृपा–प्राप्ति की ओर संकेत किया गया है।

कबीर ने अपने अनेक पदों में नाम की महिमा स्थापित की है। तमाम कर्मकांडों को त्यागकर मनुष्य यदि केवल राम के नाम का ही स्मरण करे तब भी उसे मुक्ति मिल सकती है।

'मुक्ति' एक दार्शनिक पद है जिसका तात्पर्य है जीवन–मरण के बंधन से मुक्त होकर ईश्वर में मिल जाना। भारतीय धर्मों में स्वर्ग–नरक से भिन्न मुक्ति की अवधारणा का प्रचलन है। इनकी मान्यता है कि मनुष्य चौरासी लाख योनियों में बार–बार जन्म लेता रहता है। मनुष्य योनि में जन्म लेने के पश्चात उसके पास एक मौका होता है कि वह भगवान की आराधना कर इस जन्म–मरण के बंधन से मुक्त हो जाये।

5. *कबीरा बन बन में फिरा, कारणि अपणें राँम।*
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काँम।।

टिप्पणी

शब्दार्थ : बन = जंगल, **अपणें** = अपने, **सरीखे** = समान, **सारे** = पूरा करना।

सन्दर्भ : कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय समाज को भगवान की भक्ति की एक–सी राह दिखायी जो सबके लिए खुली थी। सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए इन्होंने तमाम धार्मिक पाखंडों का साहसिक पर्दाफाश किया। मध्यकाल में प्रचलित अनेकानेक साधना पद्धतियों के प्रगतिशील तत्वों का मेल कर इन्होंने भक्ति की अपनी राह बनायी थी। प्रस्तुत साखी हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित कबीरदास के पाठ से ली गई है।

प्रसंग : कबीर का कहना है कि राम को खोजते–खोजते वे जंगल–जंगल घूमे लेकिन राम नहीं मिले। परंतु इस खोज के दौरान राम के समान ही उनके भक्तों से मिलना हुआ जिन्होंने मेरे सारे अधूरे काम पूरे कर दिये। तात्पर्य यह कि राम से मिलना भी राम के भक्तों के बिना संभव नहीं है।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि अपने राम को पाने के लिए मैं जंगल–जंगल घूमा अर्थात तमाम कठिन रास्तों पर चला। इस साधना–पथ पर चलते हुए मुझे राम के समान तमाम लोग मिले और उन्होंने मेरे सारे काम पूरे कर दिये। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान की राह पर चलते हुए भगवान की अनुकंपा तो मिलती ही है लेकिन भगवान के समान ही उनके भक्तों का साथ भी हमें तमाम मुश्किलों से पार लगा देता है।

विशेष : 'बन बन' में अनुप्रास अलंकार है।

भगवान के समान ही उनके भक्तों की महत्ता को भी स्थापित किया है।

6. *कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।*
अंक भरे भरि भेटिया, पाप सरीरौ जाँहिं।।

शब्दार्थ : सोई = वही, **भला** = अच्छा, बेहतर, **अंक** = बाँह, **भेटिया** = मिलना।

सन्दर्भ : कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय समाज को भगवान की भक्ति की एक–सी राह दिखायी जो सबके लिए खुली थी। सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए इन्होंने तमाम धार्मिक पाखंडों का साहसिक पर्दाफाश किया। मध्यकाल में प्रचलित अनेकानेक साधना पद्धतियों के प्रगतिशील तत्वों का मेल कर इन्होंने भक्ति की अपनी राह बनायी थी। प्रस्तुत साखी हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित कबीरदास के पाठ से ली गई है।

प्रसंग : कबीर इस साखी में संत की महत्ता स्थापित कर रहे हैं। उनका मानना है कि जिस दिन आपकी मुलाकात संत व्यक्ति से नहीं हुई वह दिन आपका बेकार चला गया। संत व्यक्ति आपके समस्त पापों को जला देने की सामर्थ्य रखता है।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि वही दिन सार्थक या सफल है जिस दिन किसी संत से मुलाकात होती है। यदि किसी संत को बांहों में भरकर बार–बार गले लगाया जाए तो हमारे शरीर के समस्त पाप दूर हो जाते हैं। यहाँ कवि स्पष्ट तौर पर तो संत को गले लगाने की बात कर रहा है लेकिन सांकेतिक रूप से उसके विचारों को स्वीकारने की वकालत कर रहा है। शरीर से तमाम पापों के समाप्त होने से यहाँ तात्पर्य सज्जन व्यक्ति के श्रेष्ठ विचार द्वारा तमाम बुराइयों से होने वाले हमारे बचाव से है।

टिप्पणी

विशेष : 'अंक भरे भरि भेटिया' हिन्दी का एक मुहावरा है जिसका मतलब किसी व्यक्ति से हार्दिक स्तर पर मिलना होता है।

7. *कबीर चंदन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास।*
आप सरीखे करि लिए जे होत उन पास।।

शब्दार्थ: बिड़ा = पेड़, **आक** = एक जंगली पौधा, **पलाश** = एक पेड़ जिसमें उपयोगी फल नहीं लगते और लाल रंग के फूल लगते हैं।

सन्दर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : इस साखी में साधु व्यक्ति की तुलना चंदन के वृक्ष से की गयी है जो अपनी गंध से आसपास के वृक्षों को भी सुगंधित कर देता है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि यदि चंदन के वृक्ष के आसपास आंक और पलास जैसे वृक्ष भी हों तो चंदन उनको अपनी गंध से आवेष्टित कर लेता है, अर्थात उनसे भी चंदन जैसी खुशबू आने लगती है। तात्पर्य यह कि साधु व्यक्ति के आसपास यदि दुर्जन भी रहें तो साधु व्यक्ति की संगत से वे अपनी बुराइयों को त्याग कर श्रेष्ठ आचरण करने लगते हैं।

विशेष : चंदन एक सुगंधित और मूल्यवान वृक्ष है जबकि आक और पलास अनुपयोगी पेड़ हैं, इनके फल, फूल, तना किसी का भी जीवन में कोई उपयोग नहीं होता है। इन वृक्षों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए कवि ने उपर्युक्त साखी में चंदन को साधु व्यक्ति और आक तथा पलास को असाधु व्यक्ति के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया है।

8. *कबीर खाई कोट की, पांणी पीवे न कोइ।*
आइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ।।

शब्दार्थ : खाई = तालाब या कुंआ, **कोट** = परकोटा (बड़ी–बड़ी दीवारों से घिरा हुआ किला), **पांणी** = पानी, **पीवे** = पीना, **गंग** = पवित्र नदी गंगा, **गंगोदिक** = यह शब्द गंगा और उदक (जल) के मेल से बना है जिसका तात्पर्य है गंगा का जल।

सन्दर्भ : कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय समाज को भगवान की भक्ति की एक–सी राह दिखायी जो सबके लिए खुली थी। सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए इन्होंने तमाम धार्मिक पाखंडों का साहसिक पर्दाफाश किया। मध्यकाल में प्रचलित अनेकानेक साधना पद्धतियों के प्रगतिशील तत्वों का मेल कर इन्होंने भक्ति की अपनी राह बनायी थी। प्रस्तुत साखी हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित कबीरदास के पाठ से ली गई है।

प्रसंग : प्रस्तुत साखी में साधु की तुलना गंगा के जल से की गयी है। जिस प्रकार गंगा के जल में यदि नाले का पानी भी मिल जाय तो गंगाजल हो जाता है वैसे ही साधु व्यक्ति से मिलकर बुरा व्यक्ति भी भला हो जाता है।

व्याख्या : परकोटे में स्थित खाईं के जल को कोई भी पीना नहीं चाहता है क्योंकि वह स्थिर और गंदा होता है लेकिन जब वह गंगा के जल में आकर मिल जाता है तो गंगाजल हो जाता है, जिसे पीने के लिए सभी बेताब रहते हैं। तात्पर्य यह कि जब तक कोई व्यक्ति अपनी निजी दुनिया में घिरा रहता है तब तक उसकी कोई महत्ता नहीं होती, लेकिन जैसे

ही वह किसी सज्जन व्यक्ति के संसर्ग में आता है और उसके आचरण में बदलाव आता है तब सभी उसकी महिमा का गुणगान करने लगते हैं।

विशेष : भारत में गंगा नदी और उसके जल की बेहद महत्ता है। ऐसी मान्यता है कि मृत्यु के पहले यदि किसी मनुष्य के मुख में गंगाजल की दो बूंद भी डाल दी जाएं तो वह स्वर्ग में चला जाता है।

साधु व्यक्ति की तुलना गंगा की जल से की गयी है क्योंकि दोनों ही मनुष्य की मुक्ति के कारण बनते हैं। दुर्जन व्यक्ति के तुलना परकोटे में बंद स्थिर जल से की गयी है क्योंकि वह केवल अपने स्वार्थों को साधने में ही लगा रहता है। संसार के अन्य प्राणियों से उनका कोई लगाव नहीं होता। 'पांणी' शब्द राजस्थानी प्रभाव है।

9. *जाँनि बूझि साचहि तजै, करैं झूठ सूँ नेह।*
ताको संगति राम जी, सुपिनै हो जिनि देहु।।

शब्दार्थ : साचहि = सत्य, **तजै** = त्यागना, **सूँ** = से, **नेह** = लगाव, **ताको** = उसकी, **सुपिनै** = स्वप्न, **जिनि** = नहीं।

सन्दर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : कबीर इस साखी में उन व्यक्तियों से बचने की सलाह देते हैं जो जानबूझ कर झूठ बोलते हैं।

व्याख्या : जो जान–बूझकर सत्य का त्याग करता है और झूठ से स्नेह करता है, कबीर कहते हैं कि हे राम! उस व्यक्ति का साथ सपने में भी मत देना। जो व्यक्ति सत्य का मार्ग त्यागकर असत्य के मार्ग को स्वीकार करता है वह कभी भी विश्वसनीय नहीं हो सकता, और अविश्वसनीय व्यक्ति कभी भी किसी के साथ भी घात कर सकता है।

विशेष : यह एक नैतिक कथन है जिसकी दैनिक जीवन में पर्याप्त उपयोगिता है।

10. *कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तूँ बसै।*
नहीं तर वेगि उठाइ, नित को गंजन को सहै।।

शब्दार्थ : तास = उससे, **जास** = जिसके, **हियाली** = हृदय, **तर** = तो, **वेगि** = जल्दी, शीघ्र, **नित** = रोज, नित्य, **गंजन** = कठिन यातना या कष्ट।

सन्दर्भ : कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय समाज को भगवान की भक्ति की एक–सी राह दिखायी जो सबके लिए खुली थी। सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए इन्होंने तमाम धार्मिक पाखंडों का साहसिक पर्दाफाश किया। मध्यकाल में प्रचलित अनेकानेक साधना पद्धतियों के प्रगतिशील तत्वों का मेल कर इन्होंने भक्ति की अपनी राह बनायी थी। प्रस्तुत साखी हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित कबीरदास के पाठ से ली गई है।

प्रसंग : कबीरदास इस साखी में उस आदमी से मिलने की चाह व्यक्त करते हैं जिसके हृदय में राम का वास हो।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि हे राम मुझे उस व्यक्ति से मिला जिसके हृदय में तू बसता है, वर्ना जितनी जल्दी हो सके मुझे इस दुनिया से उठा ले क्योंकि यहाँ हर रोज मिलने वाली जलालत या यातना को कौन सहना चाहता है, अर्थात सांसारिक जीवन की इस यातना को सहते–सहते मैं तंग आ चुका हूँ। कबीरदास यह जानते हैं कि इस भौतिक संसार की मुश्किलों से केवल वह साधु ही बचा सकता है जिसके हृदय में राम बसते हैं अतः वे राम से ही उससे मिला देने का आग्रह करते हैं। वैसे राम के भक्त से भी राम की कृपा के बिना मिल पाना कठिन है।

2.2.2 कबीरदास की भक्ति–भावना

कबीर भक्तिकाल के प्रसिद्ध भक्त कवि हैं। वे निर्गुण मार्ग के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि और भक्त हैं। वे मूलतः भक्त हैं कवि बाद में। कबीर मध्यकाल के प्रसिद्ध संत रामानन्द के शिष्य हैं। रामानन्द का शिष्यत्व ग्रहण करने के पहले कबीर नाथों–सिद्धों की साधना पद्धति से प्रभावित थे लेकिन रामानन्द के प्रभाव में आकर उनका झुकाव वैष्णव भक्ति की ओर हुआ। 'मेरे संगी द्वै जणा, एक वैष्णव एक राम' और 'कबीर धनि ते सुन्दरी, जिनि जाय वैसनों पूत' कहकर वैष्णवों के प्रति अपनी श्रद्धा और सम्मान निवेदित किया है। वैसे कबीर की भक्ति संकीर्ण नहीं है। वह उनके आराध्य के समान ही उदार और व्यापक है। उनके ईश्वर का द्वार सबके लिए खुला है। कबीर के लिए भक्ति ही सर्वस्व है। उनका काव्य भगवान की आराधना के साथ–साथ उनके लिए सामाजिक एकता की स्थापना की राह भी खोलता है। भगवान की भक्ति में विद्यमान बाह्य–आडंबरों का विरोध करते हुए कबीर सहज–साधना को अपनी भक्ति का मूल घोषित करते हैं। नवधा भक्ति की राह पर चलने वाले कबीर भव–सागर से मुक्ति के लिए केवल राम नाम का सहारा लेते हैं। उनकी भक्ति पर भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद का पर्याप्त प्रभाव है। यही कारण है कि कबीर ईश्वर की एकता पर बहुत अधिक बल देते हैं। कबीर की भक्ति में निम्न विशेषताएँ विद्यमान हैं–

निर्गुण राम की आराधना : कबीर ने अपने राम की कल्पना निर्गुण ब्रह्म के रूप में की है। उनका ब्रह्म ऐसा अनूप है जिसके न मुख है, न माथा है, न रूप है, न आकार है, जो पुष्प की सुगंध से भी पतला है। वह मन और वाणी से अगोचर, अलख और निरंजन है, उसका वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता। वह केवल अनुभव की वस्तु है, इसीलिए उसे कबीर ने कई स्थलों पर 'गूँगे का गुड़' कहा है। वह तमाम सांसारिक गुणों से परे है। उसे सांसारिक गुणों के भीतर बाँधा ही नहीं जा सकता। कबीर ने अपने ब्रह्म को हरि, गोविंद, केशव आदि कई नामों से पुकारा है लेकिन इन सबमें उन्हें सर्वाधिक प्रिय राम है। लेकिन वे बार–बार लोगों को सचेत करते हैं कि यह राम वह नहीं हैं जो दशरथ के घर में पैदा हुए थे– 'दशरथसुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम कारम न जाना।' असल में कबीर के राम पुराण–प्रतिपादित अवतार नही थे, वे सगुण राम की अपेक्षा कहीं अधिक अगम और अपार हैं। ईश्वर के जिस गुणमय स्वरूप की कल्पना की गयी है कबीर को वह मान्य नहीं था। लेकिन अपने निर्गुण राम में वे केवल निषेधात्मक भाव का ही आरोपण नहीं करते। उनके राम सत्व, रज और तमोगुण से अतीत हैं और इसीलिए निर्गुण हैं। अपने ब्रह्म के विशिष्ट स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं–

"संतौ, धोखा कांसू कहिये।
गुनमैं निरगुन, निरगुनमैं गुन, बाट छांडि क्यूँ बहिये।
अजर–अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।
नाति–स्वरूप वरण नहिं जाके घटि–घटि रह्यौ समाई।
प्यंड–ब्रह्मण्ड कथै सब कोई वाकै आदि अरु अंत न होई।
प्यंड–ब्रह्माण्ड छांडि जे कहिये कहै कबीर हरि सोई।"

रहस्यवाद : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार जहाँ कवि अपने अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में अपने प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है उसे रहस्यवाद कहा जाता है। रहस्यवाद की अनेक स्थितियाँ बतायी गयी हैं, जैसे– जागृति, आत्मशुद्धि, आत्म–प्रकाश, जिज्ञासा, प्रयत्न, मिलन की आकांक्षा, अनिवर्चनीयता आदि। रहस्यवाद के दो रूप हैं– साधनात्मक और भावात्मक। कबीर की कविता में रहस्यवाद की तमाम स्थितियों की सघन और व्यापक उपस्थिति है। कबीर ने भारतीय अद्वैतवाद और विदेशी सूफीवाद के दर्शन के मेल से अपने रहस्यवाद को खड़ा किया था। उनके यहाँ आत्मा और परमात्मा का रिश्ता मिट्टी और घड़े जैसा है जो अद्वैतवाद का विचार है, और आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए अपने को मिटा देने के लिए अमादा है यह सूफीवाद का प्रभाव है। रहस्यवाद का स्वरूप एकांतिक और व्यक्तिवादी होता है परंतु कबीर के रहस्यवाद में लोक के कल्याण की भावना भरी हुई है। कबीर ने आत्मा और परमात्मा के भावात्मक मिलन के बहुत ही सजीव और भावुक चित्रों की रचना की है। कबीर कहते हैं–

'बहुत दिनन थे प्रीतम पाए, भाग बड़े घर बैठे आए।
मन्दिर माँहि भया उजियारा,लै सूती अपना पिव प्यारा।।

हठयोग की साधना : नाथ पन्थ की साधना–पद्धति को हठयोग कहा जाता है। रामानन्द का शिष्य बनने के पहले कबीर पर इसका बहुत अधिक प्रभाव था। कबीर के अनेकानेक पदों में ब्रह्म प्राप्ति के लिए कुंडलिनी के जागरण का सूक्ष्म वर्णन मिलता है। भक्ति के प्रवाह में वे 'इड़ा', 'पिंगला', 'सुषुम्ना', 'अष्टचक्र', 'मूलाधारचक्र', 'सहस्त्रार चक्र', 'नाद–बिन्दु', 'उन्मनी' आदि का उल्लेख करते हैं। कबीर की भक्ति में हठयोग और मधुरा भक्ति का अदभुत समन्वय हुआ है। उनके लिए खेचरी जैसी जटिल मुद्रा के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार और केवल राम के नाम के जाप से परमपद को प्राप्त करने में किसी प्रकार का विरोधाभास नजर नहीं आता। कबीर कहते हैं कि अवधू, मेरा मन मतवाला हो गया है। यह उन्मन की अवस्था में पहुँचकर गगन रस पी रहा है, जिससे सारा जगत प्रकाशमय हो गया है– 'अवधू, मेरा मन मतवारा। उन्मनि चढ्या गगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा।'

सहज मार्ग का समर्थन : कबीर ने भले ही हठयोग का समर्थन किया हो लेकिन उनकी भक्ति के मूल में सहज साधना ही है। वे भगवान की प्राप्ति के लिए घर–द्वार छोड़कर वन जाने और कठोर तपस्या करने के पक्षपाती नहीं थे। वैराग्य और योगियों की जटिल साधना का उन्होंने उपहास उड़ाया। उनका दृढ़ विश्वास था कि, 'घर में जोग, भोग घर ही में। घर तजी वन नहीं जाऊँ 'कबीर के लिए सहज साधना हरिप्राप्ति का सरलतम

और सर्वश्रेष्ठ मार्ग था। उन्होंने विभिन्न प्रकार के अप्राकृतिक उपायों से इन्द्रियों के 'दमन' की जगह सहज साधना से उनके 'शमन' का पक्ष लिया। 'सहज' का मार्ग अध्यात्म का मार्ग है। नाम से भले ही लगता हो कि यह सरल है लेकिन इस पर चलना आसान नहीं। कहते हैं सीधी रेखा खींचना सबसे कठिन काम होता है। कबीर ने भी कहा–

"सहज–सहज सबही कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजैं हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ।।

राम के प्रति जिसकी सच्ची लगन है उसके लिए तो इस मार्ग पर चलना कठिन नहीं, लेकिन जिनके भीतर जरा सी भी दुविधा है वह तो इस राह पर चल नहीं पायेगा।

सदगुरु की महिमा : कबीर की भक्ति में सदगुरु की बहुत अधिक महत्ता है। गुरु–सेवा को उन्होंने भगवत–भक्ति के समान कहा है। कबीर ने गुरु को गोविंद से अभिन्न माना है और अपनी अनेक साखियों में गुरु को उन्हीं विशेषणों से विभूषित किया है जिनका प्रयोग वे अपने राम के लिए करते हैं। कबीर निरंतर गुरु–स्मरण को महत्व देते हैं और उसका मिलना भगवान का अनुग्रह मानते हैं। गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिल सकता और ज्ञान के बिना ईश्वर तक पहुँचना कठिन है। अपनी एक साखी में वे कहते हैं कि सतगुरु के मिलने के पहले तक तो मैं पत्थर की ही पूजा करता रहा, उनके मिलन के बाद ही मैं इस बोझ से मुक्त हुआ। वे सतगुरु के उपकारों की बार–बार चर्चा करते हैं। एक पद में कबीर कहते हैं–

"सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।।"

नाम–स्मरण : कबीर की भक्ति का केंद्रीय शब्द है 'सुमिरण', अर्थात भगवान के नाम और रूप का स्मरण। कबीर को यह महामन्त्र उनके गुरु से प्राप्त हुआ था। यह उन्हें तमाम पाखंडों और कर्मकांडों से बचाता है। कबीर ने राम के नाम के जप को बहुत अधिक महत्व दिया है। मन, वाणी और कर्म से भगवान के नाम के स्मरण से मनुष्य तमाम सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाता है। कबीर का विश्वास है कि राम का नाम माया से बचाता है, काल–भय से मुक्त करता है और निन्दादि के प्रभाव से ऊपर रखता है। भव–सागर को पार करने में राम का नाम नौका की भूमिका अदा करता है। प्रेमपूर्वक राम–नाम के स्मरण से मनुष्य क्या जानवर का भी उद्धार संभव है। कबीर राम के नाम को ब्रह्म का सार कहते हैं और उनके लिए इसका सुमिरण ही भगवान की भक्ति और भजन है। कबीर के शब्द हैं–

"भगति भजन हरिनांव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा क्रमनां, कबीर सुमिरण सार।।"

दाम्पत्य भाव की भक्ति : कबीर की भक्ति में प्रेम तत्व की प्रधानता की एक वजह उसमें मिलने वाला दाम्पत्य भाव है। कबीर की भक्ति में यह भाव बहुत ही प्रबल है। उनके पदों में दाम्पत्य भाव के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण है। संयोग पक्ष में मिलन की उत्कट अभिलाषा और वियोग पक्ष में विरह की कारुणिक वेदना का दर्शन कबीर के पदों में मिलता है। वैसे संयोग पक्ष उतना सबल नहीं है जितना वियोग पक्ष। कबीर की भक्ति में सबसे अधिक विभोर कर देने वाला भाव कान्ताभाव का विरह है। भावगम्य भगवान को

टिप्पणी

प्राप्त करने के लिए कबीर उनके समक्ष नारी बन जाते हैं और उसकी विरह की ज्वाला में जलने लगते हैं। विरह की इन लहरों में जितनी ज्वाला है उतनी ही मादकता और तीव्रता भी। कबीर–वाणी में प्रतीक्षा, आतुरता, उन्माद, उन्निद्रता, व्याकुलता, सन्देह, मिलन–प्रयत्न, अभिलाषा आदि भावों की सहज उपस्थिति है। राम के विरह–बाण की तीक्ष्णता का अहसास सबको नहीं हो सकता। उससे उत्पन्न पीड़ा वही समझ सकता है जो उससे आबद्ध हो। कबीर के बालम उनके घर में नहीं है तो उनके शरीर के पोर–पोर में पीड़ा हो रही है। उनके बिना न उन्हें भूख लग रही है और न ही नींद आ रही है। दर्द का आलम यह है कि लगता है कि जान ही चली जाएगी, इसके बचने की केवल एक ही राह है कि बालम से मिलना हो–

"बालम आवो हमारे गेह रे।
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहे तुम्हारी नारी, मोकों लागत लाज रे।
दिल से नहीं दिल लगायो, तब लग कैसा सनेह रे।
अन्न न भावै नींद न आवै, गृह–बन धरै न धीर रे।
कामिनी को है बालम प्यारा, ज्यों प्यासे को नीर रे।
है कोई ऐसा पर–उपकारी, पिवसों कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भयो है, बिन देखे जिव जाय रे।"

दास्य भाव : जो मनुष्य संसार को पार करने का इरादा करके प्रीतिपूर्वक 'राम' का स्मरण करता है वह 'दास भक्त' कहलाता है। परमात्मा को अहंकार से मुक्त ऐसे भक्त अत्यंत प्रिय हैं। इसीलिए परमात्मा के समक्ष अपनी दीनता का प्रदर्शन भक्तिकाल के सभी कवियों ने किया है। सूर भी अपने कृष्ण के दास हैं और तुलसी भी। कबीर का स्वर इन सबसे गहरा है। जो कबीर धर्म के तत्कालीन ठेकेदारों को ललकारते हुए उन्हें 'पांडे' और 'शेख' पुकारते हैं वही जब अपने राम को समक्ष होते हैं तो खुद को कुत्ता तक कहने में परहेज नहीं करते। कबीर परमात्मा का गुलाम बन कर उनके हाथों बिकने को भी तैयार हैं– 'मैं गुलाम मोहिं बेचि गुसाईं'। वे परमात्मा के समक्ष अपने स्वाभिमान को मिटाकर कुत्ता तक बन जाते हैं– 'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं। गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचौ तित जाउं'।

भगवान की शरणागति : कबीर अपनी भक्ति के अंत में अपनी समस्त कमजोरियों को स्वीकार करते हुए अपनी समग्र शक्ति और सामर्थ्य को राम के समक्ष समर्पित कर उनके शरणागत हो जाते हैं। उनकी कविता में इस शरणागति के कई स्तर हैं। पहले स्तर पर वे अपनी विवशता का अनुभव करते हुए उसके साथ ही भगवान की शरण में चले जाते हैं– 'कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनिये देव मुरारी।' फिर वे राम के प्रति अनन्य भाव का प्रदर्शन करते हुए कहते हैं–'कहै कबीर सरनाईं आयो, आंन देव नहीं मानौ।' शरणागति के अगले चरण में कबीर अहं का विसर्जन कर मोह–माया के बंधनों से मुक्त हो जाते हैं– 'मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा। तेरा तुझको सौंपता, क्या लागै है मेरा।' अंत में वे परमात्मा के समक्ष पूर्ण आत्मसमर्पण कर मौन ग्रहण कर लेते हैं– 'तेरी गति तूं ही जांनै, कबीरा तो

टिप्पणी

सरनां।' भगवान की शरणागति में चले जाने के पश्चात भक्त को केवल उसी का सहारा रहता है। कबीर को अपने राम के रक्षत्व पर पूर्ण भरोसा है। वे कहते हैं– 'हम न मरैं मरिहै संसारा। हमको मिला जियावन हारा।'

2.2.3 कबीरदास का सामाजिक पक्ष

कबीरदास एक ऐसे समय में सक्रिय थे जब भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। भारत के अलग–अलग संप्रदायों के बीच चली आ रही भेदभाव की खाई इस्लाम की राजनीतिक विजय के बाद और अधिक विकृत हो गयी थी। इस्लाम के आगमन के कारण धार्मिक अत्याचार का एक नया दौर आरंभ हुआ। सामाजिक हालात बिगड़ गये। आम इंसान चौराहे पर खड़ा होने के लिए मजबूर था। उसके पास धार्मिक स्तर पर इतने सारे विकल्प उपलब्ध हो गये कि वह अनिर्णय की स्थिति में पहुँच गया। किसी भी राह का चयन उसके लिए कठिन था। ढोंगी बाबा और मौलवियों ने भोले–भाले लोगों को अपने जाल में फँसाकर उनका जीना मुश्किल कर दिया। हिन्दू समाज का बहुत बड़ा हिस्सा वर्णाश्रम व्यवस्था की क्रूरता के साथ–साथ सत्ता पक्ष का उत्पीड़न सहने के लिए भी अभिशप्त था। व्यक्तिगत जीवन की बहुत सारी मुश्किलों में फँसा आम आदमी, चाहे वह जिस भी धर्म और पंथ का हो, धार्मिक कर्मकांडों और कुरीतियों के कुचक्र में घिरने के लिए मजबूर था। योगी, पंडित, दिगंबर, उदासी, मौलवी, शाक्त, सन्यासी, तांत्रिक सभी उसे अपने मार्ग की ओर आकर्षित करना चाहते थे। कबीर ने अपने एक पद में धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त इस अराजकता की ओर इस प्रकार संकेत किया है–

इक पढहिं पाठ, इक भ्रमै उदास, इक नगन निरंतर, रहै निवास।
इक जोग जुगति तन हुंहि खीन, से रांम नां संगि रहै न लीन।
इक हूँहि दीन एक देहीं दान, इक करै कलापी सुरापांन।
इक तंत–मंत औषध (प्र) वांन, इक सकल सिद्ध राषै अपांन।
इक तीरथ–व्रत करि काय जीति, ऐसे रांम–नांमसूँ करैं न प्रीति।
इक धोम ध्यूंटि तन होंहि स्याम, यूं मुकुति नहीं बिन रांमनाम।

ऐसे समय में कबीर ने अपनी कविता के द्वारा न केवल अपने समाज में फैली अनेकानेक कुरीतियों का साहसिक विरोध किया बल्कि निर्गुण राम की आराधना का सहज मार्ग भी बतलाया। भारतीय समाज में कबीर के द्वारा किये गये इस योगदान की चर्चा उन्हें बहुत अधिक महत्व नहीं देने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने इतिहास ग्रंथ में की। उनका कथन है– "उपासना के बाह्य स्वरूप का आग्रह करने वाले और कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लों दोनों को उन्होंने (कबीर ने) खरी–खरी सुनाई और राम–रहीम की एकता समझ कर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया। देशाचार और उपासनाविधि के कारण मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है उसे दूर करने का प्रयास उनकी वाणी बराबर करती रही। यद्यपि वे पढ़े–लिखे न थे पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य–चमत्कार–पूर्ण बातें निकलती थीं। इनकी उक्तियों में विरोध और असंभव का चमत्कार लोगों को बहुत अधिक आकर्षित करता था।"

टिप्पणी

कबीर के सामाजिक विचारों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

सामाजिक समानता के पक्षधर : भारत का मध्यकालीन समाज धर्म, संप्रदाय, जाति, अर्थ, भूगोल आदि कई आधारों पर विभाजित था। मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव की ऐसी दीवारें खड़ी कर दी गयीं थीं कि उसे तोड़कर सहज मनुष्यता की स्थापना लगभग नामुमकिन था। कबीर ने अपने गुरु रामानन्द की राह पर चलते हुए अपनी रचनाओं के माध्यम से जात–पात, रंग–रूप और जन्म–कर्म–आधारित तमाम भेदभावों को मिटाकर केवल मानवता आधारित समाज की स्थापना का प्रयास किया। शास्त्रीय ज्ञान की उपेक्षा और आंखिन देखी ज्ञान पर विश्वास, राम नाम का जप, सहज साधना की राह, श्रम का सहज स्वीकार, संप्रदायमुक्त मानस और सर्वोच्च मानवीय मूल्य के रूप में प्रेम की स्वीकृति ही इस समाज के निर्माण का आधार था। उन्होंने हर उस विचार, प्रथा, मान्यता और संस्कार का विरोध किया जो मनुष्य के बीच अलगाव का कारण बनता है। उन्होंने प्रत्येक इंसान में एक परमात्मा का दर्शन किया और लोगों से अहंकार का त्याग कर आपस में प्रेम से मिलकर रहने का संदेश दिया– 'साहेब हममें साहेब तुममें, जैसे प्राना बीज में। मत कर बन्दा गुमान दिलमें, खोज देख ले तन में।'

हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल : कबीर के समय की एक बड़ी समस्या भारत के दो बड़े धर्मावलम्बियों के बीच का संघर्ष था। उस वक्त हिन्दू जनसंख्या के लिहाज से भारत का सबसे बड़ा समुदाय था जबकि मुसलमानों के पास केन्द्रीय सत्ता थी। दोनों अपने–अपने धर्मों के प्रति आग्रही और दूसरे के प्रति विद्वेष की भावना से भरे हुए थे। कबीर के जीवन के विषय में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि उनका पालन–पोषण और व्यक्तित्व का निर्माण हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के मानने वालों के बीच हुआ था। उनके माता–पिता मुसलमान थे तो गुरु रामानन्द हिन्दू। उनकी संवेदना की निर्मिति इस्लाम से हुई थी तो विचारों का विकास हिन्दुत्व के दर्शन के भीतर। इस कारण कबीर इन दोनों धर्मों की शक्ति और सीमा से बहुत अच्छी तरह परिचित थे। कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकता स्थापना के लिए दो स्तरों पर प्रयास किया। पहले स्तर पर, उन्होंने इन दोनों धर्मों के भीतर विद्यमान धार्मिक विश्वासों का मेल कर अपने सिद्धांत का निर्माण किया। इस क्रम में उन्होंने इस्लाम के एकेश्वरवाद और हिन्दुओं के अद्वैतवाद का समन्वय कर अपने निर्गुण राम के स्वरूप का निर्धारण किया। इस्लाम को मानने वाले सूफियों के प्रेम तत्व और हिन्दुओं के ब्रह्म की सर्वव्यापकता के सिद्धांत का मेल कर अपने ईश्वर के उदार चरित्र का निर्धारण किया। दूसरे स्तर पर, कबीर ने इन दोनों धर्मों में विद्यमान कुरीतियों और पाखंडों का उद्घाटन कर उनके बीच एकता की स्थापना का प्रयास किया। हिन्दू धर्म की जाति व्यवस्था का इस्लाम की समानता के सिद्धांत से खंडन किया और बौद्धों की अहिंसा से इस्लाम की हिंसा का विरोध किया। कबीर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सतही एकता नहीं चाहते थे इसलिए उन्होंने समन्वय के साथ–साथ इन धर्मों में विद्यमान कमजोरियों के उद्घाटन में किसी प्रकार का संकोच न करते हुए कहा–

अरे इन दोहुन राह न पाई।
हिंदू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्याके पायन–तर सोवै यह देखो हिंदुआई।

टिप्पणी

मुसलमानके पीर–औलिया मुर्गा मुर्गी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहिमें करै सगाई।
हिंदुनकी हिंदुवाई देखी तुरकनकी तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई।

'कौन राह ह्वै जाई' कहकर कबीर दोनों धर्मों की सीमाओं की ओर संकेत करते हैं और इनमें निहित बुराइयों को त्यागकर इनके बीच एकता की स्थापना की राह बताते हैं। उन्होंने समाज के समक्ष मंदिर में बसने वाले राम और मस्जिद में बसने वाले अल्लाह को प्रत्येक स्त्री और पुरुष में खोजने का महान प्रस्ताव रखा। कबीर कहते हैं–

जो खोदाय मसजीद बसतु है और मुलुक केहि केरा।
तीरथ–मूरत राम–निवासी बाहर करे को हेरा।
पूरब दिसा हरीकौ वासा पच्छिम अलह मुकामा।
दिलमें खोज दिलहिमें खोजौ इहैं करीमा–रामा।
जेते औरत–मरद उपानी सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगड़ा अलह–रामका सो गुरु पीर हमारा।

वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति आक्रोश : भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही वर्णाश्रम की व्यवस्था रही है। इसके तहत समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह व्यवस्था जन्माधारित होती है। इसमें ब्राह्मण को श्रेष्ठ और ज्ञान का अधिकारी, क्षत्रिय को उसके बाद और सत्ता का अधिकारी, वैश्य को तीसरे स्थान पर और व्यापारिक गतिविधियों का कर्ताधर्ता और शूद्र को सबसे निचले पायदान पर और ऊपर के तीनों वर्णों के सेवक या दास के रूप में चिह्नित किया गया। इस व्यवस्था में निरंतर आ रही बुराइयों के कारण मध्यकाल में हिन्दू जनता का अधिकांश हिस्सा बेहद चिंतनीय और दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर था। कबीर ने इसको देखा भी था और भोगा भी था, इसलिए इनकी रचनाओं में वर्णाश्रम के प्रति जबरदस्त आक्रोश दिखाई देता है। उन्होंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर अपने सरल तर्कों द्वारा इसका विरोध किया। वर्णाश्रम के सिद्धांत के अनुसार भगवान ने यह व्यवस्था बनायी है कि ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुआ मनुष्य ब्राह्मण होगा। इसका प्रतिवाद करते हुए लगभग गाली के लहजे में कबीर कहते हैं– 'जो तू बामन बमनी जाया। आन बाट काहे नहिं आया।'

जातिप्रथा का विरोध : वर्णाश्रम व्यवस्था के भीतर पेशा आधारित विभाजन होने की वजह से भारतीय समाज में जातिव्यवस्था का जन्म हुआ। जाति व्यवस्था ने ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण में कुछ खास बदलाव नहीं किया लेकिन शेष दो वर्णों को हजारों जातियों में बाँट दिया। कबीर के समय में भारतीय समाज हजारों जातियों में विभाजित था। कबीर इसकी सैद्धांतिक कमजोरियों के साथ–साथ व्यावहारिक कुरूपता को भी देख रहे थे इसलिए साफ शब्दों में घोषित किया कि, "जात न पूछो साधकी, पूछ लीजिए ज्ञान मोल करो तरवारका, पड़ा रहन दो म्यान।" कबीर के लिए कर्म–श्रम–आधारित ज्ञान तलवार की तरह वास्तविक एवं उपयोगी और जन्म आधारित जाति म्यान की तरह निरर्थक एवं अनुपयोगी थी।

टिप्पणी

जातिप्रथा का एक अन्य स्याह पक्ष इस के आधार पर समाज में व्याप्त छूआछूत की भावना थी। इसके तहत ऊँची जाति के लोग अपने से नीची जाति के व्यक्तियों के हाथ का छूआ हुआ खाना नहीं खाते थे। इससे भी भयानक बात यह थी कि शूद्र जातियों की परछाई तक से शेष जातियों के लोग दूर भागते थे। इस वजह से भारत के शूद्र समाज को गाँव से बाहर रहना पड़ता था और मरे हुए जानवर तक का माँस खाना पड़ता था। कबीर ने इस अमानवीयता का विरोध करते हुए लिखा– 'एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा। एक जोति मैं सब उतपना, कौन बाम्हन कौन सूदा।'

धार्मिक कर्मकांडों का खंडन : दुनिया का हर धर्म कर्मकांडों के तामझाम के द्वारा ही प्रसारित और संचालित होता है। कर्मकांडों के बगैर किसी भी धर्म की कल्पना असंभव है। संभव है कि जिस समय किसी धर्म का जन्म हुआ हो उस समय उसके संचालन के लिए बनाये गये रीतिरिवाजों की भूमिका प्रगतिशील रही हो, लेकिन धीरे–धीरे उसमें जड़ता आती जाती है और वह प्रतिक्रियावादी हो जाता है। कबीर के समय में हिन्दू, इस्लाम, बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, योगी, नाथ सभी धर्मों में कर्मकांडों की प्रधानता थी और इनकी समाज में व्याप्ति इस कदर थी कि आम इंसान का जीना मुहाल हो गया था। कबीर ने पूर्वाग्रह मुक्त होकर इन धर्मों में विद्यमान कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया। हिन्दू धर्म का मुख्य कर्मकांड मूर्तिपूजा है। कबीर ने उसका मखौल उड़ाते हुए लिखा– 'पाहन पूजे हरि मिलें तो मैं पूजूँ पहार। तातै वह चक्की भली पीस खाये संसार।' इस्लाम में पाँचों वक्त के नमाज और अजान की केन्द्रीय महत्ता है। कबीर ने इस पर व्यंग्य करते हुए लिखा– 'कांकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय। ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, बहिरा हुआ खुदाय।' कबीर योग मार्ग से प्रभावित थे लेकिन योगियों में विद्यमान दिखावे की भावना का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा– 'मन ना रँगाये रँगाये जोगी कपड़ा। आसन मारि मंदिर में बैठ, ब्रह्म–छाँड़ि पूजन लागे पथरा। कनवा फड़ाय जटवा बढ़ौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा।' इसके अलावा कबीर ने हिन्दू और इस्लाम धर्म के बहुत सारे कर्मकांडों का जीवन के छोटे–छोटे उदाहरणों और उनसे निर्मित मासूम तर्कों से इस प्रकार खंडन किया जिससे अधिकांश अशिक्षित जनता की चेतना विकसित हुई। कबीर के सामाजिक विचार आज भी हमारे लिए उपयोगी हैं क्योंकि मध्यकाल की बहुत सारी बुराइयाँ हमारे समय और समाज में भी व्याप्त हैं।

नारी के प्रति पिछड़ी दृष्टि : समाज के विभिन्न वर्गों की पीड़ा को महसूसने और उस पर मरहम लगाने वाले कबीर नारी के जीवन और उसकी यातना को समझ पाने में सक्षम नहीं हो सके। यह जितनी उनके समय की सीमा थी उससे कहीं ज्यादा स्वयं कबीर की। उन्होंने अनेक स्थलों पर नारी की प्रत्यक्ष–परोक्ष आलोचना की। पारम्परिक रूप से नारी को माया का एक रूप मानने और उससे आम जन को सचेत करने की प्रथा रही है। कबीर ने इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए नारी को 'नरक का कुंड', 'बुद्धि का हरण करने वाली' और नागिन एवं धतूरे के समान जहरीली कहा। वैसे कबीर जिस नारी की आलोचना करते हैं वह मायारूपी नारी है जो मनुष्यों को अपने जाल में फँसाकर ईश्वरीय भक्ति से दूर ले जाती है– 'माया महा ठगिनी हम जानी'। परंतु माया के रूप में नारी की आलोचना करने के दौरान कबीर का स्वर ऐसा होता है कि उसकी परिधि में आम स्त्री भी चली आती है। कई स्थलों पर तो कबीर घर की स्त्री को भी उतना ही हानिकारक मानते हैं जितना

टिप्पणी

मायारूपी नारी को। एक साखी में वे लिखते हैं– 'कबीर नारि पराई आपणीं, भुगत्या नरकहि जाइ। आगि आगि सब एक है, तामैं हाथ न बाहि। 'कबीर के लिए सती होने वाली नारी आदर्श है। कबीर के लिए सती परम समर्पण का प्रतीक है। भक्ति के चरम पर पहुँच कर कबीर नारी हो जाते हैं और 'दुलहिन गावहूँ मंगलाचार' जैसी भावुक पंक्तियों का सृजन करते हैं। यह संभव है कि स्त्री की सामाजिक स्थिति को लेकर कबीर के मन में दुविधा की स्थिति हो लेकिन समाज की अन्य कुरीतियों का स्पष्ट विरोध करने वाले कबीर से स्त्री के दर्द की स्पष्ट अभिव्यक्ति की अपेक्षा करना अनुचित नहीं है।

2.3 सूरदास : सामान्य परिचय

सूरदास हिन्दी की सगुण भक्ति धारा की कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वाधिक प्रसिद्ध और प्रतिनिधि कवि हैं। ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य और उनसे उम्र में केवल दस दिन छोटे थे। तमाम अनुसंधानों के पश्चात सूरदास का जन्मकाल 1478 ई. और देहावसान 1583 ई. को नियत गया है। उनकी मृत्यु पर गोस्वामी विठ्ठलनाथ ने दुखी होकर लिखा था : 'पुष्टिमारग को जहाज जात है सो जाको कछु लेना होय सो लेउ'। 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' के अनुसार इनका जन्म–स्थान रुनकता या रेणुका–क्षेत्र है लेकिन ये मथुरा और वृन्दावन के बीच स्थित गऊघाट नामक जगह पर रहते थे और भजन गाया करते थे। वैसे हरिरायजी के 'भावप्रकाश' में इनका जन्म–स्थान दिल्ली से चार कोस दूर सीही नामक ग्राम को बताया गया है। वल्लभाचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने के पहले ही इनकी काफी प्रसिद्धि हो गयी थी। वल्लभाचार्य से इनकी मुलाकात 1509–10 ई. में हुई थी। ऐसी जनश्रुति है कि वल्लभाचार्य से मुलाकात के पहले सूरदास केवल भगवान की दास्य–भक्ति में मगन रहते थे और विनय के पद लिखते थे, उन्हें भगवान की लीला का कोई ज्ञान नहीं था। वल्लभाचार्य ने उन्हें भगवान के नाम का स्मरण कराया और 'भागवत' के 'दशमस्कंध' की अनुक्रमणिका सुनाकर उन्हें भगवत–लीला का वर्णन करने का आदेश दिया। आगे चलकर जिस 'वात्सल्य–वर्णन' और 'भ्रमरगीत–सार' के लिए सूरदास की प्रसिद्धि हुई वह इस लीला–वर्णन का ही एक अंग है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि सूरदास जन्म से अंधे थे। हरिरायजी के 'भावप्रकाश' तथा श्रीनाथ भट्ट की 'संस्कृतवार्त्ता मणिमाला' में भी सूरदास को जन्मांध बताया गया है। ऐसा भी कहा जाता है कि युवावस्था में किसी तरुणी के प्रेम में पड़कर इन्होंने अपनी आंखें फुड़वा ली थी। सूरदास के साहित्य में प्रस्तुत प्राकृतिक शोभा और रूप–वर्णन देखकर इस बात पर सहज विश्वास करना कठिन है कि वे जन्मांध थे। संभव है कि वे बाद में अंधे हुए हों या आत्मग्लानि की अवस्था में अपनी हीनता को अतिरंजित करने के क्रम में बार–बार अपने आपको अंधा कहते हों। हजारी प्रसाद द्विवेदी की स्पष्ट मान्यता है कि 'सूरदास का साहित्य कभी जन्मांध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता।'

सूरदास की कुल तीन प्रमाणिक रचनाओं का पता चलता है– सूरसागर, सूरसारावली और साहित्यलहरी। इसमें भी सर्वाधिक प्रामाणिक 'सूरसागर' ही है। वैसे कुछ विद्वानों ने उनकी पच्चीस किताबों का नामोल्लेख किया है। सूरदास की प्रतिष्ठा का आधार–ग्रंथ 'सूरसागर' है। इसकी रचना 'भागवत' की पद्धति पर द्वादश स्कंधों में हुई है। 'भागवत' की

अपनी प्रगति जांचिए

1. कबीर किस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं?
   (i) ज्ञानाश्रयी निर्गुण काव्य धारा
   (ii) प्रेमाश्रयी निर्गुण काव्य धारा
   (iii) कृष्णभक्ति सगुण काव्य धारा
   (iv) रामभक्ति सगुण काव्य धारा

टिप्पणी

पद्धति का अनुसरण करने के कारण कई विद्वान सूरसागर को उसका अनुवाद मान लेने की भूल कर बैठते हैं जबकि 'सूरसागर' में सूर के पदों का क्रम स्वतंत्र है। उन्होंने इसमें कृष्ण के जीवन के उन्हीं अंशों को अपने पदों का विषय बनाया है जिसने उनकी अंतरात्मा के तारों को झंकृत किया है। इसी वजह से 'सूरसागर' में कृष्ण के शैशव और कैशोर वय की विविध लीलाओं और उनके लोकरंजक रूप का ही दर्शन होता है। वृंदावन के कान्हा ने सूरदास के मन को इस कदर मोहा है कि द्वारका का राजा और महाभारत का नायक कृष्ण उनके 'सूरसागर' से बाहर ही हो गया है।

'सूरसारावली' कोई मौलिक ग्रंथ नहीं है। इसे 'सूरसागर' का सूचीपत्र भी कह सकते हैं।

'साहित्यलहरी' सूरदास के सुप्रसिद्ध दृष्टकूट पदों का संग्रह है। यह एक प्रकार का पहेली काव्य है। इसमें अर्थगोपन–शैली में राधा–कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है और इसके साथ ही इसमें अलंकारों का निरूपण भी किया गया है।

2.3.1 सूरदास–पाठ्यांश

आपके पाठ्यक्रम में सूरदास के कुल पाँच पदों को शामिल किया गया है जिनमें से पहले दो उनकी भक्ति–भावना से संबंधित हैं और बाकी के तीन पद उनकी वात्सल्य–भावना से। सूरदास के जीवन का आरंभिक हिस्सा कृष्ण की दास्य भक्ति में गुजरा। वल्लभाचार्य से मुलाकात के बाद वे अपने इष्टदेव कृष्ण की लीला की ओर उन्मुख हुए। सूरदास द्वारा कृष्ण के बाल्यजीवन पर रचे पद अपनी सजीवता और बाल्य जीवन के सूक्ष्म एवं मनोहर चित्रण के लिए भारतीय साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

1. *अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल*
   काम–क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
   महामोह के नूपुर बाजत, निंदा–सब्द–रसाल।
   भ्रम–भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।
   तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
   माया को कटि फेटा बाँध्यौ, लोभ–तिलक दियौ भाल।
   कोटिक कला काछि दिखराई, जल–थल सुधि नहिं काल।
   सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल।

शब्दार्थ : **गुपाल** = गोपाल, **पहिरि** = पहनकर, **माल** = माला, **नूपुर** = घुंघुरु, **भोयौ** = पखावज पर लगाया जाने वाला वह आटा जिसके लगाने से ध्वनि में ठनक उत्पन्न होती है, **पखावज** = ढोलक की तरह का एक वाद्ययंत्र, **तृष्ना** = तृष्णा, चाहत, **घट** = शरीर, **नाना** = अनेक, **बिधि** = तरीका, **कटि** = कमर, **फेटा** = वस्त्र, **भाल** = ललाट, **कोटिक** = करोड़ों, **नँदलाल** = नंद के पुत्र अर्थात कृष्ण।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ हिन्दी की सगुण भक्ति धारा के प्रमुख कवि सूरदास की रचना 'सूरसागर' से ली गयी है। सूरदास ने आरम्भिक जीवन में कृष्ण की दास्य भक्ति से संबंधित

टिप्पणी

अनेक श्रेष्ठ पदों की रचना की थी। सूरदास वृंदावन बिहारी कृष्ण के भक्त हैं और उनके प्रति अनन्य निष्ठा रखते हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में सूरदास माया के वश में होकर असह्य सांसारिक कष्टों को भोगने की अपनी पीड़ा का वर्णन करते हैं और नंदलाल से इन दुखों को दूर करने की प्रार्थना करते हैं।

व्याख्या : महाकवि सूरदास इन पंक्तियों में कह रहे हैं कि हे गोपाल माया के वशीभूत होकर अबतक मैं अपने जीवन में बहुत नाच चुका, अर्थात मैंने अपना बहुत सारा समय सांसारिक विषय–वासनाओं में बर्बाद कर दिया। नृत्य का रूपक रचते हुए सूरदास आगे कह रहे हैं कि मैंने काम और क्रोध का वस्त्र धारण कर रखा है और गले में विषय–वासनाओं की माला पहन रखी है। मेरे पैरों में महामोह के नूपुर बंधे हैं जिनसे चलने पर निन्दा का रसीला शब्द निकलता है। माया से भ्रमित होने के कारण ये शब्द बेहद आनन्दप्रद जान पड़ते हैं। मेरा मन पखावज की तरह हो गया है जिस पर भ्रम रूपी भोयन लगाया गया है और इस कारण उस पखावज से मेरे शरीर में अनेक प्रकार की तालों वाला तृष्णा रूपी नाद उत्पन्न होता है, जिस पर मैं असंगत या बेमेल गति से नाचता रहा हूँ। मैंने अपनी कमर में माया रूपी फेंटा बाँध लिया है और ललाट पर लोभ का तिलक लगा रखा है। इस प्रकार माया के वश में होकर मैंने जल तथा थल में न जाने कितने समय से अलग–अलग प्राणियों के करोड़ों रूप धारण कर बहुरूपिये के समान कितनी कलाएँ दिखाई हैं। तात्पर्य यह कि माया के जाल में फँस कर मैं जन्म–जन्मांतर से इस संसार में भटक रहा हूँ। अंत में सूरदास कहते हैं कि हे मेरे नंदलाल मेरी इस पीड़ा को समझिये और मेरे इस नृत्य के कौशल प्रदर्शन पर प्रसन्न होकर ही सही पुरस्कार स्वरूप मेरी सारी अज्ञानता दूर कर मुझे माया से मुक्त कर जन्म–मरण के बँधन से आजाद कर दीजिए।

विशेष : इस पद में सांगरूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

यहाँ नाचने का तात्पर्य जन्म–मरण के बंधन में फँसा होना है। भारतीय साधना पद्धति में पुनर्जन्म की अवधारणा विद्यमान है। इसके अनुसार प्रत्येक जीव अपने कर्मों के अनुसार अगला जन्म लेता है। इस दौरान जब वह मनुष्य योनि में जन्म लेता है तब उसके पास एक अवसर होता है कि वह भगवान की भक्ति के द्वारा उसकी कृपा पाकर इस जन्म–मरण के बंधन से आजाद हो जाये और ईश्वर में मिल जाये। यदि वह यह मौका चूक जाता है तो उसे फिर चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ता है। सूरदास अपनी इसी भटकन की पीड़ा को इस पद में अभिव्यक्त कर रहे हैं।

2. *हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।*
   समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।
   इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ।
   सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।
   एक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ।
   जब मिल गए तब एक बरन ह्वै, गंगा नाम परौ।

तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिल बिगरौ।

कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ।

टिप्पणी

शब्दार्थ : औगुन = अवगुण, दोष, **समदरसी** = सबको एक समान भाव से देखने वाला, **नार** = नाला, **बरन** = वर्ण, **प्रन** = प्रण, कसम।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ हिन्दी की सगुण भक्ति धारा के प्रमुख कवि सूरदास की रचना 'सूरसागर' से ली गयी है। सूरदास ने आरम्भिक जीवन में कृष्ण की दास्य भक्ति से संबंधित अनेक श्रेष्ठ पदों की रचना की थी। सूरदास वृंदावन बिहारी कृष्ण के भक्त हैं और उनके प्रति अनन्य निष्ठा रखते हैं।

प्रसंग : इस पद में सूरदास भगवान के समदर्शी चरित्र का चित्रण करते हैं। भगवान की यह विशेषता है कि अपनी शरण में आये हर मनुष्य की मदद करते हैं, चाहे वह पापी हो या पुण्यात्मा। सूरदास अपने अवगुणों का बखान करते हुए उनसे मुक्ति की माँग करते हैं।

व्याख्या : सूरदास कह रहे हैं कि हे मेरे प्रभु, मेरे अवगुणों को अपने चित में धारण मत कीजिए अर्थात उसपर आप ध्यान मत दीजिए। आपको तो लोग समदर्शी कहते हैं, आप तो सबको समान भाव से देखने वाले हैं तो आप मेरे अवगुणों को अनदेखा करते हुए मुझे इस भवसागर से पार कर दीजिए। जिस प्रकार एक लोहा पूजा में रखा रहता है और दूसरा किसी बधिक या कसाई के घर में रहता है जिससे वह जानवरों का वध करता है लेकिन इस अंतर को पारस पत्थर नहीं जानता और दोनों को ही अपने स्पर्श से सोना बना देता है, उसी प्रकार आप हमारे अवगुणों को अनदेखा कर मुझे इस भवसागर से मुक्त कर दीजिए। कोई एक नदी है जिसका जल स्वच्छ है और कोई एक नाला है जिसका जल गंदगी से भरा है, लेकिन जब ये दोनों पवित्र गंगा नदी में मिल जाते हैं तब उनके जल को अलग करना नामुमकिन है और उन दोनों के जल को गंगा–जल ही कहा जाता है। तब प्रभु यदि आप मुझे अपने आप में मिला लेंगे तो मेरे सारे अवगुण अपने आप ही समाप्त हो जायेंगे। अंत में सूरदास कहते हैं कि यह शरीर माया है और जीव को ब्रह्म कहा जाता है। ब्रह्म होने की वजह से जीव में तो कोई दोष होता नहीं, वह तो शरीर रूपी माया के मिलने से तमाम दोषों से युक्त हो जाता है, तो प्रभु मेरे अवगुणों के लिए मैं कहाँ जिम्मेदार हुआ। तब हे प्रभु उपर्युक्त न्याय के अनुसार (पारस पत्थर और गंगा नदी के न्याय के अनुसार) मुझे आधार देते हुए मेरे साथ न्याय कीजिए और मुझे शुद्ध कीजिए या नहीं तो आपकी समदर्शिता तथा पतित पावनता का प्रण टला जाता है अर्थात सबको समान भाव से देखने वाला और पतितों को भी पवित्र करने वाला की आपको दी गयी उपाधि खतरे में पड़ जायेगी।

विशेष : भवसागर : भक्त–कवियों ने संसार को भवसागर की उपाधि दी है। उनका मानना है कि जो मनुष्य अच्छे काम करता है और भगवान की सेवा में लगा रहता है, भगवान उस पर प्रसन्न होकर उसे इस भवसागर के पार लगा देते हैं। मतलब जन्म–मरण के बंधन से मुक्त कर देते हैं।

पारस : यह एक पत्थर होता है जिसके विषय में माना जाता है कि यदि इससे लोहे नामक धातु का स्पर्श हो जाये तो वह लोहा सोने में बदल जाता है। इसकी सत्यता की

टिप्पणी

पुष्टि नहीं हुई है लेकिन हिन्दी साहित्य में कवि–समय के रूप में इसका बहुत अधिक प्रयोग हुआ है।

गंगा–जल : गंगा भारतीयों के लिए एक पवित्र नदी है जिसके विषय में यह मान्यता है कि इसमें केवल एक बार स्नान कर लेने से भी मनुष्य के समस्त पाप धुल जाते हैं। गंगा के जल की विशेषता यह है कि इसे यदि किसी पात्र में वर्षों एकत्रित करके रखा जाये तब भी उसमें कीड़े नहीं लगते, संभवतः इसी कारण गंगा–जल को काफी पवित्र माना गया है। भारतीय धर्मों में ऐसा कहा गया है कि यदि किसी मरते हुए आदमी के मुँह में गंगा–जल डाल दिया जाये तो वह स्वर्ग चला जाता है।

3. *जसोदा हरि पालनै झुलावै।*
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ–सोइ कछू गावै।
मेरे लाल कौं आउ निदँरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहै नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँक पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि, करि करि सैन बतावै।
इहिं अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर–मुनि दुरलभ, सो नँद भामिनि पावै।

शब्दार्थ : हरि = भगवान विष्णु (यहाँ कृष्ण से तात्पर्य है), **पालनै** = पालना, वह झूला जिसमें बच्चों को झुलाया जाता है, **हलरावै** = हिलाना, **दुलराइ** = दुलारना, **मल्हावै** = मल्हाना, चुमकारना, **बेगहिं** = तीव्रता के साथ, **मूँदना** = बंद करना, **अधर** = होंठ, **सैन** = इशारा, **भामिनी** = पत्नी।

सन्दर्भ : भारतीय साहित्य में सूरदास का वात्सल्य वर्णन अद्वितीय है। उन्होंने कृष्ण के बाल्य जीवन के इतने विशिष्ट और मनमोहक चित्र खींचे हैं कि सहज ही यह विश्वास कर पाना कठिन हो जाता है कि वे दोनों आँखों के अंधे थे। प्रस्तुत पद 'सूरसागर' के वात्सल्य–वर्णन का ही एक अंश है।

प्रसंगः इस पद में शिशु कृष्ण को पालने में सुला रहीं यशोदा का सजीव और गतिशील बिम्बात्मक चित्रण है। माँ जब बच्चे को सुला रही होती है तब उसके लिए कुछ गाती है। इस क्रम में यदि वह गीत की पंक्ति को भूल जाती है तो यूँ ही कुछ गाने लगती है ताकि शिशु की नींद में बाधा न पड़े। प्रस्तुत पद में इस मनोभाव का बहुत ही मार्मिक चित्रण हुआ है।

व्याख्या : यशोदा हरि को पालने में झुला रही हैं, मतलब यह कि यशोदा बालक कृष्ण को पालने में झुला रही हैं। कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाता है इसलिए सूरदास ने इस पद में उन्हें हरि शब्द से संबोधित किया है। यशोदा उन्हें हिलाती हैं, दुलारती हुई मल्हारती हैं और जैसा–तैसा कुछ गा रही हैं। बच्चे को सुलाते हुए माँ को यदि कोई गीत न याद हो तब भी जो भी मन में आता है वह गाने लगती हैं, माँ के इसी सूक्ष्म मनोभाव की व्यंजना पिछली पंक्ति में की गयी है। यशोदा गाती हुई कहती हैं कि निदँरिया अर्थात निंदिया, तुम

टिप्पणी

मेरे लाल के पास आओ, तुम क्यों नहीं आकर इसे सुलाती हो। तुम तीव्र चाल में चलकर क्यों नहीं आती हो, तुम्हें कान्हा (कृष्ण को प्यार से इस नाम से बुलाया जाता है) बुला रहा है। सूरदास कह रहे हैं कि हरि कभी अपनी पलकों को बंद कर लेते हैं और कभी अपने होंठों को फड़काने लगते हैं। उन्हें सोता हुआ जानकर यशोदा चुप हो जाती हैं और दूसरे लोगों से इशारों में बातें करती हैं। इसी बीच हरि व्याकुल होकर उठ जाते हैं और फिर उन्हें सुलाने के लिए यशोदा मधुर गीत गाने लगती हैं। सूरदासजी कहते हैं कि जो सुख देवता और मुनियों के लिए भी दुर्लभ है उसे नंद की पत्नी अर्थात यशोदा प्राप्त कर रही हैं।

विशेष : इसमें माता–पुत्र के घनिष्ठ संबंधों की सुंदर व्यंजना है। बालकों के सोने के समय की चेष्टाओं और उस पर माँ की होने वाली प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म चित्रण इस पद में किया गया है।

4. *किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।*
मनिनय कनक नंद कैं आँगन, बिंब पकरिबै, धावत।
कबहु निरखि हरी आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि–पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक–भूमि पर कर–पग–छाया, यह उपमा इक राजति।
करि–करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति।
बाल–दसा–सुख निरखि जसोदा, पुनि–पुनि नन्द बुलावत।
अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावत।

शब्दार्थ : कान्ह = कृष्ण, **घुटुरुवनि** = घुटनों के सहारे से, **मनिमय** = मणि से युक्त, **कनक** = सोना, **धावत** = दौड़ना, **द्वै** = दो, **दतियाँ** = दाँत, **तिहिं** = उसे, **कर** = हाथ, **बसुधा** = पृथ्वी, **निरखि** = देखकर, **पकरन** = पकड़ना, **दतियाँ** = दाँत, **पग** = पैर, **बसुधा** = पृथ्वी।

सन्दर्भ : भारतीय साहित्य में सूरदास का वात्सल्य वर्णन अद्वितीय है। उन्होंने कृष्ण के बाल्य जीवन के इतने विशिष्ट और मनमोहक चित्र खींचे हैं कि सहज ही यह विश्वास कर पाना कठिन हो जाता है कि वे दोनों आँखों के अंधे थे। प्रस्तुत पद 'सूरसागर' के वात्सल्य–वर्णन का ही एक अंश है।

प्रसंग : कृष्ण के पिता नन्द का आँगन मणियों से निर्मित है जिसमें किसी व्यक्ति का चेहरा स्पष्ट दिखता है। कृष्ण अब घुटनों के बल चलने लगे हैं। नन्द के आँगन में चलते हुए उनका बिम्ब आँगन के फर्श पर बन रहा है और वे उसे पकड़ने की कोशिश करते हैं। इस दौरान जो घटना घटती है उसी का गतिशील चित्र सूरदास इस पद में प्रस्तुत कर रहे हैं।

व्याख्या : बालक कृष्ण किलकारी मारते हुए घुटनों के बल आ रहे हैं। पिता नन्द के मणियों से युक्त स्वर्णिम आँगन में कृष्ण का जो प्रतिबिम्ब निर्मित हो रहा है उसे पकड़ने के लिए वे दौड़ रहे हैं। कभी कृष्ण अपनी ही छवि को देखकर अपने हाथों से उसे पकड़ना चाह रहे हैं। फिर अपनी इस गतिविधि पर किलक कर हँस पड़ते हैं जिससे उनके दूध के निकले हुए दो दाँत सुशोभित होने लगते हैं। कृष्ण बार–बार इस कार्य को करते हैं और उसे

टिप्पणी

देखकर आनन्दित होते हैं। सूरदास कहते हैं कि आँगन की स्वर्ण–भूमि पर उनके हाथ और पैरों की छाया देखकर यही उपमा सुशोभित होती है मानो पृथ्वी प्रत्येक चरण और हाथ को प्रतिमा बनाकर उनके लिए कमलासन सजा रही है। कृष्ण के हाथ और पाँव की छाया आँगन के मणिमय फर्श पर इस प्रकार प्रतिबिम्बित हो रही है कि उसको देखकर यह लगता है कि पृथ्वी ने अपने हाथों और पैरों के सहारे से कृष्ण के बैठने के लिए कमल का आसन बना दिया है। कृष्ण के बालपन की इन मनोरम घटनाओं को देखकर यशोदा अत्यंत आनन्दित और सुखी होती हैं और इसे दिखाने के लिए बार–बार नन्द को बुलाती हैं। अंत में सूरदास कहते हैं कि यशोदा 'सूर' के प्रभु को अपने आँचल के तले ढँक कर दूध पिलाती हैं।

विशेष : कनक–भूमि पर.........बैठकी साजति– इस पंक्ति में उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

बालक कृष्ण की गतिविधियों का बेहद सूक्ष्म चित्रण किया गया है जिसे देखकर यह नहीं लगता है कि सूरदास अंधे थे।

5. *मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी?*
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं, ह्वै है लाँबी–मोटी।
काढ़त–गुहत न्हवावत जैहै नागिनि सी भुइँ लोटी।
काचौ दूध पियावति पचि–पचि, देति न माखन–रोटी।
सूरज चिरजीवौ दोउ भैया, हरि–हलधर की जोटी।

शब्दार्थ : किती = कितनी, **मोहिं** = मुझे, **अजहूँ** = आज भी, **बल की बेनी** = बलराम की चोटी, **काढ़ते** = काढ़ना, सँवारना, **गुहत** = गुहना, बालों को सजाकर उसकी चोटी बनाना, **भुइँ** = जमीन पर, **काचौ** = कच्चा, **चिरजीवौ** = चिरंजीवी, लम्बा जीवन, **हलधर** = हल को धारण करने वाले बलराम।

सन्दर्भ : भारतीय साहित्य में सूरदास का वात्सल्य वर्णन अद्वितीय है। उन्होंने कृष्ण के बाल्य जीवन के इतने विशिष्ट और मनमोहक चित्र खींचे हैं कि सहज ही यह विश्वास कर पाना कठिन हो जाता है कि वे दोनों आँखों के अंधे थे। प्रस्तुत पद 'सूरसागर' के वात्सल्य–वर्णन का ही एक अंश है।

प्रसंग : यशोदा बालक कृष्ण को दूध पिलाने के लिए उनको बहलाते हुए कहती हैं कि यदि तुम यह दूध पिओगे तो तुम्हारी चोटी भी तुम्हारे बड़े भाई बलराम की तरह लम्बी, मोटी और बड़ी हो जायेगी। कृष्ण अपनी चोटी को पकड़कर दूध पीने को तैयार हो जाते हैं और थोड़ा दूध पी लेने के बाद अपनी माँ यशोदा से जो–जो शिकायतें करते हैं उसी का वर्णन सूरदास इन पंक्तियों में कर रहे हैं।

व्याख्या : कृष्ण यशोदा से कहते हैं कि मेरी मैया मेरी यह चोटी कब बढ़ेगी? मुझे तो दूध पीते हुए न जाने कितना समय हो गया है लेकिन आज भी यह उतनी ही छोटी है जितनी पहले थी। तुम तो मुझसे कहती थी कि दूध पीने से यह बलराम की चोटी के समान लम्बी

टिप्पणी

और मोटी हो जायेगी, और काढ़ते या सँवारते, गुहते या चोटी बनाते और नहाते समय नागीन की तरह जमीन पर लोटने लगेगी। इसी लोभ में तुम मुझे बार–बार कच्चा दूध पिलाती हो और मक्खन–रोटी भी नहीं देती हो। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण और बलराम दोनों भाइयों की जोड़ी चिरंजीवी हो।

विशेष : बाल–मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण।

2.3.2 सूरदास का वात्सल्य–वर्णन

वात्सल्य शब्द 'वत्स' धातु से व्युत्पन्न हुआ है और यह अपने संतान के प्रति माता–पिता की रति का पर्याय है। किसी बालक–बालिका के बालकोचित स्वभाव और चेष्टाओं से अभिभूत उसके माता–पिता या किसी भी अन्य व्यक्ति के ह्रदय में उमगने वाले नैसर्गिक स्नेह को वात्सल्य कहा जाता है। इसकी गणना मनुष्य के प्रधान एवं मौलिक मनोभावों में होती है। रति के बाद वात्सल्य ही सर्वाधिक आदिम और सर्वत्र पाया जाने वाला मनोभाव है। प्रेम में जिस प्रकार की घनिष्ठता, लगाव, बलिदान, समर्पण, आत्मीयता, अंतरंगता और उदात्तता की उपलब्धि होती है उसकी पराकाष्ठा वात्सल्य में प्रकट होती है। इसीलिए संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने देवादिविषयक रति को केवल 'भाव' ठहराया है और वात्सल्य को 'रति' माना है। भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में जिन आठ रसों की कल्पना की है उसमें वात्सल्य नहीं है लेकिन बाद के कुछ आचार्यों ने 'वत्सल' नामक एक रस की परिकल्पना की है जिसका स्थायी भाव वत्सलता या वात्सल्य को माना है। आचार्य विश्वनाथ ने इस रस को विस्तार में बताते हुए लिखा है कि, "बाल–सुलभ चेष्टाओं के साथ–साथ उसकी विद्या, शौर्य, दया आदि विशेषताएँ उद्दीपन हैं। आलिंगन, अंगसंस्पर्श, सिर का चूमना, देखना, रोमांच, आनन्दाश्रु आदि अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व, आवेग, अनिष्ट की आशंका आदि संचारी माने जाते हैं। इस रस का वर्ण पद्म–गर्भ की छवि जैसा और देवता लोकमाता या जगदम्बा है।"

भारत में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार की व्यवस्था रही है जिसके केंद्र में बालक–बालिका होते हैं, इस कारण भारतीय जीवन में वात्सल्य की बेहद सहज और स्वाभाविक उपस्थिति रही है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि भारत का आदिकाव्य कहे जाने वाले वाल्मीकि के 'रामायण' के बालकांड के अठारहवें सर्ग में ही राम और उनके भाइयों की बाल–लीलाओं का मनोरम चित्रण हुआ है। अश्वघोष ने 'बुद्धचरित' में गौतम बुद्ध के बाल्यकाल का वर्णन किया है तो कालिदास ने 'रघुवंशम' के तृतीय सर्ग में रघु की बाल–लीलाओं और उनके पिता दिलीप के वात्सल्य का मोहक वर्णन किया है। भास के बालचरित नाटक और भवभूति के 'उत्तररामचरित' में भी वात्सल्य की सुंदर प्रस्तुति हुई है। संस्कृत साहित्य में बालकों के साथ–साथ बालिकाओं के प्रति व्यक्त वात्सल्य भाव का दुर्लभ चित्रण भी देखने को मिलता है। कालिदास ने 'कुमारसंभवम' के प्रथम सर्ग में बालिका पार्वती के अंग–सौंदर्य और बाल–क्रीड़ाओं का बहुत ही मनोहर वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अपभ्रंश के कवि पुष्पदंत ने 'उत्तरपुराण' में नारायण की बाललीला का मनमोहक वर्णन किया है।

भारतीय कविता में वाल्मीकि से शुरु हुई वात्सल्य–वर्णन की समृद्ध परंपरा को आत्मसात कर सूरदास ने हिन्दी में न केवल इसका सूत्रपात किया बल्कि सफलता के

टिप्पणी

शिखर पर प्रतिष्ठित कर दिया। जहाँ उनके पूर्ववर्ती कवियों ने वात्सल्य के केवल संयोग पक्ष का वर्णन किया था वहीं सूरदास ने उसके वियोग पक्ष की भी व्यंजना कर उसके रसत्व को पूर्णतया स्थापित कर दिया। सूरदास वात्सल्य–वर्णन के सम्राट कहे जाते हैं। हिन्दी ही नहीं भारतीय साहित्य में सूरदास जैसा वात्सल्य का कोई गायक नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके विषय में लिखा है कि, "जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्यजीवन का चित्रण इन्होंने किया है, उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया। शैशव से लेकर कौमार अवस्था तक के क्रम से लगे हुए न जाने कितने चित्र मौजूद हैं। उनमें केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है, कवि ने बालकों की अन्तः प्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और अनेक बाल्यभावों की सुन्दर स्वाभाविक व्यंजना की है।"

सूरदास के पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियों ने बाल्य–लीला का वर्णन कथात्मक विकास के क्रम में केवल संबंध निर्वाह के रूप में किया है जबकि सूरदास ने कृष्ण की बाललीला का स्वतंत्र वर्णन किया है। उन्होंने कृष्ण के बाल्य–काल से संबंधित लगभग छः सौ पदों की रचना की है जिसमें बालक कृष्ण के जन्म से लेकर उनके मथुरा प्रवास तक की विभिन्न घटनाओं का चित्रण है। इनमें सर्वाधिक पद यशोदा के मनोभावों को केन्द्र में रखकर लिखे गये हैं। सूरदास जानते थे कि पुत्र के स्नेह का सम्पूर्ण संचयन मां के ह्रदय में ही होता है जो जरा सा अवसर पाकर ही छलक पड़ता है। मंगलविधान, रक्षण और आनंदानुभूति– प्रेम के ये तीनों विधायक तत्व वात्सल्य में अपनी उत्कर्षित अवस्था में होते हैं। यशोदा अपने कान्हा की प्रत्येक चाल पर आनंदित होती हैं, उसके सुख के लिए चारो पहर तत्पर और उसकी रक्षा के लिए सदैव चिंतित रहती हैं। वास्तव में कृष्ण की बाल–सुलभ चेष्टाओं का जैसा मनोमुग्धकारी चित्र 'सूरसागर' में उपलब्ध है वैसा हिन्दी ही नहीं विश्व–साहित्य में देखने को नहीं मिलता। सूर के वात्सल्य–वर्णन में मार्मिकता और विविधता के साथ–साथ रमणीयता और स्वाभाविकता भी विद्यमान है, इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था कि सूर के वात्सल्य वर्णन के सामने हिन्दी के अन्य कवियों की पंक्तियाँ उनकी जूठन सी जान पड़ती हैं। आगे हम सूरदास के वात्सल्य–वर्णन की विशेषताओं पर विस्तार से विचार करेंगे।

संयोग–वर्णन : कृष्ण के बाल्यकाल के दो स्पष्ट चरण हैं। पहला चरण यशोदा के साथ वृंदावन में बिताये पल हैं और दूसरा अक्रूर द्वारा उन्हें मथुरा ले जाने के बाद वियोगावस्था में बिताया गया कृष्ण और यशोदा का समय है। सूर ने इन दोनों परिस्थितियों की बहुत ही सुंदर व्यंजना की है, वैसे संयोगावस्था के चित्रण में उनका मन ज्यादा रमा है।

कृष्ण–जन्म के आनन्दोत्सव का चित्रण : बालक का जन्म भारतीय समाज में अद्भुत आनन्द का क्षण होता है। सूरदास के वात्सल्य वर्णन का आरंभ बालक कृष्ण के जन्म से ही होता है। बालक के जन्म का समाचार सुनकर लोग नन्द के घर बधाई देने पहुँच रहे हैं। उनके घर पर लोगों का ताँता लगा हुआ है। एक आ रहा है तो एक जा रहा है। माता यशोदा लोगों को बहुत प्रकार की वस्तुएँ देकर विदा कर रही हैं। नन्द के घर सौन्दर्य के सिंधु कृष्ण के जन्म का प्रभाव समस्त वृंदावन में हो रहा है। उसका आनन्द ब्रज की गलियों में फैल रहा है। सूरदास लिखते हैं–

टिप्पणी

सोभा सिंधु न अन्त रही री।
नंद–भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति वही री।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर–घर बँचति फिरति दही री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत विधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री।

बाल–कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन : सूरदास के लिए बालक कृष्ण भगवान की लीला का एक रूप हैं इसके बावजूद उन्होंने उनका बेहद सहज, सजीव, जीवंत और नैसर्गिक चित्र खींचा है। कहीं–कहीं उन्होंने बालक कृष्ण को परमात्मा का अवतार मान कर सीधे–सीधे ही उनके सौंदर्य का वर्णन किया है– 'हरिजू की बाल छवि कहौं बरनि। सकल सूख की सींव कोटि मनोज सोभा हरनि।' उनके कृष्ण अद्वितीय सौन्दर्य के पुंज हैं। उनके सौन्दर्य वर्णन में सूर ने भारत की सांस्कृतिक चेतना से निर्मित सौन्दर्य–बोध का भरपूर प्रयोग किया है जिससे वह हमारी सौन्दर्यानुभूति को गहराई में जाकर प्रभावित करता है। सूर ने अपने पदों में बालक कृष्ण की रूप–माधुरी का ऐसा बिम्बात्मक चित्र खींचा है जिसको देखकर कठोर–से–कठोर हृदय का व्यक्ति भी मोहित हुए बिना नहीं रह सकता। बालक कृष्ण के सौन्दर्य का आलंकारिक वर्णन करते हुए सूर लिखते हैं–

ललन हौं या छबि ऊपर वारी।
बाल गोपाल लागौ इन नैननि, रोग–बलाई तुम्हारी।
लट–लटकनि, मोहन, मसि बिंदु को तिलक भाल सुखकारी।
मनौ कमल–दल सावक पेखत, उड़त मधुप छवि न्यारी।
लोचन ललित, कपोलनि काजर, छवि उपजति अधिकारी।

वैसे उपर्युक्त पद के साथ–साथ अन्य तमाम पदों में सूरदास कृष्ण के सौन्दर्य को यशोदा की आँखों से निरखते हैं–भक्त की आँखों से नहीं। और जहाँ–जहाँ वे ऐसा करते हैं वहाँ–वहाँ बालक कृष्ण के नैसर्गिक सौन्दर्य का वर्णन पाठकों के हृदय में बालक मात्र के प्रति आकर्षण पैदा कर पाने में सफल होता है।

बालक कृष्ण की ललित क्रीड़ाओं और चेष्टाओं का वर्णन : किसी भी बालक–बालिका की सामान्य क्रियायें और मुद्रायें भी हमारा मन मोह लेती हैं तब ईश्वर के अवतार कृष्ण की अदाओं के क्या कहने! सूरदास ने अंधी आँखों के बावजूद कल्पना की उड़ान से बालक कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं और चेष्टाओं का ऐसा मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है कि उससे उनकी सूक्ष्म निरीक्षण क्षमता, बाल स्वभाव की सच्ची पहचान और नवीन प्रसंगों की उद्भावना की उनकी शक्ति का पता चलता है। बालक कृष्ण के घुटनों चलने, मक्खन खाने, तोतली वाणी में बोलने, माँ को पुकारते हुए उनके पीछे–पीछे दौड़ने, मणिमय आँगन में अपने ही प्रतिबिम्ब को पकड़ने की कोशिश करने जैसे सामान्य, सूक्ष्म और विशिष्ट चित्रों की सूरदास ने ऐसी श्रृंखला निर्मित की है कि उनके अंधेपन पर ही अविश्वास हो जाता है। मक्खन खा कर घुटनों के बल चलते हुए कृष्ण का एक गतिशील बिंबात्मक चित्र देखिए:

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु–तनु मंडित, मुख दधि लेप किये।

टिप्पणी

चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्तमधुप–गन मादक मधुहिं पिए।
कठुला कंठ ब्रज केहरि नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एको पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए।

बाल स्वभाव और उसकी अंतःप्रकृति का चित्रण : बालक–बालिकाओं का रूप–लावण्य और स्वभाव जितना हमें आकर्षित करता है उससे कहीं ज्यादा हमें उनका नटखटपन प्रभावित करता है। सूरदास ने बालक कृष्ण के अंतर्सौन्दर्य और अंतर्प्रकृति का भी रमणीय चित्र निर्मित किया है। बड़ों की तरह बालकों में भी स्पर्धा, ईर्ष्या, प्रतिद्वंद्विता, खीज, हठ, बुद्धि–चातुर्य जैसी मनोवृतियाँ होती हैं लेकिन उनके द्वारा की जाने वाली क्रियायें बाल–बुद्धि के कारण पीड़ा की जगह आनन्द की वस्तु हो जाती है। बच्चों के भीतर दूध पीने की स्वाभाविक अनिच्छा होती है, कृष्ण को भी मक्खन तो प्रिय है लेकिन दूध पीने को लेकर वे आनाकानी करते हैं। माता यशोदा उन्हें फुसलाते हुए कहती हैं कि दूध पीने से तुम्हारी चोटी बढ़कर बलराम की तरह हो जायेगी। कृष्ण एक हाथ में दूध और दूसरे हाथ में अपनी चोटी पकड़कर दूध पीते हैं। कई घूँट दूध पी लेने के बाद भी जब उनकी चोटी नहीं बढ़ती तो माँ से इसकी शिकायत करते हुए कहते हैं–

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी
किती बार मोहि दूध पिवत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहती बलि की बैनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काँचौ दूध पिवावत पचि–पचि देत न माखन रोटी।

इसी प्रकार 'मैया मोरी मैं नहीं माखन खायौ' पद में कृष्ण चोरी कर मक्खन खाते हुए जब रंगे हाथों पकड़े जाते हैं तब अपने मुँह में लगे मक्खन के विषय में बाल–सुलभ सफाई देते हुए कहते हैं कि यह तो मेरे दोस्तों ने मुझे बदनाम करने के लिए जबरदस्ती मेरे मुँह में लगा दिया। तुम खुद ही देख लो कि मक्खन कितनी ऊँचाई पर टँगा है और मैं कितना छोटा हूँ। मैं भला वहाँ कैसे पहुँच सकता हूँ? 'मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो' पद में माँ के प्रेम पर एकाधिपत्य और इसके अभाव में बाल–सुलभ खीझ का सूरदास ने बहुत ही चित्ताकर्षक वर्णन किया है।

विविध संस्कारों का वर्णन : ब्रज की लोक–संस्कृति का सूरदास को गहरा ज्ञान था। ब्रज में प्रचलित लोक–संस्कारों की उन्हें सूक्ष्म समझ थी। इसी कारण उन्होंने पुत्र जन्म के अवसर पर होने वाले तमाम संस्कारों का विस्तृत चित्रण कृष्ण की बाललीला के वर्णन के क्रम में किया है। इस क्रम में उन्होंने क्षेत्रीय स्तर पर प्रचलित संस्कारों के साथ–साथ शास्त्रीय स्तर पर मान्य संस्कारों का भी उपयोग किया है। नारच्छेदन के अवसर पर होने वाला प्रेममय झगड़ा, छठी का उत्सव, ढाढ़ी और ढाढ़िनी के नृत्य, संगीत एवं बधाई गान, गृहकर्म का उत्सव जैसे ब्रज के समाज में प्रचलित तमाम संस्कारों का सूरदास ने विशद चित्रण किया है। इन पदों की रचना उन्होंने लोकगीतों की तर्ज पर की है जो इन्हें विशिष्ट बनाती है। बच्चों के जन्मोत्सव पर गाये जाने वाले सोहिलौ या सोहर की रचना भी सूरदास ने की है। नामकरण, उपनयन, अन्नप्राशन, कर्णबेध जैसे शास्त्रीय संस्कारों का भी वर्णन सूर

टिप्पणी

की लेखनी से हुआ है। इन अवसरों पर मातापिता के हृदय में उमड़ने वाले उत्साह और आनन्द की सूक्ष्म व्यंजना सूर ने की है। कृष्ण के अन्नप्राशन के अवसर पर नन्द यशोदा का उत्साह देखिए–

आजु कान्ह करिहैं अन प्रासन।

मनि कंचन के थार भराए भाँति भाँति के बासन।

नन्द घरनि ब्रजबधू बुलाई जे सब अपनी पाँति।

मातृहृदय का प्रकाशन : सूरदास के वात्सल्य–वर्णन की केंद्रीय विशेषता है माता यशोदा के हृदयगत मनोभावों की अभिव्यंजना। इस अभिव्यंजना के दो पक्ष हैं– माता यशोदा के हावभाव का प्रकाशन और माता यशोदा की नजरों से कृष्ण की बाल–लीला का दर्शन। यशोदा की इच्छाओं, आशाओं, चिंताओं और कोमलतम मनोदशाओं की जैसी मधुर और विश्वसनीय अभिव्यक्ति सूर ने अपने पदों में की है वह अद्वितीय है। कृष्ण की ललित लीलाओं और बालोचित शरारतों को देखकर यशोदा असीम आनंद की अनुभूति करती हैं। आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित 'यशोदा हरि पालने झुलावै' पद में पालने में कृष्ण को सुलाते समय यशोदा के मातृहृदय में चल रहे मनोभावों का सहज ही दर्शन हो जाता है।

वियोग–वर्णन : सूरदास ने वात्सल्य के संयोग पक्ष के साथ–साथ उसके वियोग पक्ष का भी हृदयद्रावक चित्रण किया है। कृष्ण जब कंस के बुलावे पर अक्रूरजी के साथ मथुरा चले जाते हैं तो माता यशोदा के जीवन में पहाड़ टूट पड़ता है। एक माँ के जीवन की सर्वाधिक हृदयविदारक घटना होती है पुत्र के साथ उसका वियोग होना। इसी कारण वात्सल्य के संयोग पक्ष में जहाँ कृष्ण के हावभाव और चंचलता केन्द्र में थी वहीं उसके वियोग पक्ष में माता यशोदा की पीड़ा प्रधान हो गयी। इस विषय में मैनेजर पांडेय ने लिखा है कि, "संयोग वात्सल्य में बालक कृष्ण का मनोरंजनकारी रमणीय रूप है, उनकी सहज बाललीलाएं, चेष्टाएं एवं विभिन्न स्वाभाविक मुद्राएं हैं, बालक की मनोवृत्ति और मनोदशाओं का वर्णन है तथा आनंदमग्न ममतामयी मां का वात्सल्यपूरित पावनस्वरूप है लेकिन वियोग वात्सल्य में करुणामयी त्यागमूर्ती माता का वात्सल्य–विह्वल हृदय अभिव्यक्त हुआ है। संयोग वात्सल्य का वर्णन कालिदास आदि में भी उपलब्ध है, लेकिन वियोग वात्सल्य की रसात्मक अभिव्यंजना सूरदास की कवित्व शक्ति की निजी विशेषता है" (भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, 178)

कृष्ण के मथुरा गमन का चित्रण : वियोग–वात्सल्य की सर्वाधिक सुन्दर अभिव्यक्ति कृष्ण के मथुरागमन के दौरान माता यशोदा के भावविह्वल मातृहृदय के कारुणिक चित्र में हुई है। इस वर्णन को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे सूर स्वयं यशोदा की जगह रो रहे हों। कृष्ण के प्रस्थान के समय यशोदा की विह्वलता असह्य है। वे समस्त ब्रजवासियों से निवेदन करती हैं कि कोई तो जाते हुए कृष्ण को रोक लो। कृष्ण यशोदा के जीवन के एकमात्र आधार हैं, तब कृष्ण का मथुरागमन उनके प्राणों का भी गमन है। इस पद में यशोदा कृष्ण को रोकने की वैसी ही मिन्नत करती हैं जैसे कोई व्यक्ति हत्यारे से अपने जान की भीख माँगता है–

जसोदा बार बार यों भाखै।

है कोई ब्रज में हितू हमारौ चलत गोपालहिं राखै।

टिप्पणी

कहा करै मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ।

सुफलक सुत मेरे प्रान हनन कौं काल रूप होइ आयौ।

यशोदा के दुख से सारा ब्रज दुखी है लेकिन वह भी वैसा ही असहाय है जैसी यशोदा। यशोदा की चीख और पीड़ा समस्त ब्रज की पीड़ा है। कृष्ण के जाने से केवल यशोदा ही नहीं सम्पूर्ण ब्रज का वैभव चला गया। सूरदास ने यशोदा के दर्द की ऐसी अभिव्यक्ति की है कि उसने दिक और काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर लिया है।

मथुरा से नंद के अकेले वापस आने के बाद का चित्रण : कृष्ण के चले जाने के बाद भी माता यशोदा के मन में यह उम्मीद बची रहती है कि लौटते समय नंद उसे वापस ले आयेंगे। लेकिन जब नंद मथुरा से अकेले ही लौट आते हैं तो माँ के धीरज का बाँध टूट जाता है। पत्नी की समस्त मर्यादा को त्यागकर वह नंद को धिक्कारने लगती हैं और भाँति–भाँति के व्यंग्य करने लगती हैं। नंद यशोदा के दांपत्य जीवन का एकमात्र सहारा कृष्ण थे। उनका जाना नंद यशोदा के दांपत्य जीवन पर भी ग्रहण लगा जाता है। वह नन्द को फटकारते हुए कहती हैं– 'जसुदा कान्ह कान्ह कै बुझै। फूटि न गईं तुम्हारी चारों कैसे मारग सूझै।' भावावेग में आकर वह यहाँ तक कह देती हैं कि तुम अपने ब्रज में सुख के साथ रहो मैं तो अपने कान्हा के पास मथुरा जा रही हूँ–

नंद ब्रज लीजै ठोकि बजाइ।

देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी, जहां गोकुल के राइ।

नैननि पंथ कहौ क्यों सूझ्यौ, उलटि दियो जब पाइं।

कृष्ण के मथुरा प्रवास का चित्रण : वियोग में यादों की बड़ी भूमिका होती है। यशोदा के बार–बार के बुलावे पर भी जब कृष्ण वृंदावन नहीं लौटते तब यशोदा के जीवन में कृष्ण की स्मृति ही एकमात्र सहारा रह जाती है। वह उनकी उपभोग की हुई वस्तुओं को देख–देखकर व्याकुल हो उठती हैं और उनकी यादों में खोकर बेसुध हो जाती हैं–

यद्यपि मन समुझावत लोग।

सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख जोग।

निसि बासर छतियां लै लाऊं, बालक लीला गाऊं।

वैसे भाग बहुरि कब ह्वै है, मोह्न मोद ख्वाऊं।

वियोग के समय प्रेमास्पद के गुणों और उसके साथ की गयी अपनी गलतियों की याद आती है। यशोदा को अक्सर लगता है कि कृष्ण की देखभाल में उनसे चूक हुई है और वे उसका परिहार करना चाहती हैं, लेकिन अब उसका अवसर नहीं है। फिर भी यशोदा को लगता है कि कृष्ण की उनसे बेहतर देखभाल कोई और कर ही नहीं सकता। वह अत्यंत विनय और दीनता के साथ देवकी के पास संदेश भेजती हैं कि यद्यपि मैं तो उसकी केवल धाइ हूँ और तुम उसकी माता हो तब भी मैं तुम से कहती हूँ कि उसके प्रति अपनी ममता बनाये रखना– 'संदेसौं देवकी सौं कहियौ। हौं तो धाइ तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ।'

वात्सल्य भक्ति : सूरदास मूलतः एक भक्त हैं और लीलागान उनकी भक्ति का एक साधन, इसलिए कृष्ण का वात्सल्य वर्णन भी एक प्रकार की भक्ति ही है। वल्लभ संप्रदाय

टिप्पणी

में मान्यता है कि जीव की शुद्धावस्था में पाप–पुण्य से निर्लिप्त सच्चिदानंद कृष्ण की शिशु मूर्ति ही भक्तिभावना का विषय बनती है। इसमें कृष्ण के बालरूप की आराधना का विशेष महत्व है। सूरदास के पदों में एक बात अक्सर खटकती है कि उसमें बालक कृष्ण के सौन्दर्य या लीला में डूबे हुए सूर अचानक ही उन्हें हरि कहकर पुकारने लगते हैं। यह उनकी भक्ति और दार्शनिकता का प्रभाव है। जैसे इस पद में–

खीझत जात माखन खात।

अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार बार जंभात।

कहुं रुनझुन चलत घुटुरुनि धूरि धूसर गात।

कबहुं झुकि के अलख खींचत, नैन जल भरि जात।

कबहु तोतर बोल बोलत, कबहुं बोलत तात।

सूर हरि की निरिखि सोभा, निमिष तजत न मात।

2.3.3 सूरदास की भक्ति–भावना

सूरदास की गणना हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ भक्त–कवियों में की जाती है। इनका सम्पूर्ण और श्रेष्ठ लेखन भगवद–भक्ति के क्रम में ही प्रकाश में आया। भक्ति ही उनके काव्य का साधन है और साध्य भी। वल्लभाचार्य से मुलाकात के पहले की इनकी भक्ति में जहां दीनता का स्वर प्रबल है वहीं उसके बाद की भक्ति में कृष्ण के लीलागान का। श्रीकृष्ण सूर के इष्टदेव हैं और उनकी भक्तवत्सलता से वे सर्वाधिक प्रभावित हैं इसीलिए सूर उन्हें वासुदेव, जगदीश, हरि, यदुनाथ आदि अनेक नामों से पुकारते हैं और उनकी स्वभाव की मुख्य विशेषताएं उदारता, करुणामयता और भक्तवत्सलता बताते हैं। सूरदास की भक्ति में शास्त्रीय मतों का अनुगमन कम श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का रसमय गान अधिक है। उन्होंने ज्ञान और योग का खंडन कर सगुण कृष्ण की लीला को अपनी भक्ति का आधार बनाया। उनकी भक्ति में श्रेष्ठ दार्शनिक ज्ञान, अवतारवाद, अनुभूत सत्य और अपने समय की चेतना का सुंदर समन्वय है।

सूरदास की भक्ति का आधार वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैतवाद का दर्शन है। इस दर्शन की मूल स्थापना यह है कि ब्रह्म माया से रहित है। वास्तव में शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा के क्रम में जब केवल ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या घोषित किया तब उन्होंने जगत की सृष्टि का कारण माया को माना। वल्लभ की मूल आपत्ति यही थी कि सर्वशक्तिमान ईश्वर क्या इतना भी समर्थ नहीं है कि वह अकेले जगत की रचना कर सके, और तब उन्होंने कहा कि ब्रह्म कुछ भी करने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र है उसे माया के सहयोग की कोई आवश्यकता नहीं। माया से रहित ब्रह्म के शुद्ध रूप का दर्शन कराने के कारण ही इस दर्शन को 'शुद्धाद्वैतवाद' कहा गया। वल्लभ के अनुसार ब्रह्म और जीव एक ही हैं दोनों में मूलभूत अंतर यह है कि ब्रह्म जहाँ– सत, चित और आनन्द– तीनों शक्तियों से सम्पन्न है वहीं जीव में केवल दो शक्तियाँ– सत और चित– ही प्रकट रहती हैं, आनन्द नामक तीसरी शक्ति उसके भीतर ही छुपी रहती है। ईश्वर की भक्ति और लीलागान द्वारा भक्त इसी शक्ति को जाग्रत करता है और फिर ईश्वरीय लोक में

टिप्पणी

प्रविष्ट हो जाता है। सूरदास के काव्य में श्रीकृष्ण के लीलागान की प्रधानता का यही रहस्य है।

सूरदास की भक्ति की विशेषताएँ निम्न हैं :

सगुण कृष्ण की आराधना : सूरदास ने सचेत होकर कृष्ण के सगुण रूप की भक्ति की है। सगुण कृष्ण की भक्ति उन्हें अधिक सरस, सहज और सुगम लगती है। रूप–रेखा–गुणविहीन ब्रह्म को सूर नकारते नहीं हैं पर मन–वाणी से अगम–अगोचर मानकर उसे छोड़ देते हैं। रूप ही मन का अवलंब है इसलिए सूर के कृष्ण सगुण हैं। वे रूपोपासक हैं, लीलागायक हैं, मधुराभक्ति के भावक हैं:

अविगत गति कछु कहत न आवै।

ज्यौं गूंगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै।

परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।

मन बानी कौ अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।

रूप रेख गुन जाति जुगति विनु निरालंब कित धावै।

सब विधि अगम विचारहिं तातें सूर सगुन लीला पद गावै।

पुष्टिमार्गीय भक्ति : सूरदास की भक्ति 'पोषणं तदनुग्रहः' अर्थात भगवान का अनुग्रह (कृपा) ही जीवों का पोषण है, के सिद्धांत के अनुरूप है। यह उनकी भक्ति का मेरुदण्ड है। सूरदास का मानना है कि भगवान की अनुकम्पा ही जीवात्मा की पुष्टि अर्थात पोषण का सर्वोत्तम सहारा है। उसकी कृपा से ही भक्त के हृदय में भक्ति का संचार हो पाता है। इसलिए प्रेमपूर्ण हृदय से भगवान की सेवा करना ही जीव का परम लक्ष्य होना चाहिए। भक्त की सेवा से यदि ब्रह्म प्रसन्न हो जाये तो उसे जीवदशा से मुक्त कर अपने आप में मिला लेता है। इस मुक्ति को सायुज्यमुक्ति कहते हैं। पुष्टिमार्गीय भक्ति के दो रूप हैं– साधन–रूप और साध्य–रूप। साधन–भक्ति में भक्त को प्रयत्न करना पड़ता है जबकि साध्य–भक्ति में भगवान स्वयं अपने भक्त का ध्यान रखते हैं। भक्त तो भगवान का अनुग्रह प्राप्त कर उसमें मगन हो जाता है। सूरदास ने अपने एक पद में कहा है–

जा पर दीनानाथ ढरै।

सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ जा पर कृपा करै।

सूर पतीत तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढरै।।

जापर दीनानाथ ढरै।

सोई कुलीन, बड़ो सुन्दर सिइ, जिहिं पर कृपा करै।।

राजा कौन बड़ो रावन तें, गर्वहिं गर्व गरै।

कौन विभीषन रंक निसाचर, हरि हंसि छत्र धरै।।

रंकव कौन सुदामाहू तें, आपु समान करै।

अधम कौन है अजामील तें, जम तहं जात डरै।।

कौन बिरक्त अधिक नारद तें, निसि दिन भ्रमत फिरै।

अधिक कुरूप कौन कुबिजा तें, हरि पति पाइ तरै।।

टिप्पणी

अधिक सुरुप कौन सीता तें, जनम वियोग भरै।
जोगी कौन बड़ो संकर तें, ताकों काम छरै।।
यह गमि मति जानै नहिं कोऊ, किहिं रस रसिक ढरै।
सूरदास, भगवन्त भजन बिनु, फिरि–फिरि जठर जरै।।

प्रेमलक्षणा भक्ति

सूरदास की भक्ति का सार है उनकी प्रेमभक्ति। उन्होंने अपने समय में प्रचलित ज्ञान, योग और निर्गुण भक्ति का सचेत प्रत्याख्यान कर प्रेमलक्षणा भक्ति की स्थापना की। सूर की गोपियों ने तार्किक तरीके से निर्गुण भक्ति का खंडन और प्रेममूलक सगुण भक्ति का मंडन किया। उनके लिए प्रेमविहीन जीवन की कोई सार्थकता नहीं है। वे ज्ञानयोग से मिलने वाली कोटि मुक्ति को कृष्ण की एक मधुर मुस्कान पर कुर्बान कर देने के लिए तैयार हैं। सूर की गोपियाँ गोपाल के प्रेम, उनकी आसक्ति और उनकी लीला में ही समस्त प्रकार की मुक्ति का समावेश पाती हैं। यही प्रेमलक्षणा भक्ति का स्वभाव है कि इसमें मुक्ति सहज–सुलभ होकर भी अनावश्यक हो जाती है। भक्त मुक्ति की जगह भगवान के प्रेम में ही मगन रहना चाहता है। प्रेमलक्षणा भक्ति में प्रेम ही परम पुरुषार्थ है। प्रेम के वशीभूत होकर ही कृष्ण ब्रज में अवतार लेते हैं। सूरदास लिखते हैं– प्रीतिवश नटवर रूप धरयो।

कृष्ण की लीलाओं का गान : पुष्टिमार्गी भक्ति में तीन आसक्तियों का उल्लेख मिलता है– लीलासक्ति, रूपासक्ति एवं भावासक्ति। 'सगुणलीला पद गावै' कहने वाले सूर के काव्य में लीलासक्ति का प्रधान स्थान है। सूर कृष्ण के सगुण रूप की लीलारस के रसिक हैं। इसीकारण उन्हें कृष्ण के शास्त्रसमर्थित रूप की तुलना में लोकपोषित लीलाओं ने अधिक आकर्षित किया। वे मथुरा के राजा कृष्ण की तुलना में वृन्दावनविहारी कृष्ण के लीलागान में अधिक मगन मिलते हैं। सूर के काव्य में इस लीला के अनेक रूप मिलते हैं– वात्सल्य, वियोग शृंगार, संयोग शृंगार, रूप वर्णन आदि। यशोदा नंद का वात्सल्य भाव, गोपियों का रास, बालकृष्ण का नटखटपन, ब्रजमंडल का प्रेमभाव जैसे अनेक पारम्परिक प्रसंगों में नवीन उद्‌भावनाओं को शामिल कर सूर ने कृष्ण की लीला गान को अद्‌भुत विस्तार दिया है।

सख्य–भक्ति : सूरदास के काव्य में विद्यमान सख्य भाव की भक्ति उन्हें भक्तिकाल का विशिष्ट कवि बनाती है। भक्तिकाल के किसी अन्य प्रसिद्ध कवि में इतनी प्रमुखता से सख्य भाव की भक्ति नहीं मिलती। कबीर में दास्य भाव, तुलसी में सेवक–सेव्य भाव, मीरा में दाम्पत्य भाव तो सूरदास में सखा भाव की प्रधानता है। संभवतः इसी कारण लोक में यह प्रसिद्ध है कि सूरदास श्रीकृष्ण के सखा उद्धव के अवतार थे। सूर–काव्य में सख्य–भक्ति के दो रूप मिलते हैं– गोप व ग्वालों के साथ कृष्ण का सखा रूप में विचरण और गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम–भाव। पहले रूप में ईश्वर का एक ऐसा विश्वसनीय, उदार और आत्मीय रूप उभरता है जो हर प्रकार की मानवीय सीमाओं को लाँघ कर मानव मात्र से प्रेम करता है, और दूसरे रूप में विरहजन्य वेदना से पैदा हुई तल्लीनता, सगुण–निर्गुण विवेचन, ज्ञान और भक्ति के बीच के अंतर का सुंदर चित्रण सूरदास की भक्ति–पद्धति का दार्शनिक और भावुक दोनों रूप सामने लाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है

टिप्पणी

कि, "अगर हमसे कोई पूछे कि 'सूरसागर' का 'सेंट्रल थीम' क्या है तो बिना किसी हिचकिचाहट के चिल्ला उठेंगे– 'छबीले मुरली नेकु बजाउ'। निःसंदेह सखाओं के व्याज से सूर ने स्वयं अपने मनोभाव को प्रकट किया है।"

ज्ञान–मार्ग का सचेत विरोध : हिन्दी के अधिकांश प्रसिद्ध कवियों ने किसी भी सम्प्रदाय से स्पष्ट रूप से जुड़ने में संकोच किया लेकिन सूरदास जाहिर तौर पर 'अष्टछाप' में शामिल हुए। सूरदास के काव्य में कृष्ण के अलावा किसी अन्य देवता की स्तुति न के बराबर है। भक्तिकाल में सगुण–निर्गुण का स्पष्ट विभाजन है लेकिन सूरदास को छोड़कर किसी भी कवि ने इसकी सायास चर्चा नहीं की है। सूरदास द्वारा 'भ्रमरगीत' प्रसंग की रचना का मूल उद्देश्य ही तत्कालीन समाज में प्रचलित ज्ञानमार्गी संतों का सचेत विरोध था। इस मामले में सूरदास एक जागरूक भक्त थे। भ्रमरगीत प्रसंग के माध्यम से सूरदास ने ज्ञानमार्ग की निस्सारता का उद्‌घाटन किया और भक्ति–मार्ग की सहजता–सरसता की स्थापना की। उद्धव का ज्ञान–दंभ ज्ञानमार्गी संतों के अहंकार का प्रतीक है और गोपियों की तार्किकता सूर के विचार हैं जो कृष्ण–भक्ति के प्रति उनके अनन्य समर्पण से जन्मे हैं। यह प्रसंग कृष्ण–भक्ति की मधुरता, तन्मयता, सरसता और सुगमता को महसूस कराने और ज्ञानमार्ग की जड़ता को दिखाने के लिए रचा गया था। वैसे यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सूर ज्ञान मात्र के विरोधी न होकर उस ज्ञानमार्ग के विरोधी हैं जो मनुष्य को सहज भक्ति से दूर ले जाकर अहंकारी बनाता है। गोपियाँ कहती हैं कि– 'सुनि है कथा कौन निर्गुण की, रचि रचि बात बनावत। सगुण सुमेरू प्रगट देखियत, तुम तृन की ओर दुरावत।' स्पष्ट है कि सगुण भक्ति में ईश्वर जहाँ सुमेरू पर्वत की तरह प्रगट दिखता है उसको त्याग कर उस ज्ञानमार्गी निर्गण भक्ति की ओर कोई क्यों जाना चाहेगा जिसमें उसे छोटे घास की तरह तलाशना होगा। सूरदास ने ज्ञान की कोरी वचनावली और योग की थोथी साधनावली का खण्डन करते हुए सगुण भक्ति का ऐसा रसमय मार्ग प्रस्तुत किया जिसने लोक–चित्त में विद्यमान निराशा को उखाड़ फेंका और जीवन जीने की नयी चाह पैदा की। सूरदास ने भले ही श्रीमदभगवत की कथा को सूरसागर का आधार बनाया हो लेकिन उसमें डाला गया रंग सूर का अपना था।

भक्तवत्सलता और दैन्य–भाव : पुष्टिमार्गी भक्ति जीव के तीन प्रकार बताता है– 1. पुष्टि जीव– जो भगवान के अनुग्रह का भरोसा रखता है, 2. मर्यादा जीव– जो वेद विधियों का अनुसरण करता है, 3. प्रवाह–जीव– जो संसार–प्रवाह में पड़कर संसार के सुखों में लिप्त रहता है। पुष्टिमार्ग के अनुसार पुष्टि जीव सर्वोत्तम जीव होता है। यह जीव केवल भगवान के अनुग्रह की कामना करता है, उसके प्रति अपने दैन्य का प्रदर्शन करता है, और उसको अटूट विश्वास होता है कि भक्तवत्सल भगवान एक दिन उस पर जरूर कृपा करेंगे। इसी कारण सूरदास की भक्ति का मुख्य स्वर दीनता का और प्रिय विषय भगवान की भक्तवत्सलता है। सूर ईश्वर के समक्ष आत्म–दैन्यता का प्रदर्शन करते हुए कहते है कि– 'प्रभु हौं सब पतितन को टीको। और पतित सब द्यौस चारि कैं हौं तो जनमत ही को।' सूर अपने भगवान के समक्ष कबीर की तरह कुत्ता तो नहीं बनते लेकिन इतने दयनीय तो हो ही जाते हैं कि वल्लभाचार्य को उनको डाँटते हुए कहना पड़ा कि "सूर ह्वै कें घिघियात काहे को है कछू भगवत्लीला वर्णन करि।" तात्पर्य यह कि 'तुम सूर होकर ऐसे घिघियाते क्यों हो? कुछ भगवान की लीला का वर्णन करो।' ईश्वर की लीला के वर्णन के दौरान सूर

टिप्पणी

का ध्यान सबसे पहले उनके उस कृपासिंधु रूप पर ही गया जो अपने भक्तों के दुखों के हरण के लिए पैदल ही दौड़ पड़ता है। सूर को अटूट विश्वास है कि भगवान एक दिन उनकी आतुर पुकार सुनेंगे और अपनी शरण में उन्हें ले लेंगे।

भक्ति का सहज–सतत विकासशील स्वरूप : सूरदास की भक्ति किसी एक निश्चित खाँचे में बँधी स्थिर भक्ति नहीं है। उनके पदों के क्रमिक अध्ययन से पता चलता है कि उनकी भक्ति निरंतर विकसनशील रही है। वल्लभाचार्य से मुलाकात के पहले उनकी भक्ति में दैन्य और विनय का स्वर प्रबल था लेकिन उसके बाद प्रेमाभक्ति का प्रभाव अधिक हो गया। सूरदास के काव्य में विनय और हरिलीला के पदों की समान उपस्थिति है। विनय के पदों में धर्म की रसात्मक अनुभूति या आध्यात्मिक साधना के तीन सोपानों– आकांक्षा, अस्वीकृति और आत्मसमर्पण– का क्रमशः विकास दिखाई पड़ता है जबकि हरिलीला के पदों में वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भावों का क्रमिक विकास देखने को मिलता है। इस क्रम में दास्य, सख्य, वात्सल्य, आत्मनिवेदन जैसे भक्ति के अनेक रूपों का दर्शन होता है।

प्रो. मैनेजर पांडेय ने रेखांकित किया है कि "सूरदास की भक्तिभावना की एक बड़ी विशेषता है, उसका सहज–सतत विकासशील रूप। सूर की भक्तिभावना दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन की वैधी भक्ति से दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की रागानुगाभक्ति के विविध सोपानों को पार करती हुई प्रेमाभक्ति की सिद्धावस्था में पहुंची है। उसमें भक्ति–भावना के सभी रूप हैं, नारदभक्तिसूत्र की ग्यारहों प्रकार की आसक्तियों का क्रमिक विकास है। सूरसागर केवल रससागर और रागसागर ही नहीं, भक्तिसागर भी है। उसमें भक्ति की सभी भावधाराओं और अनुभूति की लहरियों का विलास है।"

2.4 जायसी : सामान्य परिचय

जायसी भक्तिकाल की निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका पूरा नाम मलिक मोहम्मद जायसी था। ये उत्तर प्रदेश के जायस नामक स्थान में रहते थे। जायसी का जन्म जायस में हुआ था या ये कहीं बाहर से आकर बसे थे इसको लेकर भ्रम की स्थिति है। स्वयं जायसी ने बाहर से आकर जायस में बसने की बात लिखी है– 'जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आय कवि कीन्ह बसानू।' अपने जन्म के संबंध में उन्होंने लिखा है– 'भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर बा बदी।' परंतु इन पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। इनके जन्म के समय के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। जायसी अपने जमाने के प्रसिद्ध सूफी फकीर माने जाते थे। इनके गुरु के रूप में अनेक सूफी संतों का जिक्र होता है। आचार्य शुक्ल ने शेख मोहिदी (मुहीउद्दीन) को जायसी का गुरु बताया है। जायसी पर शोध करने वाले विजयदेव नारायण साही का मानना है कि ये किसी सम्प्रदाय में विधिवत दीक्षित नहीं हुए थे। जायसी गाजीपुर और भोजपुर के राजा जगद्देव और अमेठी के राजा के दरबार में भी रहे। अमेठी में ही इनकी मृत्यु सन 1542 ई. में हुई थी।

अपनी प्रगति जांचिए

2. जायसी किस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि है?
   (i) ज्ञानाश्रयी निर्गुण काव्य धारा
   (ii) प्रेमाश्रयी निगुर्ण काव्य धारा
   (iii) कृष्णभक्ति सगुण काव्य धारा
   (iv) रामभक्ति सगुण काव्य धारा

जायसी बेहद कुरूप थे जिसकी पीड़ा कई स्थलों पर अभिव्यक्त होती है–'मुहमद कबि जो प्रेम का ना तन रकत न माँसु। जेई मुँख देखा तेई हँसा सुना तौ आये आँसु।'

टिप्पणी

उनकी एक आँख में रोशनी नहीं थी और एक कान से सुनाई भी नहीं देता था। ऐसी किंवदन्ती है कि शेरशाह इनके रूप को देखकर एक बार हँस पड़ा था जिस पर जायसी बोले– 'मोंह का हँसेसि कि हँसेसि कोहारहि।' जायसी भक्तिकाल के अकेले प्रमुख कवि हैं जिन्हें अपने कवि होने का अभिमान है। वे सूफी बाद में हैं कवि पहले। अपने कवि, और श्रेष्ठ कवि होने का जिक्र जायसी ने 'पद्मावत' में बार–बार किया है। 'पद्मावत' के अंत में वे लिखते हैं–

'मुहमद यहि कबि जोरि सुनावा। सुना सो पेम पीर गा पावा।।
जोरी लाइ एकत कै लेई। गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई।'

विजयदेव नारायण साही ने जायसी को हिन्दी का पहला विधिवत कवि कहा है। इनका रचनाकाल बाबर से लेकर शेरशाह के शासनकाल तक फैला हुआ है। इनकी कुल तीन रचनाओं का पता चलता है–'आखिरी कलाम', 'अखरावट' और 'पद्मावत'। 'पद्मावत' जायसी की अंतिम रचना है और उनकी प्रसिद्धि का आधार स्तम्भ भी।

आखिरी कलाम : इस पुस्तक की रचना के संबंध में जायसी ने लिखा है– 'नौ सौ बरस छतीस जो भये। तब एहि कथा के आखर कहे।' तात्पर्य यह कि इसकी रचना हिजरी सन 936 अर्थात 1530 ई. में हुई थी। 'आखिरी कलाम' में बादशाह बाबर (शासनकाल–1526–1530ई.) की प्रशंसा है जो उचित ही है। जायसी ने इसकी रचना मुख्य रूप से इस्लाम में उल्लेखित कयामत के वर्णन के लिये की। सूफी परंपरा के अनुसार इसमें बाबर बादशाह की प्रशंसा, गुरु की वंदना, जायस नगर का वर्णन भी मिलता है।

अखरावट : इसका रचनाकाल स्पष्ट नहीं है। यह 1520 से लेकर 1540 के बीच कभी लिखी गयी थी। इसमें वर्णमाला के अक्षरों को लेकर सिद्धांत से भरी चौपाइयाँ लिखी गयी हैं। इस छोटी सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव और प्रेम आदि के विषय में विचार प्रकट किये गये हैं।

पद्मावत : जायसी की प्रतिष्ठा का अक्षय स्रोत यही रचना है। इसके लेखन के आरंभ के विषय में कवि ने लिखा है कि–'सन नौ सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा।' मतलब यह कि 927 हिजरी यानी सन 1520 में 'पद्मावत' का लेखन आरंभ हुआ। इसकी रचना मसनवी पद्धति के अनुसार हुई है इसलिए आरंभ में बादशाह शेरशाह की प्रशंसा है। शेरशाह ने दिल्ली पर सन 1540 से 1545 तक शासन किया था। इससे पता चलता है कि 'पद्मावत' की रचना भले ही सन 1520 में प्रारंभ हो गयी हो लेकिन इसकी समाप्ति शेरशाह के शासनकाल में ही हुई होगी। विद्वानों का मानना है कि इस रचना का लेखन सन 1540 तक सम्पन्न हो गया था।

'पद्मावत' दोहा–चौपाई शैली में लिखा गया एक प्रबंधकाव्य है। इसकी कथा का विभाजन 'खण्डों' में किया गया है। इसमें कुल 57 खण्ड हैं। यह प्रेमाख्यानक काव्य है जिसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम कथा कही गयी है। रत्नसेन जब हीरामन नामक तोते से पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन सुनता है तब अपनी विवाहिता पत्नी नागमती को घर पर छोड़कर उसको प्राप्त करने चल पड़ता है। अनेक बाधाओं को पार करते हुए रत्नसेन पद्मावती से विवाह करने में सफल होता है

टिप्पणी

और उसे लेकर वापस चित्तौड़ पहुँचता है। इतनी कथा 'पद्मावत' का पूर्वार्द्ध पक्ष है जिसमें कल्पना का ज्यादा मेल है। चितौड़ पहुँचकर रत्नसेन अपनी दोनों रानियों के साथ सुख से रहने लगता है। लेकिन राघवचेतन नामक एक पंडित रत्नसेन द्वारा राज्य से निकाल दिये जाने के बाद दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन के पास चला जाता है और उसके समक्ष पद्मावती के रूप का वर्णन कर उसे चितौड़ पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करता है। अलाउद्दीन आक्रमण करता है और धोखे से रत्नसेन को बंदी बना कर दिल्ली ले आने में सफल हो जाता है। पद्मावती के कहने पर गोरा, बादल नामक दो वीर रत्नसेन को छुड़ा लाने में सफल हो जाते हैं। इस बीच रत्नसेन के बंदी बनाये जाने की खबर सुन कुंभलनेर के राजा देवपाल ने अपनी एक दूती के माध्यम से पद्मावती के पास प्रेम प्रस्ताव भेजा। चित्तौड़ लौटने के बाद जब इसकी सूचना रत्नसेन को मिली तो उसने देवपाल पर आक्रमण कर दिया और इसी युद्ध में मारा गया। रत्नसेन का शव चितौड़ लाया गया और उसकी दोनों रानियाँ पति के शव के साथ सती हो गयीं। 'पद्मावत' का उत्तरार्द्ध पक्ष ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है।

'पद्मावत' में प्रेमगाथा का प्रौढ़ रूप देखने को मिलता है। इसमें कल्पना और इतिहास का अद्भुत मेल है। सूफी सिद्धांत के प्रतिपादन के साथ–साथ भारतीय साहित्य रूपों का भी बेहतर सम्मिश्रण इसमें हुआ है। शुक्लजी के अनुसार यह 'हिन्दू हृदय के मर्म' को स्पर्श करने वाली रचना है। नागमती का विरह वर्णन भारतीय नारी की दारुण दशा को सजीव कर देता है। इस कथा में जायसी ने प्रेम का ऐसा उदात्त चित्र प्रस्तुत किया जिसमें हर तरह की सांसारिक सीमाओं को पार कर जाने की क्षमता है। यह मानवता को प्रतिष्ठित करने वाली रचना है।

2.4.1 जायसी : पाठ्यांश

प्रस्तुत पाठ्यांश मलिक मुहम्मद जायसी की प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' के अंतिम खण्ड 'उपसंहार खण्ड' से लिए गए हैं। इस खण्ड की महत्ता इस बात में है कि इसके माध्यम से ही पद्मावत के प्रतीकात्मक अर्थ का संधान होता है। पहली चौपाई की तीसरी, चौथी, पाँचवी और छठवीं पंक्ति में उपलब्ध निर्देशों के आधार पर बाद के आलोचकों ने चितौड़ को तन, राजा को मन, सिंहल द्वीप को हृदय, पदिमनी को बुद्धि, सुआ को गुरु, नागमती को दुनिया धंधा, राघव दूत को शैतान और अलाउद्दीन खिलजी को माया का प्रतीक मानकर इस संपूर्ण महाकाव्य का सूफी मत के अनुसार भाष्य प्रस्तुत किया।

'उपसंहार खण्ड' की प्रामाणिकता–अप्रामाणिकता को लेकर भी विद्वानों के बीच काफी वाद–विवाद हुआ। माताप्रसाद गुप्त और वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे विद्वान इसे प्रक्षिप्त मानते हैं। उनका तर्क यह है कि यह खण्ड पद्मावत की उपलब्ध सभी प्रतियों में नहीं मिलता और जिन एक–दो प्रतियों में मिलता है वे 'पाठ–परम्परा में सबसे नीची पीढ़ी' में आती हैं। इस खण्ड में निर्दिष्ट अन्योक्ति की व्याख्या के पद्मावत पर पूर्णरूपेण घटित न होने को भी इसके प्रक्षिप्त होने का कारण बताया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और गोविन्द त्रिगुणायत जैसे विद्वान इन तर्कों को नहीं मानते। गोविंद त्रिगुणायत का मानना है कि हिन्दू समाज में और खासकर हिन्दू विद्वानों के बीच अपनी रचना को सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए ही जायसी ने ग्रंथ के अंत में सूफी और योगशास्त्र के गम्भीर सिद्धांतों

टिप्पणी

की प्रतिष्ठा की। इसीलिए उन्हें अन्योक्ति और समासोक्ति शैलियों का आश्रय लेना पड़ा है। अन्योक्ति को हिन्दू समाज में लोकप्रिय बनाने के लिए ही इन अवतरणों में उसकी व्याख्या भी दी गयी है। इस खण्ड की भाषा में जैसा प्रवाह और अभिव्यक्ति–सौष्ठव है उसको देखकर भी यह जायसी कृत ही लगता है।

उपसंहार खण्ड

1. *मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा*
चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहिं
तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा
गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू
प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु
तुरकी, अरबी, हिंदुई, भाषा जेती आहिं।
जेहि महै मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि।।

शब्दार्थ : एहि = इसका। **अरथ** = अर्थ, मतलब। **पंडितन्ह** = पंडितों से। **बूझा** = पूछा। **हम्ह** = हमें। **किछु और न** = कुछ और नहीं। **सूझा** = समझ में आना। **उपराहिं** = ऊपर। **माहिं** = अंदर, भीतर। **चितउर** = चितौड़ (राजस्थान प्रांत का एक क्षेत्र जिसका राजा रत्नसेन था)। **हिय** = हृदय। **बुधि** = बुद्धि। **सुआ** = सुग्गा। **पंथ** = रास्ता। **निरगुन** = निर्गुण, ईश्वर। **पावा** = पाना। **बाँचा** = समझना। **सोइ** = वही। **सैतानू** = शैतान, राक्षस। **अलाउदीं** = दिल्ली का सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी। **बूझि लेहु** = समझ लेना। **जो बूझै पारहु** = जो समझना चाहता है।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ भक्तिकाल की निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि जायसी की प्रतिनिधि रचना 'पद्मावत' के अंतिम खंड उपसंहार खण्ड से ली गयी हैं। जायसी ने हिन्दी में प्रेमाख्यानक काव्यों की परंपरा को शिखर पर पहुँचा दिया। उपसंहार खंड की विशेषता यह है कि इसमें जायसी ने 'पद्मावत' की कथा की सूफी व्याख्या के सूत्र दिये हैं। बहुत से विद्वान इसे प्रक्षिप्त मानते हैं।

प्रसंग : इस पद में जायसी ने 'पद्मावत' के सभी प्रमुख पात्रों का प्रतीकात्मक अर्थ स्पष्ट किया है जिसके द्वारा समस्त कथा का अन्योक्तिपरक अर्थ स्पष्ट होता है। इस पद से पता चलता है कि जायसी का लक्ष्य केवल प्रेमकथा ही कहना नहीं था बल्कि सूफी मत की प्रतिष्ठा करना भी था।

व्याख्या : जायसी कहते हैं कि मैंने इस कथा के आध्यात्मिक अर्थ को पंडितों से पूछा जिसके जवाब में उन्होंने उत्तर दिया कि हमें इस कथा के निम्नलिखित अर्थ के अतिरिक्त और कुछ समझ नहीं आया। इस ब्रह्मांड में कुल चौदह भुवन हैं जिनमें से सात ऊपर और सात नीचे हैं। ये चौदहों भुवन जिस प्रकार ब्रह्मांड में हैं उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में भी पाये जाते हैं। 'पद्मावत' की कथा का अन्योक्तिपरक अर्थ करते हुए आगे पंडितों ने कहा

टिप्पणी

कि इस कथा में आया हुआ चितौड़गढ़ वास्तव में शरीर है, राजा रतनसेन मन है, सिंहलगढ़ हृदय है, पद्मावती बुद्धि है, हीरामन तोता गुरु है जिसने रतनसेन को प्रेम का मार्ग दिखाया। दरअसल इस जगत में ऐसा कोई नहीं है जो बिना गुरु के उस निर्गुण परमात्मा को पा सके। नागमती रानी भवबंधन रूप हैं अर्थात सांसारिक बंधनों का प्रतीक है। जो भी नागमती रूपी सांसारिक बंधनों को समझकर उसमें नहीं फंसता है वही प्रपंच–जाल से बच पाता है। राघव और चेतन शैतान के रूप हैं और सुलतान अलाउद्दीन माया रूप है। 'पद्मावत' की प्रेम कथा को इन्हीं रूपकों के आधार पर विचार करना चाहिए। जो इस रूपक या अन्योक्ति का अर्थ समझ सकता है उसे समझ लेना चाहिए और इस ज्ञान को मन में धारण कर लेना चाहिए।

तुर्की, अरबी, हिन्दी आदि जितनी भाषाएँ हैं और इनमें जहाँ कहीं भी प्रेम मार्ग का वर्णन किया गया है उस प्रेम मार्ग की सराहना लोग निष्पक्ष भाव से करते हैं।

विशेष : जायसी ने इस चौपाई के माध्यम से 'पद्मावत' की कथा का अन्योक्तिपरक संकेत उसे भारतीय समाज में प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से ही दिया था। उन्हें पता था कि हिन्दू विद्वान तब तक इस रचना को स्वीकार नहीं करेंगे जब तक इसकी व्याख्या उनकी विचारधारा के अनुसार नहीं होगी।

प्रत्यक्ष रूप से भले ही इसका अन्योक्तिपरक अर्थ भारतीय विद्वानों की विचारधारा के अनुकूल है लेकिन परोक्ष रूप से इसमें सूफी सिद्धांत को भी प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है।

उपर्युक्त अवतरण में गुरु के प्रति अटूट आस्था प्रकट की गयी है जिसमें कबीर आदि ज्ञानमार्गी संतों का प्रभाव देखा जा सकता है। जायसी की तरह ही कुछ अन्य सूफी कवियों ने भी गुरु के प्रति आस्था प्रकट की है, जैसे– 'जा कह गुरु न पंथ दिखावा। सो अन्धा चारिहु दिसि धावा' (उसमान। 'चित्रावली')

2. *मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा।।*
जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई।।
औ मन जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।।
कहाँ सो रतनसेन अब राजा। कहाँ सुआ अस बुधि उपराजा।।
कहाँ अलाउदीन सुलतानू। कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू।।
कहँ सुरूप पदमावति रानी। कोइ न रहा, जग रही कहानी।।
धनि सोई जस कीरति जासू। फूल मरै, पै मरै न बासू।।
केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल।।
जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह सँवरै दुइ बोल।।

शब्दार्थ : मुहमद कवि = मुहम्मद कवि अर्थात स्वयं जायसी। **जोरी** = जोड़ना। **लाइ** = लगाकर। **रकत** = रक्त, खून। **लेई** = गोंद। **गाढ़ि** = गहरा। **प्रीति** = प्रेम। **नयनन्ह** = आखों के। **भेई** = भिगोना। **औ** = और। **मकु** = ताकि। **महं** = में। **चीन्हां** = पहचानना। **उपराजा** = उत्पन्न किया। **अस** = सा। **बुधि** = बुद्धि। **कहँ** = कहाँ। **सुरूप** = सुंदर। **काइ न रहा** = कोई भी अब नहीं रहा। **धनि सोई** = महान वही है। **जस** = जिसकी। **कीरति** = कीर्ति, यश। **केइ न जगत जस बेंचा** = किसने इस संसार में थोड़े के लिए अपना यश नहीं खोया? अर्थात बहुत से लोग ऐसे हैं। **हम्ह सँवरै** = हमें याद करेगा। **दुइ बोल** = दो शब्दों में, दो।

टिप्पणी

संदर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : जायसी हिन्दी के अकेले प्रसिद्ध भक्तिकालीन कवि हैं जिन्हें अपने कवि होने का गौरव–बोध था। प्रस्तुत पद में जायसी अपनी कविता की महत्ता की प्रतिष्ठा कर रहे हैं। इन पंक्तियों में उन्होंने कथा का उपसंहार करते हुए अपने प्रबंध विधान के हेतुओं की ओर भी संकेत किया है।

व्याख्या : मुहम्मद कवि अर्थात स्वयं जायसी ने समय–समय पर लिखे गए प्रसंगों को जोड़कर एक व्यवस्थित प्रबंध के रूप में 'पदमावत' की रचना कर सबको सुनाया है। इस प्रबंध को जिसने भी सुना वह 'प्रेम की पीर (पीड़ा)' से पुलकित हुआ है। इसके विविध प्रसंगों, घटनाओं और कथा–सूत्र को कवि ने रक्त की लेई से जोड़ा है। इसमें जिस प्रगाढ़ प्रेम का वर्णन है वह नयनों के जल में भिगोकर रचित है अर्थात यह रचना कठिन विरह प्रधान है। मैंने जानबूझ कर इस प्रबंध को गीत संगीत में बाँधा है जिससे कि यह अमर हो जाये और इस जगत में यह मेरी पहचान बन कर रहे। जायसी की प्रकट लालसा थी कि 'पदमावत' के माध्यम से उसकी कीर्ति अमर हो जाये। पता नहीं अब रतनसेन नामक वह राजा कहाँ है और न जाने अब वह हीरामन तोता कहाँ है जिसने उसे ऐसी बुद्धि दी जिससे वह पदमावती के प्रेम में पड़ गया। अलाउद्दीन नामक सुलतान का भी अब कहीं अता पता नहीं है और न ही उस राघव चेतन का ही कहीं अस्तित्व है जिसने अलाउद्दीन के समक्ष पदमावती के सौंदर्य का बखान किया था। और सबसे बड़ी बात यह कि इस संसार में अब वह परम सुन्दरी पदमावती भी नहीं है जो इस समस्त कथा के केन्द्र में थी। इस कथा का कोई भी पात्र आज जीवित नहीं है, यदि आज इस जग में कुछ शेष है तो केवल उनकी कहानी शेष है। वास्तव में इस संसार में वही मनुष्य धन्य है जिसकी कीर्ति अमर है, क्योंकि मनुष्य तो मर जाता है लेकिन उसका यश अमर रहता है। जिस प्रकार फूल तो नष्ट हो जाता है लेकिन उसकी खुशबू बची रह जाती है।

इस जगत में ऐसा कौन है जिसने यश को बेचने और खरीदने की चेष्टा नहीं की है। तात्पर्य यह कि इस संसार में हर व्यक्ति यश की लिप्सा रखता है और मैंने भी इसी यश की कामना के लिए इस ग्रंथ की रचना की है। ताकि भविष्य में जो कोई भी इस कहानी को पढ़े वह हमें स्मरण करे और हमारे बारे में दो बातें कहे।

विशेष : प्रेमपीर सूफी साधना का केंद्रीय शब्द है। गुरु कृपा से जब सूफी साधक दिव्य सौंदर्य के मूर्त रूप उस परमात्मा की झलक पा लेने के पश्चात वापस संसार की ओर प्रवृत होता है तब उसका हृदय प्रेम की पीर या आध्यात्मिक विरह वेदना से व्यथित हो उठता है।

उपर्युक्त चौपाई की दूसरी पंक्ति में कथा के सूत्रों को जोड़ने के लिए रक्त की लेई का रूपक, जायसी पर फारसी प्रभाव को दर्शाता है। भारतीय परंपरा में रक्त की लेई जैसे रूपकों का प्रयोग कहीं नहीं दिखता। जायसी ने इस रूपक का प्रयोग 'पदमावत' की रचना में किये गये अपने कठिन श्रम को उद्घाटित करने के लिए किया है।

टिप्पणी

3. *मुहमद बिरिध बैस जो भई। जोवन हुत, जो अवस्था गई।।*
बल जो गएउ कै खीन सरीरु। दिस्टि गई नैनहि देइ नीरु।।
दसन गए कं पचा कपोला। बैन गए अनरुच देइ बोला।।
बुधि जो गई देइ हिय बौराई। गरब गएउ तरहुँत सिर नाई।।
सरवन गए ऊँच जो सुना। स्याही गई सीस भा धुना।।
भँवर गए केसहि देई भूवा। जोबन गएउ जीति लेइ जूवा।।
जौ लहि जीवन जोबन साथा। पुनि सो मीचु पराए हाथा।।
बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।।
बूढ़ी आऊ होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस ।।

शब्दार्थ : **बिरिध** = वृद्ध। **बैस** = वयस, उम्र। **जोबन** = यौवन। **खीन** = क्षीण। **सरी** = शरीर। **दिस्टि** = दृष्टि, **नैनहिं** = आखों में। **नी** = नीर, जल। **कपोला** = कपोल, गाल। **बैन** = वाणी। **अनरुच** = अरुचिकर। **हिय** = हृदय, दिल। **बौराई** = बावलापन। **तरहुंत** = नीचे की ओर। **नाई** = झुकाना। **घुना** = धुनी रूई। **भूवा** = काँस के फूल, घुवा। **सीस** = शिर। **रिस** = क्रोध से। **केइ यह दीन्ह असीस** = किसने व्यर्थ ऐसा आशीर्वाद दिया।

संदर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में जायसी ने अपनी वृद्धावस्था का बहुत ही मार्मिक चित्र खींचा है जिससे उनके जीवन के अंतिम दिनों की पीड़ा की अभिव्यक्ति होती है। इससे यह पता चलता है कि जायसी ने 'पदमावत' के अंतिम खंडों की रचना अपनी वृद्धावस्था के समय की थी। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि जायसी कम से कम सत्तर वर्ष की उम्र तक तो अवश्य ही जीये थे।

व्याख्या : मुहम्मद कवि कहते हैं कि वृद्धावस्था आ गयी है, यौवन जो कभी छाया रहता था वह अवस्था अब गुजर चुकी है। शरीर में पहले जो बल हुआ करता था वह इस शरीर को क्षीण (कमजोर) करके चला गया है। आंखों से दृष्टि चली गयी है या मंद पड़ गयी है और उसकी जगह नेत्रों में पानी ढल आया है। दांतों के झर जाने से कपोल (गाल) पिचक गये हैं, मधुर वचन चले गये हैं और अब मेरी वाणी किसी को अच्छी नहीं लगती। मेरी बुद्धि क्षीण हो गयी है और इस वजह से मेरा हृदय बावला हो गया है, मेरा सारा गर्व नष्ट हो गया है जिससे मेरा सिर झुक गया है। कानों के सुनने की शक्ति समाप्त हो गयी है और अब मुझे ऊँचा सुनाई पड़ने लगा है, मेरे बालों का कालापन भी समाप्त हो गया है और वे धुनी हुई रुई के समान सफेद दिखाई पड़ने लगे हैं। बालों की भंवरों जैसी कालिमा चली गयी है और वे धुआँ जैसे सफेद हो गये हैं। यौवन जीवन का जुआ जीत कर चला गया है। असल में जीवन का आनन्द तभी तक है जब तक यौवन है उसके बाद तो वृध्दावस्था में दूसरे के सहारे रहना मृत्यु के समान है।

बूढ़ा हो जाने के बाद जब अनचाहे ही सिर हिलता रहता है तो उसे देखकर ऐसा लगता है जैसे वह बूढ़ा बुढ़ापा आने के क्रोध में अपना सिर धुन रहा हो। पता नहीं किसने

अपनी प्रगति जांचिए

3. सूरदास किस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि है?
   (i) ज्ञानाश्रयी निर्गुण काव्य धारा
   (ii) प्रेमाश्रयी निगुर्ण काव्य धारा
   (iii) कृष्णभक्ति सगुण काव्य धारा
   (iv) रामभक्ति सगुण काव्य धारा

टिप्पणी

मुझे बूढ़ा होने का आशीष दिया था अर्थात लम्बी उम्र का आशीर्वाद दिया था जिसका दुष्परिणाम आज मुझे भुगतना पड़ रहा है।

विशेष : इस पद में वृद्धावस्था की दारुण व्यथा के चित्रण के माध्यम से जगत के मिथ्यात्व की ओर संकेत किया गया है।

2.5 तुलसीदास : सामान्य परिचय

तुलसीदास सगुणभक्ति काव्यधारा की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। ये हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। गोस्वामी तुलसीदास के जन्म को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। बेनीमाधवदास प्रणीत 'मूल गोसाईं–चरित' और महात्मा रघुबरदास रचित 'तुलसीचरित' में तुलसीदास का जन्म संवत 1554 की श्रावण शुक्ला सप्तमी बताया गया है। जबकि 'शिवसिंहसरोज' में संवत 1583 का उल्लेख है और सर जार्ज ग्रियर्सन ने उनका जन्म संवत 1589 बताया है। तमाम विचार–विमर्श के पश्चात तुलसीदास का जन्म संवत 1589 अर्थात सन 1532 को ही अधिक युक्तिसंगत स्वीकार किया गया है। तुलसीदास का देहावसान संवत 1680 अर्थात सन 1623 ई. में वाराणसी में हुआ था। इस विषय में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। तुलसीदास के जन्मस्थान के रूप में उत्तरप्रदेश के तीन स्थानों– राजापुर, सोरों और सूकरखेत– की चर्चा होती है। आचार्य शुक्ल ने सूकरखेत और सोरों को एक ही माना है जो सरयू के क़िनारे का एक पवित्र तीर्थ–स्थान है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सोरो को तुलसीदास का मूल जन्मस्थान स्वीकारा है।

जनश्रुतियों के अनुसार तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका बाल्यकाल बेहद विषम परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। बचपन में ही माता–पिता द्वारा त्याग दिये जाने के बाद बाबा नरहरिदास ने इनका पालन–पोषण किया और ज्ञान–भक्ति की शिक्षा दी। युवावस्था में उनमें यौवनोचित चंचलता का आवेग बहुत अधिक था जिसका ज़िक्र उनकी रचना 'विनय–पत्रिका' में बार–बार आता है। संभवतः इसी आधार पर उनके विषय में एक किंवदंती प्रचलित है कि एक बार जब उनकी पत्नी रत्नावली अपने पिता के घर चली गयीं तो उसका वियोग बर्दाश्त नहीं कर पाने के कारण बरसात में उफनती गंगा नदी को तैर कर उनसे मिलने उनके घर चले गये। इस पर रत्नावली ने उन्हें फटकारते हुए कहा कि 'मेरे ऊपर जितना प्रेम है, उतना यदि राम पर होता, तो तुम्हारा कल्याण हो जाता।' इस कथन से उन्हें इतनी गहरी चोट लगी कि वे विरक्त हो गये और गृह–त्याग कर नाना तीर्थों में भ्रमण करते हुए भगवत भजन में लीन हो गये।

तुलसीदास के नाम पर पचासों ग्रंथों की चर्चा होती है लेकिन उनके कुल बारह ग्रंथों को ही विद्वानों ने प्रामाणिक माना है, जिनमें छः छोटे और छः बड़े हैं। इन ग्रंथों का विवरण आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कुछ इस प्रकार दिया है– 1. रामचरित–मानस (रचनाकाल संवत 1631), 2. रामलला नहछू (जो संभवतः जनेऊ के अवसर को मन में रखकर लिखा गया था); 3. वैराग्य संदीपनी (संत–महिमा, संत–स्वभाव और शांति का वर्णन करनेवाली दोहा–चौपाइयों में लिखी छोटी–सी पुस्तिका); 4. बरवै रामायण (इसमें केवल 69 बरवै छंदों

टिप्पणी

का संग्रह है जिसमें रामकथा का क्रमबद्ध वर्णन है); 5. पार्वती–मंगल (164 छंदों में शिव–पार्वती विवाह का वर्णन); 6. जानकी–मंगल (216 छंदों में राम–जानकी विवाह का प्रसंग है); 7. रामाज्ञा प्रश्न (सात–सात दोहे के सात सप्तकोंवाले सात सर्ग हैं, सगुन विचारने के उद्देश्य से लिखा गया है); 8. दोहावली (भक्ति, नीति और वैराग्य विषयक 573 दोहों का संग्रह) 9. कवितावली (कवित्त, सवैया, छप्पय आदि छंदों का संग्रह, जिसमें छंद रामायणी कथा के कांडों के अनुसार संग्रह कर दिए गए हैं, पर कथा क्रम–बद्ध नहीं है); 10. गीतावली (लीला विषयक गीतों का संग्रह); 11. श्रीकृष्ण गीतावली के पद; 12. विनय–पत्रिका (विनय संबंधी गेय पदों का संग्रह)। इनमें रामचरित–मानस और अंतिम पाँच ग्रंथ बड़े हैं, बाकी छोटे।

2.5.1 तुलसीदास : पाठ्यांश

तुलसीदास के ये पद उनकी प्रसिद्ध रचना 'विनय पत्रिका' से लिये गये हैं। यह उनकी प्रौढ़ रचनाओं में से एक मानी जाती है। इसमें तुलसीदास ने भगवान के समक्ष अपने विनय का निवेदन किया है। इस रचना में एक ही विषयवस्तु को आधार बनाकर अपनी भावना के विविध रूपों, वर्णन विधान की विविध रूढ़ियों और अर्थ व्यंजना की विविध परिपाटियों का हृदय को छू लेने वाला वर्णन किया है। ब्रह्म और जीव के संबंध का बहुत ही सुंदर चित्रण इस रचना में हुआ है। संसार की निस्सारता, ईश्वर की सर्वव्यापकता, भक्त की दीनता, माया का प्रसार, ईश्वर की दयालुता का वर्णन 'विनय पत्रिका' के केन्द्र में है।

1. *कबहुँक अंब अवसर पाइ।*
   मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ
   दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
   नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ
   बूझिहैं सो है कौन कहिबी नाम दसा जनाइ।
   सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ
   जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।
   तरै तुलसिदास भव तव नाथ गुन गन गाइ

शब्दार्थ : अंब = सीता के लिए किया गया संबोधन, **कबहुँक** = कभी भी, **मेरिऔ** = मेरी, **सुधि** = याद, **द्याइबी** = दिलाना, **छीन** = क्षीण, कमजोर, **उदर** = पेट, **बूझिहैं** = पूछते हैं, **जानकी** = जनक की पुत्री होने के कारण सीता को जानकी भी कहते हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत पद हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित कवि तुलसीदास की रचना है। यह पद तुलसी की प्रसिद्ध रचना 'विनय पत्रिका' में संकलित है। 'विनय पत्रिका' तुलसीदास की प्रौढ़ रचना है जिसमें उन्होंने भगवान राम के समक्ष अपनी दीनता का प्रदर्शन कर अपनी शरण में लेने का निवेदन किया है। इसमें तुलसी की दास्य भक्ति का मनोहर रूप देखने को मिलता है, इसके साथ ही उनके विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना का भी प्रयास दिखता है। राम के प्रति अनन्य भक्ति का चित्रण 'विनय पत्रिका' का केंद्रीय भाव है।

टिप्पणी

प्रसंग : इस पद में गोस्वामी तुलसीदास सीताजी से निवेदन कर रहे हैं कि वे राम तक तुलसीदास की व्यथा–कथा को पहुँचा दें।

व्याख्या : हे माता, यदि कभी आपको अवसर मिले तो किसी करुण कथा के बहाने मेरी याद भगवान श्रीराम को जरूर दिला दीजिएगा। उनसे कहिएगा कि वह (तुलसीदास) अत्यंत दीन–हीन, सम्पूर्ण संसाधनों से हीन, अत्यंत कमजोर, मलीन मन वाला तथा पापियों में भी सर्वाधिक पाप करने वाला है। वह आपके नाम का सहारा लेकर अपना पेट पालता है और जगत में आपकी दासी के दास के रूप में विख्यात है। यदि प्रभु पूछते हैं कि वह कौन है तब मेरा नाम लेकर मेरी दशा से उन्हें भलीभांति अवगत करा दीजिएगा। मुझे पूरा विश्वास है कि कृपावत्सल भगवान श्रीराम द्वारा आप के मुख से मेरी दशा को सुन लेने मात्र से मेरी सारी बिगड़ी बातें बन जायेंगी। हे जगतजननी जानकी, यदि आप इस जन की (तुलसीदास की) अपनी वाणी द्वारा इतनी भी सहायता कर देती हैं यानि भगवान राम से मेरी सिफारिश कर देती हैं तो विश्वास मानिए कि यह पापी तुलसीदास आपके नाथ श्रीराम के गुणों का गान करता हुआ इस भवसागर को पार कर जायेगा।

विशेष: इस पद के माध्यम से पता चलता है कि तुलसीदास अपनी भक्ति के पूरा होने का सबसे बड़ा आधार सीता को ही मानते हैं इसीलिए उन्होंने उनसे व्यक्तिगत निवेदन किया है।

भारतीय समाज में पति के समक्ष पत्नी की बड़ी महिमा है। पत्नी के निवेदन का पति आमतौर पर अनादर और उपेक्षा नहीं करता। इस कारण ही तुलसीदास ने अपना निवेदन सीता के समक्ष किया है।

2. *ऐसी मूढ़ता या मनकी।*
   परिहरि राम भगति सुरसरिता आस करत ओसकन की।
   धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
   नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की।।
   ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
   टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की।
   कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि! जानत हौ गति जन की।
   तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन की।

शब्दार्थ : मूढ़ता = मूर्खता, **परिहरि** = त्यागना, **सुरसरिता** = देवनदी, **धूम** = धूम्र, धुँआ, **निरखि** = देखकर, **तृषित** = प्यासा, **बारि** = जल, **लोचन** = आँख, **गज** = फर्श, जमीन, **बिलोकि** = देखना, **सेन** = बाज पक्षी, **जड़** = मूर्ख, **आनन** = मुख या चोंच, **दुसह** = जिसे सहना कठिन हो, **पन** = प्रण।

संदर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : तुलसीदास इस पद के माध्यम से सांसारिक बंधनों में फँसे मनुष्य की उस मूर्खता का परिचय दे रहे हैं जिसके वशीभूत होकर वह असत्य और नश्वर वस्तुओं को ही सत्य मानकर आजीवन उसके पीछे भागता रहता है।

टिप्पणी

व्याख्या : इस मन की ऐसी मूर्खता है कि श्रीराम की भक्ति रूपी देवनदी को त्यागकर अपनी तृषा (प्यास) बुझाने के लिए ओस की बूँदों पर भरोसा करता है। मतलब यह कि भगवान की भक्ति देवनदी गंगा की तरह पवित्र है जबकि सांसारिक जरूरतें ओस की बूँदों की तरह नश्वर, लेकिन मनुष्य अपनी अज्ञानता के कारण सांसारिक चाहतों के लिए भगवान की भक्ति से मुँह मोड़ लेता है। इस सत्य को तुलसीदास दो उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करते हैं।

जैसे चातक नामक पक्षी धुएँ के समूह को देखकर भ्रम के कारण उसे बादलों का समूह समझ लेता है लेकिन धुएँ के उस समूह में न शीतलता है, न जल है, उल्टे उससे आंखों की हानि ही होती है। इसी प्रकार मनुष्य इस संसार को ही सत्य मानकर तमाम कठिनाइओं के बीच पिसता रहता है जबकि उसे समझना चाहिए कि इस ब्रह्मांड में केवल ब्रह्म ही सत्य है बाकी सब भ्रम है।

जैसे मूर्ख बाज पक्षी चमकते हुए फर्श में अपने ही शरीर की छाया देखकर उसे कोई अन्य पक्षी समझ लेता है और बेचैन होकर उसे खाने के लिए उस पर टूट पड़ता है, लेकिन इस मूर्खता की वजह से उसके मुख या चोंच की ही हानि होती और आहार या भोजन भी नहीं मिलता। इसी प्रकार सांसारिक माया–मोह में फँसे हुए इंसान को न माया मिलती है और न ही राम, उल्टे उसका मनुष्य जीवन भी व्यर्थ चला जाता है।

अंत में तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु मेरी भी स्थिति इस चातक और बाज पक्षी की तरह ही है। मैं अपनी कुचालों का वर्णन कहाँ तक करूँ, आप तो मेरी अवस्था से अच्छी तरह परिचित हैं। अतः हे प्रभु ! आप अपने भक्त तुलसीदास के मायाजनित असह्य कष्टों को दूर कीजिए और अपने प्रण की रक्षा कीजिए।

विशेष : चातक और पक्षी का उदाहरण देने के कारण इस पद में उदाहरण अलंकार का प्रयोग हुआ है।

अद्वैत वेदांत में सांसारिक भ्रम को समझाने के लिए 'धुएँ में बादल' और 'काँच में अपने ही बिम्ब' के भ्रम का उदाहरण दिया जाता है। तुलसीदास ने इन्हीं पारम्परिक उदाहरणों का उपयोग किया है। अपने भ्रम के माध्यम से तुलसीदास समस्त सांसारिक मनुष्यों को सचेत कर रहे हैं। पद की अंतिम पंक्ति में भगवान के जिस प्रण की रक्षा की बात तुलसीदास कर रहे हैं वह यह है कि भगवान अपने भक्त की आतुर पुकार सुनकर उसकी रक्षा करने के लिए अवश्य आते हैं।

3. *जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।*
काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे।।
कौन देव बराइ बिरद हित हठि हठि अधम उधारे।
खग मृग ब्याध पषान बिटप जड़ जवन कवन सुर तारे।।
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे।

टिप्पणी

शब्दार्थ : **तजि** = छोड़कर, **काको** = किसका, **पतित** = जिस इंसान का पतन हो गया हो, **पावन** = पवित्र, **जग** = संसार, **दीन** = गरीब, **बराइ** = बड़ाई, सम्मान, **अधम** = पापी, **खग** = पक्षी, **ब्याध** = शिकारी, **पषान** = पत्थर, **बिटप** = वृक्ष, **दनुज** = राक्षस।

सन्दर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में तुलसीदास भगवान की भक्तवत्सलता और उनके असीम सामर्थ्य का वर्णन करते हुए उनसे अपने दुखों के निवारण की प्रार्थना कर रहे हैं।

व्याख्या : तुलसीदास कह रहे हैं कि हे प्रभु! मैं तुम्हारे चरणों को छोड़कर और कहाँ चला जाऊँ? इस ब्रह्माण्ड में और किसका नाम पतित–पावन यानी पापियों को पवित्र करने वाला है? इस ब्रह्माण्ड में और कौन है जिसको गरीब और असहाय व्यक्ति इतने प्यारे हैं? तात्पर्य यह कि आपके जैसा कोई नहीं है जिसको गरीब इतने प्रिय हैं और जो पापियों को भी पवित्र करने का सामर्थ्य रखता है।

तुलसीदास आगे कहते हैं कि इस जगत में और कौन देवता है जो अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अत्यंत हठपूर्वक पापियों का उद्धार करता हो? इसके प्रमाण के लिए कवि भगवान द्वारा उपकृत किये गये लोगों की एक सूची प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि प्रभु आपने तो जटायु नामक पक्षी, मारीच नामक मृग, वाल्मीकि नामक बहेलिया, अहल्या नामक पत्थर, यमालार्जुन नामक जड़ वृक्ष और न जाने कितने यवनों (राम रावण युद्ध में मारे गये राक्षसों) को तारा या मुक्त किया है, भला आपके सिवा और कोई देवता है जिसने ऐसा किया हो?

इस ब्रह्माण्ड में देवता, दैत्य, मुनि, नाग, मनुष्य सभी माया के वश में हैं। आप ही बताइये तब भला मैं कैसे उनके हाथों अपने आप को समर्पित कर दूँ? इसका तात्पर्य यह कि तुलसीदास कह रहे हैं इस ब्रह्माण्ड का हर प्राणी माया के अधीन है ऐसे में प्रभु आप ही के द्वारा मेरी मुक्ति संभव है, तब आपके चरण को छोड़ कर किसी अन्य की शरण में जाने का क्या फायदा।

विशेष : राम के प्रति अनन्य–भक्ति का प्रदर्शन किया है।

भगवान विष्णु ने रामावतार के समय अहल्या, मारीच, जटायु और यवनों का जबकि कृष्णावतार के समय यमालार्जुन का उद्धार किया था। 'रामायण' के रचनाकार वाल्मीकि के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे बहेलिया थे। एक क्रौंच पक्षी के जोड़े का वध करने से जन्मी पीड़ा के बाद वे सन्यासी हो गये और राम के चरित को केन्द्र में रखकर भारत के आदिकाव्य 'रामायण' की रचना की। उनके इस कार्य से प्रसन्न होकर ईश्वर ने उन्हें जीवन–मरण के बंधन से मुक्त कर दिया।

2.5.2 तुलसीदास की भक्ति–भावना

भगवान के प्रति अनन्य प्रेम ही भक्ति है। इस आधार पर तुलसीदास हिन्दी के सबसे बड़े भक्त कवि हैं। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि, "भक्ति–रस का पूर्ण परिपाक जैसा तुलसीदासजी में देखा जाता है वैसा अन्यत्र नहीं। भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलम्बन के महत्व और अपने दैन्य का अनुभव परम आवश्यक अंग है। तुलसी के हृदय से इन दोनों

टिप्पणी

अनुभावों के ऐसे निर्मल शब्द–स्रोत निकले हैं, जिनमें अवगाहन करने से मन की मैल कटती है और अत्यंत पवित्र प्रफुल्लता आती है।" (तुलसी का भक्ति–मार्ग, 112)

'एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास' कहने वाले तुलसीदास का अपने राम के प्रति अनन्य प्रेम, उत्कट लगाव, असीम श्रद्धा, परम विश्वास और गहन समर्पण है जो उनकी भक्ति को प्रामाणिकता और प्रतिष्ठा प्रदान करता है। तुलसी की भक्ति का मूलाधार दैन्य है। वे अपने राम के समक्ष अपनी दीनता और उनकी महानता का निरन्तर बखान करते हैं। उन्हें लगता है एकमात्र राम का नाम ही वह सहारा है जिससे भवसागर को पार किया जा सकता है। आइए तुलसी की भक्तिभावना पर विस्तार से विचार करें–

इष्टदेव का स्वरूप : तुलसी के इष्टदेव राम हैं जो विष्णु के अवतार हैं। वे ब्रह्म होने के साथ–साथ दीनों पर दया करने वाले करुणानिधान भी हैं। इनके राम सगुण है एवं शक्ति, शील और सौन्दर्य के समुच्चय हैं। तुलसी ने 'विष्णु कोटि सम पालनकर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहरता' कहकर उनकी शक्ति का, 'जेहि समान अतिशय नहिं कोई। ताकर सील कस न अस होई' कहकर उनके शील का और 'कोटि मनोज लजावन हारे' कहकर उनके सौन्दर्य का वर्णन किया है। भक्तों के दुखों के हरण और संसार को पापियों से मुक्त करने के लिए उन्होंने अवतार ग्रहण किया है। राम के अनुग्रह की आकांक्षा केवल मनुष्यों को ही नहीं बल्कि देवताओं को भी है। राम भक्त–वत्सल हैं और अपने भक्तों पर निःस्वार्थ भाव से कृपा करते हैं। अत्यंत दीन और दुखी इन्हें बहुत प्यारे हैं और बड़े–से–बड़े पापी की पुकार पर भी एक क्षण में उसके कष्टों का निवारण करते हैं। वे समदर्शी और मंगलकर्ता हैं। तुलसी ने राम का मूल निवास 'परमधाम' और क्षीरसागर तथा उन्हें बैकुण्ठ का निवासी बताया है।

शक्ति, शील और सौन्दर्य की प्रतिष्ठा : कबीर ने अपने राम के सामर्थ्य और सूरदास ने अपने कृष्ण के सौन्दर्य को महत्व दिया लेकिन तुलसीदास ने अपनी भक्ति में राम के शक्ति, शील और सौन्दर्य तीनों की प्रतिष्ठा की, जिससे भक्तों की समस्त भावात्मिका प्रकृति के परिष्कार और प्रसार का भरपूर मौका मिला। मनुष्य का जीवन विशाल और उसकी भूमिका विस्तृत होती है। कोई भी मनुष्य सदैव आनन्द की अवस्था में नहीं रह सकता और वह सदैव दुखी भी नहीं हो सकता। तुलसी अपने राम को कर्म–क्षेत्र में उतारकर उनका चरित्र इस प्रकार गढ़ते हैं कि उसको पढ़कर मनुष्य के जीवन में सरसता, प्रफुल्लता, शक्ति, पवित्रता, साहस जैसे अनेकानेक सकारात्मक मनोभावों का जन्म होता है। तुलसी की भक्ति बैठे–ठाले का व्यापार नहीं जिसमें भक्त केवल भगवान के नाम का भजन कर दीन–दुनिया से बेखबर हो जाये। इसमें सदाचार और रूखे उपदेशों की शृंखला नहीं है। राम का चरित और उनकी भक्ति हमें जीवन के संघर्ष में प्रवीण बनाती है। उनके अनंत सौंदर्य का साक्षात्कार कर भक्त उनकी अनन्त शक्ति और शील की झलक पाता है जिसके सहारे भवसागर की तमाम बाधाओं को दूर करने में समर्थ होता है। तुलसीदास को पूरा भरोसा है कि राम के अनन्त–शक्ति–सौंदर्य–समन्वित अनन्त शील का आभास पाकर मनुष्यता के अन्तिम स्तर पर पहुँचा हुआ हृदय अवश्य द्रवीभूत होगा–

सुनि सीतापति शील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ।।

टिप्पणी

दैन्य भाव की प्रधानता : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने एक निबंध में तुलसीदास की भक्ति की एक प्रमुख विशेषता के रूप में दैन्य या लघुत्व की भावना को रेखांकित किया है। यदि आप अपने आराध्य के महत्व को अनुभव नहीं करेंगे तो उसके प्रति भक्ति संभव ही नहीं है, और आराध्य के महत्व की अनुभूति के बाद अपने लघुत्त्व का अहसास अपने आप ही हो जायेगा। तुलसी ने लिखा है–

"राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो?
राम सों खरो है कौन, मोसों कौन खोटो?"

राम की अनन्त शक्ति तथा शील और सौन्दर्य के समक्ष तुलसी को अपनी हीनता और अपने पापों का स्मरण हो आना स्वाभाविक है। तुलसी ने अपनी कमियों का जी खोलकर वर्णन कर अपने भीतर बैठे दंभ, अभिमान, छल, कपट जैसे भक्ति के बाधक तत्वों का परिहार कर लिया और शुद्ध चित से राम की भक्ति में लग गये। तुलसी के पदों में उपलब्ध दीनता का यह भाव उनकी आत्मगत कमजोरी और दोषों का वास्तविक आख्यान न होकर उस आन्तरिक शक्ति का एकत्रीकरण है जिसके सहारे वे भक्ति की राह में आने वाली अनेकानेक मुश्किलों का सामना करते हैं।

शरणागति की चाह : तुलसी की अदम्य आकांक्षा राम की शरणागति है। 'अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहहूँ निर्वाण, जनम जनम प्रभु राम पद यहु वरदान है आन।' कहने वाले तुलसी के लिए राम की सेवा का मौका निर्वाण से भी ज्यादा आनंददायक है। उनकी भक्ति के आदर्श हनुमानजी हैं जो राम के सबसे बड़े सेवक हैं। शरणागति की चाह तुलसीदास को दास्य भक्ति और सेवक–सेव्य भाव की ओर ले जाती है। तुलसी ने इस भाव को चरम तक पहुँचाया और 'राम ते अधिक राम कर दासा' कहकर राम के दास को राम से भी ज्यादा महत्व प्रदान कर दिया।

"सेव्य सेवक भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धांत विचारि।"

तुलसी ने अपने इष्टदेव के स्वरूप–चित्रण में उनकी शरणागत–वत्सलता का जितना मार्मिक और सूक्ष्म निर्देश किया है उतना किसी अन्य विशेषता का नहीं। उनके राम स्वयं कहते हैं कि पापी–से–पापी व्यक्ति भी यदि उनकी शरण में आ जाता है तो उसका मैं त्याग नहीं करता–'कोटि बिप्र अघ लागइ जाही। आये सरन तजउँ नहिं ताहीं।'

नवधा भक्ति : 'नवधा भगति कहौं मोही पाहीं' कहकर तुलसीदास ने अपने भक्ति–मार्ग में नवधा भक्ति को स्थान दिया। नवधा भक्ति के नौ प्रकार ये हैं– भगवान के नाम, रूप, गुण और प्रभाव आदि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण तथा उनका चरण–सेवन, पूजन, वन्दन करना, उनके प्रति दास्य भाव रखना, सख्य भाव की निष्ठा रखना और अपने आपको उनके समक्ष समर्पित कर देना। तुलसी ने 'रामचरितमानस' के आरम्भ में ही शिव–पार्वती, गरुड़–भुशुण्डि, भरद्वाज–याज्ञवल्क्य की रामकथा के प्रति जिज्ञासा और लगाव दिखाकर श्रवण, कीर्तन और स्मरण की महिमा की स्थापना कर दी है। शबरी और काकभुशुण्डी के द्वारा उन्होंने पूजन, वन्दन और अर्चन के बड़े ही मनोरम दृश्य निर्मित किये हैं परंतु प्रार्थना के क्रम में वे किसी भौतिक वस्तु के चढ़ावे की जगह राम के प्रति अनन्य लगाव को ही पर्याप्त मानते हैं– 'सबु करि माँगहिं एक फल राम चरन रति होउ।' तुलसी ने राम के नाम

टिप्पणी

को राम से बड़ा कहकर उनके नाम को पर्याप्त गौरव दिया है और उनके रूप के वर्णन में तो वे लीन ही हो जाते हैं। तुलसी की भक्ति का मुख्य स्वर दास्य भाव का है और राम के प्रति पूर्ण समर्पण राम की कृपा प्राप्ति का एकमात्र साधन। वे कहते हैं–

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे।

निष्काम भक्ति : तुलसी की भक्ति स्वार्थ से आबद्ध नहीं है। उसमें लेन–देन का भाव नहीं है। राम की भक्ति के बदले न उन्हें स्वर्ग चाहिए, न ही उत्तम गति चाहिए और न ही मुक्ति। उनके लिए तो भक्ति से मिलने वाला आनन्द ही पर्याप्त है। चाहत है तो बस इतनी कि जन्म–जन्मांतरों तक राम के चरणों की सेवा करने का मौका मिले। तुलसी लिखते हैं–

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहहूँ निर्वाण।
जनम जनम प्रभु राम पद यहु वरदान है आन।।

तुलसी ने अपने समस्त साहित्य में कहीं भी निर्वाण की चाहत व्यक्त नहीं की है। भवसागर वे पार करना चाहते हैं लेकिन वैकुण्ठ के लिए नहीं बल्कि राम के चरणारविन्द के लिए। भक्ति में उनके आदर्श हनुमान हैं, राम के अनन्य सेवक। तुलसी राम के प्रति प्रबल आसक्ति की कामना करते हैं और यही संदेश दूसरों को भी देते हैं कि– 'रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा।'

नामोपासना और सत्संग की महत्ता : तुलसी की भक्ति का मूलाधार नामोपासना है जो भगवद्–भक्ति का सरलतम और सर्वाधिक प्रभावी रूप है। तुलसी का मानना था कि जो फल अन्य युगों में यज्ञादि कर्मों के कठिन विधि–विधानों से प्राप्त होता था उसे कलियुग में मात्र राम–नाम के जाप से पाया जा सकता है। इस नाम–जप के लिए निष्काम प्रेम के अलावा किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा नहीं होती। तुलसी के लिए राम का नाम कलियुग के तमाम दोषों और बाधाओं का हरण करने वाला है। यह भव के बन्धनों को काटकर संसार सागर को पार कराने वाला सेतु है। गोस्वामीजी की व्यक्तिगत अनुभूति है–

"नाम रामको कल्पतरु कलिकल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदास।।"

उपासना का स्वरूप : उपासना का मूलाधार श्रद्धा है। श्रद्धा तीन प्रकार की होती है– सात्विकी, राजसी और तामसी। इस आधार पर उपासना के भी तीन प्रकार होते हैं। तुलसी की उपासना सात्विक है क्योंकि उनके उपास्य देवों के देव और विष्णु के अवतार राम हैं। राम के प्रति अनन्य, अखण्ड और अविचल प्रेम की प्रतिष्ठा ही गोस्वामीजी की उपासना है। इस अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने मीन और चातक को प्रेमी के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया है। जिस प्रकार मीन जल के बिना नहीं रह सकती और चातक स्वाति नक्षत्र की बूँद के बिना कोई अन्य जल ग्रहण नहीं करता वैसे ही राम का भक्त राम के सिवा किसी अन्य की उपासना नहीं कर सकता। तुलसी कहते हैं–

"सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।"

टिप्पणी

शुद्ध अंतःकरण और निःस्वार्थ भाव से इस चराचर जगत के कण–कण में राम की उपस्थिति मानकर उनकी अराधना करना ही रामोपासना का चरमोत्कर्ष है। तमाम प्रकार के विधि–विधानों में बँधी भक्ति को नकार कर तुलसी केवल शुद्ध हृदय से राम नाम के जाप को ही राम की भक्ति के लिए पर्याप्त मानते हैं।

2.5.3 तुलसीदास का समन्वयवाद

संसार के विकास के अबतक दो ही मार्ग बताये गये हैं– संघर्ष और समन्वय। भौतिकवादी विचारक द्वंद्व एवं संघर्ष को दुनिया के विकास का मूल कारण मानते हैं और आदर्शवादी चिंतक समन्वय को। कार्ल मार्क्स जैसे पश्चिमी विचारकों ने द्वंद्व को पर्याप्त महत्व दिया है। इसके विपरीत भारतीय चिंतकों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम' जैसे वाक्यों के माध्यम से दुनिया को अपना घर कहा और आपसी सद्भाव के द्वारा मानवता के विकास की नींव रखी। भारत का मध्यकाल धार्मिक असहिष्णुता, जातिगत भेदभाव, सांप्रदायिक संघर्ष और स्वार्थों की टकराहट का समय था। सत्ताधारी वर्ग में अकबर ने और साहित्य की दुनिया में तुलसीदास ने समन्वय की विराट चेष्टा के द्वारा भारतीय जनजीवन में सहिष्णुता और शांति का प्रसार किया। अकबर द्वारा 'दीन–ए–इलाही' जैसे धर्म के निर्माण का प्रयास भारतीय राजनीति में समन्वय की अभूतपूर्व पहल थी। तुलसी ने भी अपनी लेखनी द्वारा हिन्दू समाज में विद्यमान अनेकानेक भेदभावों को समाप्त करने की कोशिश की और अकबर की तुलना में ज्यादा सफल रहे। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी समन्वय–बुद्धि की प्रशंसा करते हुए 'हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास' में लिखा है कि, "तुलसीदास के काव्य की सफलता का एक रहस्य उनकी अपूर्व समन्वय शक्ति में है। उन्हें लोक और शास्त्र दोनों का बहुत व्यापक ज्ञान प्राप्त था। उनके काव्य ग्रंथों में जहाँ लोक विधियों के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण मिलता है, वहीं शास्त्र के गंभीर अध्ययन का भी परिचय मिलता है। लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंतन का, ब्राह्मण और चांडाल का, पंडित और अपंडित का समन्वय भी है। 'रामचरितमानस' आदि से अंत दो छोरों पर जानेवाली परा–कोटियों को मिलाने का प्रयत्न है। इस समन्वय का आधार उन्होंने रामचरित को चुना है। इससे अच्छा चुनाव हो भी नहीं सकता था।" (131)

शैव और वैष्णव का समन्वय : भारतीय धर्म–साधना में त्रिदेव के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की कल्पना की गयी है। इसमें ब्रह्मा को सृष्टि का निर्माता, विष्णु को उसका पालक और शिव को उसका संहारक माना जाता है। ब्रह्मा के नाम पर तो किसी संप्रदाय की स्थापना नहीं हुई, लेकिन विष्णु की पूजा करने वाले भारत में 'वैष्णव' कहलाये और शिव के उपासकों को 'शैव' कहा गया। तुलसी के पहले वैष्णवों और शैवों के बीच का विरोध भाव चरम पर था। इनके अनुयायियों के बीच खूनी संघर्ष चल रहा था। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में कथात्मक योजना के साथ–साथ स्पष्ट कथनों द्वारा इनके बीच समन्वय का ऐसा दृढ़ प्रयास किया कि आज यह सहज विश्वास करना भी कठिन है कि शैव और वैष्णव कभी अलग–अलग भी थे। तुलसी ने 'रामचरितमानस' में राम की कथा शिव के मुख से कहलवायी है और कई स्थलों पर स्वयं शिव राम को अपना इष्ट देव बताते हैं।

टिप्पणी

शिव कहते हैं– 'सोइ मम इष्ट देव रघुबीरा, सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।' और 'जपहिं सदा रघुनायक नामा, जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा।' दूसरी तरफ राम शिव को अपना आराध्य मानते हैं और जब सीता की खोज में समुद्र पार करने के लिए रामेश्वरम में सेतु का निर्माण करते हैं तब वहाँ विधिवत शिव की मूर्ति की स्थापना कर उनकी पूजा करते हैं–'लिंग थापि विधिवत करि पूजा'। राम अपने मुख से भी अनेक स्थलों पर शिव की प्रशंसा करते हैं और एक जगह पर तो शिव के विरोधियों को नरकगामी तक कह दिया गया है। राम के शब्द हैं–

'सिव द्रोही मम भगत कहावा, सो नर सपनहुँ मोहि न पावा।
संकर विमुख भगति चह मोरी, सो नारकी मूढ़ मति थोरी।
संकर प्रिय मम द्रोही, सिब द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्पभर, घोर नरक महुँ बास।"

इस पंक्ति के पश्चात किसी भी रामभक्त के लिए शिव या शिव–भक्त की उपेक्षा संभव नहीं थी।

वैष्णव और शाक्त का समन्वय : देवी अर्थात शक्ति की आराधना करने वाले भक्तों को शाक्त कहा जाता था। तुलसी के पहले 'शाक्त मत' भारत के बेहद शक्तिशाली मतों में से एक था। असम का 'कामाख्या मंदिर' शाक्त मतावलम्बियों का मुख्य केंद्र था। बंगाल और असम प्रांत में आज भी उनका प्रभाव है। शैवों और वैष्णवों के आपसी संघर्ष के अलावा उनकी लड़ाई शाक्तों से भी थी। तुलसी ने सीता और पार्वती को शक्ति का एक रूप कहकर राम और शिव से उनकी अभिन्नता और अधीनता स्थापित कर दी। 'रामचरितमानस' में तुलसी ने सीता को ब्रह्म की शक्ति बताकर उनकी प्रार्थना की और इस तरह शाक्तों के भीतर विद्यमान विद्वेष को समाप्त कर दिया। उन्होंने लिखा–

"नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।
भव–भव विभव पराभव कारिनि। विस्व विमोहनि स्ववस विहारिनि।।"

सगुण और निर्गुण का समन्वय : तुलसीदास और उनके पूर्ववर्ती निर्गुण कवियों के बीच राम का नाम बेहद लोकप्रिय था। विवाद सिर्फ इस बात पर था कि वे 'दशरथ–सुत' हैं या नहीं। निर्गुण कवि राम को ब्रह्म मानते थे और उनके नाम की महिमा का गुणगान करते थे। तुलसी ने अपने अनेक पदों में राम के नाम को ब्रह्म राम से बड़ा बताकर सहज ही सगुण और निर्गुण के विवाद को शांत कर दिया। उन्होंने लिखा है– 'जपहिं नाम जन आरति भारी, मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।' उन्होंने अपने राम को उन्हीं विशेषणों से नवाजा जिनका आरोपण निर्गुण कवि अपने ब्रह्म पर करते थे। निर्गुण और सगुण के अंतर को निरर्थक बताते हुए उन्होंने स्पष्ट घोषणा की–

"अगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे।।"

तुलसी का कहना है कि वेद, पुराण सबमें लिखा है कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है, दोनों समान हैं। निर्गुण ईश्वर ही भक्तों के प्रेम में बंधकर सगुण रूप धारण

टिप्पणी

करता है। इन दोनों का संबंध पानी और बर्फ जैसा है। इस तत्व ज्ञान के बाद सगुण और निर्गुण के विवाद के लिए कोई जगह ही नहीं बच पायी।

ज्ञान और भक्ति का समन्वय : निर्गुण मत को मानने वाले ज्ञान की महत्ता स्थापित करते थे जबकि सगुण मतावलंबी भक्ति की महिमा बखान करते थे। इस वजह से इनके बीच पर्याप्त विवाद था जिसकी मुखर अभिव्यक्ति कृष्णभक्त कवियों ने 'भ्रमरगीत प्रसंग' में की है। तुलसी का स्वाभाविक झुकाव भक्ति की ओर था लेकिन अपनी समन्वय–बुद्धि की वजह से वे ज्ञान और भक्ति के बीच किसी भी प्रकार का तनाव नहीं चाहते थे। उन्होंने ज्ञान की श्रेष्ठता की घोषणा करते हुए लिखा– 'कहहिं सन्त मुनि वेद पुराना, नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना' और भक्ति के विषय में उनकी राय थी कि, 'भक्ति सुतन्त्र सकल सुख खानी'। तुलसी अकेले ज्ञान को कठिन राह मानते थे– 'ग्यान क पन्थ कृपान की धारा'। वे ज्ञान और भक्ति के मेल में ही भगवान से मिलन की राह संभव देख रहे थे–'स्रुति सम्मत हरि–भगति पथ संजुत बिरति विवेक'। इसी आधार पर उन्होंने ज्ञान और भक्ति के बीच अभेद की स्थापना की। उन्होंने लिखा कि, 'भगतिहि ग्यानहिं नहिं कछु भेदा, उभय हरहिं भव–सम्भव खेदा'। तात्पर्य यह कि ज्ञान और भक्ति में कोई अंतर नहीं दोनों ही सांसारिक कष्टों के निवारण और भगवान के साथ मेल कराने में सहायक हैं।

जातिगत भेदभाव के बीच समन्वय : तुलसी पर यह आरोप है कि उन्होंने वर्णाश्रम धर्म का समर्थन कर जातिगत भेदभाव को बढ़ावा दिया। 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकांड' में कलिकाल वर्णन के दौरान उन्होंने जातिगत असमानता की समाप्ति को कलिकाल के आगमन की वजह बताया और द्विजों की श्रेष्ठता की पुनर्स्थापना की। इस बात में सच्चाई है और इसकी वजह संभवतः सवर्ण समाज का तात्कालिक दबाव हो। इस संबंध में इस तथ्य पर भी ध्यान देना चाहिए कि 'रामचरितमानस' में द्विजों की श्रेष्ठता से संबंधित पंक्तियाँ कथा के प्रवाह में न आकर अनायास आती हैं जबकि द्विज और शूद्र की समानता के विचार कथा के मूल में स्थित हैं। अनेक स्थलों पर उन्होंने ब्राह्मणों को लोलुप और कामी तक कहा है– 'बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।' राम या 'रामचरितमानस' का कोई भी पात्र व्यवहार के स्तर पर निम्न जाति के किसी भी व्यक्ति से भेदभाव नहीं करता। क्षत्रिय राम और ब्राह्मण वशिष्ठ, शूद्र निषादराज को गले लगाते हैं। राम शूद्र शबरी के जूठे बेर खाते हैं। जंगल में रहने वाली तमाम अस्पृश्य जातियों को राम अयोध्यावासियों जैसा सम्मान देते हैं। तात्पर्य यह कि तुलसी का स्वाभाविक विवेक रामकथा में जातिगत असमानता का विरोध करता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तुलसी द्वारा शूद्र शम्बूक के वध को 'रामचरितमानस' से बाहर कर देना है। सैद्धांतिक स्तर पर भी तुलसी इस समस्त सृष्टि को राममय मानते हैं और इसमें स्थित किसी भी जीव के बीच भेदभाव का समर्थन नहीं करते। जगत के समस्त प्राणियों को राममय जानकर उनको नमन करते हुए तुलसी लिखते हैं– 'सियाराम मय सब जगु जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।'

राजा और प्रजा के बीच समन्वय : तुलसी का समय सत्ता का चरित्र जन–विरोधी था। मुस्लिम शासकों ने धार्मिक विद्वेष की वजह से बहुसंख्यक हिन्दू जनता पर अनेक कर लगाकर उनका जीना मुश्किल कर दिया था। राजा को अपने आनन्द के सामने जनता के असंख्य दुखों की कोई फिक्र नहीं थी। 'उत्तरकांड' और 'कवितावली' में

टिप्पणी

कलिकाल वर्णन के बहाने तुलसी ने अपने समय के भयानक सच को अभिव्यक्त किया है और 'रामराज्य' के रूप में उसका विकल्प प्रस्तुत किया है। 'कलिकाल' का सच यह है कि राजा पाप परायण है और धर्मविहीन होकर वह नित्य ही प्रजा को दंडित करता है– 'नृप पाप परायन धर्म नहीं। कर दंड विडंब प्रजा तिनहीं।' तुलसी के अनुसार राजा और प्रजा के बीच पिता–पुत्र का संबंध होना चाहिए। 'रामचरितमानस' के 'अयोध्याकांड' में 'चित्रकूट प्रसंग' के दौरान राम–भरत के बीच हुए संवाद में राजा–प्रजा की भूमिका का निर्धारण और उनके बीच समन्वय के सूत्र दिये गये हैं। 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी' के धमकी भरे सत्य का उद्घाटन करने वाले तुलसी के लिए राजा और प्रजा के बीच मुख और शरीर के अन्य अंगों जैसा संबंध या समन्वय होना चाहिए। श्रम करे कोई, खाये कोई, लेकिन उसका लाभ सबको समान रूप से मिले। तुलसी का कथन है–

"मुखिया मुखु सों चाहिए, खान–पान कहुँ एक।
पालदू पोषदू सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।"

पारिवारिक क्षेत्र में समन्वय : परिवार समाज का केन्द्र–बिन्दु होता है। यहां प्राप्त आदर्श और विचार ही मानवीय व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। तुलसी के 'रामचरितमानस' के केन्द्र में परिवार है। पारिवारिक मूल्य और मर्यादा की जैसी रचना 'रामचरितमानस' में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। पिता–पुत्र, माता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–भाई, मालिक–दास, सास–बहू के बीच किस तरह का संबंध होना चाहिए इसका आदर्श रूप इस रचना में उपलब्ध है। उत्तर भारतीय समाज पर 'रामचरितमानस' का इतना प्रभाव है कि आज भी पारिवारिक संबंधों में जब कभी भी तनाव उत्पन्न होता है तब इसकी चौपाइयाँ उसके समाधान में मदद करती हैं। तुलसी परिवार में मर्यादा का बहुत महत्व देते हैं क्योंकि मध्यकालीन समाज के अनुभवों से उन्होंने जाना था कि इसका अभाव परिवार को ही युद्ध का रक्तरंजित मैदान बना देगा। तुलसी ने पारिवारिक मर्यादा के सूत्रों का सृजन कर भारतीय परिवारों में समन्वय की बेजोड़ कोशिश की। इसके अभाव में भारतीय कुटुम्ब में जुड़ाव शायद कम होता।

लोक और शास्त्र का समन्वय : तुलसी संस्कृत और उसमें रचित शास्त्र के बहुत बड़े ज्ञाता थे लेकिन उन्होंने अपनी रचना का माध्यम अवधी और ब्रज जैसी लोकभाषाओं को बनाया। तुलसी को पता था कि संस्कृत का ज्ञान समाज के सीमित वर्ग के पास ही है और वे चाहते थे कि शास्त्र का ज्ञान जन–जन तक पहुँचे। तुलसी ने राम की कथा भी केवल संस्कृत परंपरा के आधार पर ही नहीं रची बल्कि उसमें अवध प्रांत की लोककथाओं और लोकशैलियों का भी समन्वय किया। 'रामचरितमानस' में तुलसी ने लिखा कि इसमें प्रस्तुत रामकथा आगम (लोक–परंपरा) और निगम (वैदिक–बौद्धिक परम्परा शास्त्र) दोनों परम्पराओं के मेल से रचित है– 'नाना पुराण निगमागम सम्मत तुलसी रघुनाथ गाथा।' तुलसी ने अपनी अनेक रचनाएँ लोक में उपलब्ध काव्य–रूपों में किया है। 'राम लला नहछू', 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' में अवध प्रांत में प्रचलित लोकशैलियों का पर्याप्त प्रयोग किया गया है।

संस्कृत एवं लोकभाषाओं का समन्वय : तुलसी का भाषा पर असमान्य अधिकार था। उनकी कविता को पढ़कर यह तय कर पाना कठिन है कि अवधी और ब्रज जैसी

टिप्पणी

भाषाओं का उन्हें अधिक ज्ञान था या संस्कृत का। 'रामचरितमानस' में संस्कृत मे लिखे श्लोकों को पढ़कर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इस रचना को संस्कृत में लिख देने की उनके पास योग्यता थी, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि उनका उद्देश्य राम के चरित को आम जन तक पहुँचाना था। 'रामचरितमानस' के साथ–साथ अपनी अन्य रचनाओं में भी तुलसीदास ने संस्कृत और लोकभाषाओं के बीच समन्वय की अद्भुत चेष्टा की है। उनकी रचनाओं में लोकभाषाओं के साथ संस्कृत का बड़ी चतुराई के साथ मिश्रण किया गया है। इस कारण उनकी भाषा में दुर्लभ लचीलापन अवसरानुकूल भाषिक प्रयोग देखने को मिलता है। 'रामचरितमानस' में भगवान की आराधना देववाणी संस्कृत में की गयी है जबकि उनका चरित लोकभाषाओं में गाया गया है। चरित्र के अनुसार भी उनकी भाषा में परिवर्तन होता है। निषाद की भाषा जितनी सरल और अकृत्रिम है, वशिष्ठ की भाषा उतनी ही विद्वतापूर्ण और गूढ़।

रामकथा में समन्वय : तुलसी ने रामकथा का आधार भले ही वाल्मीकि से लिया हो लेकिन अपने समय के अनुकूल बनाने के लिए उसमें पर्याप्त बदलाव किया। वाल्मीकि के राम आम आदमी की तरह व्यवहार करते हैं जबकि तुलसी हर पंक्ति में यह घोषणा करते हैं कि उनके राम आम इंसान न होकर विष्णु के अवतार हैं। भारतीय समाज में राम नाम प्राचीन काल से ही सर्वस्वीकार्य रहा है। हिन्दू, बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त आदि तमाम संप्रदायों में राम की कथा का प्रचलन और प्रभाव रहा है। भारत की शायद ही कोई भाषा हो जिसमें किसी–न–किसी प्रकार से रामकथा का प्रचलन न हो। कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्म को इसीलिए राम का नाम दिया। विभिन्न संप्रदायों में विभक्त भारतीय समाज की एकता के लिए ही तुलसी ने रामकथा को अपने दर्शन का आधार बनाया और उसमें तमाम संप्रदायों और दर्शनों का समावेश कर दिया। उन्होंने अपने राम को कई स्थलों पर 'गरीब नवाज' कहा है जो कहीं–न–कहीं हिन्दू और इस्लाम धर्म के बीच की खाई को पाटने की ही कोशिश लगती है। तुलसी की विशाल लोकप्रियता और सर्वस्वीकार्यता का रहस्य भी यही है। उनके राम में हर भाषा और समुदाय का व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देख सकता है। तुलसी द्वारा रामराज्य की परिकल्पना समन्वय की उनकी विराट चेष्टा का काल्पनिक मूर्त रूप है। उनके राम के राज्य में किसी प्रकार का द्वेष और अशांति नहीं है। वहाँ कोई भी दुखी नहीं है। राम–राज्य के विषय में उन्होंने रोग और परेशानियों की नाम मात्र की उपस्थिति भी नहीं है। राम–राज्य के विषय में उन्होंने लिखा है– 'राम राज बैठे त्रैलोका, हरषित भए गए सब सोका' और 'दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज नहिं काहुहिं व्यापा'।

2.6 पारिभाषिक शब्द

अद्वैतवाद : यह शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित एक दार्शनिक सिद्धांत है। इसके अनुसार केवल ब्रह्म सत्य है बाकी सब मिथ्या या झूठ है। शंकराचार्य का मानना था कि यह समस्त संसार मिथ्या है। माया के प्रसार के कारण हम इस मिथ्यात्व को समझ नहीं पाते और भ्रम की स्थिति में रहते हैं। ज्ञान द्वारा जब किसी व्यक्ति को इसका अहसास होता है तब वह माया के भ्रम को तोड़कर ईश्वर से मिल जाता है। 'अद्वैत' का मतलब है जीव और ब्रह्म का

एक होना। माया इन दोनों को अलग करता है और ज्ञान इनके पार्थक्य को समाप्त कर देता है।

टिप्पणी

एकेश्वरवाद : अद्वैतवाद और एकेश्वरवाद को एक ही मानने की गलती की जाती है जबकि इन दोनों में मूलभूत अंतर है। एकेश्वरवाद में एक ईश्वर की परिकल्पना की जाती है जिसने इस दुनिया और हम इंसानों को बनाया। इस विचार के अनुसार ईश्वर और जीव अलग–अलग हैं। दोनों कभी एक नहीं हो सकते। जबकि अद्वैतवाद के अनुसार जीव और ईश्वर में मूलतः कोई अंतर नहीं है। इस्लाम, ईसाइयत और यहूदी एकेश्वरवादी धर्म हैं लेकिन इसके मानने वाले अद्वैतवादी नहीं हैं।

सूफी : इस्लाम के रहस्यवादी 'सूफी' नाम से जाने जाते हैं। सूफियों के दर्शन को तसव्वुफ कहा जाता है। सूफी ऐसे साधक हैं जो परमात्मा के प्रेम में लीन रहते हैं। ये इस्लाम को मानते हैं लेकिन इन्होंने इस्लाम की कई मान्यताओं में बदलाव भी किया। संगीत इनके लिए अल्लाह की आराधना का साधन है। निजामुद्दीन औलिया और मोइनुद्दीन चिश्ती भारत के प्रमुख सूफी संत रहे हैं।

2.7 सारांश

कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा भगवान की भक्ति का सीधा और सरल मार्ग दिखाया। शास्त्रीय ज्ञान को चुनौती देते हुए कबीर ने आँखिन देखी ज्ञान या अनुभवजनित ज्ञान की महत्ता स्थापित कर अशिक्षित आम जनता के बीच गौरव का भाव भर दिया। उन्होंने अपने समय और समाज में फैली तमाम तरह की कुरीतियों पर सीधे–सादे तर्कों के द्वारा अचूक प्रहार कर उसमें बदलाव का प्रयास किया। उनकी भक्ति और कविता भारतीय समाज के अत्यंत पिछड़े समुदाय को संबोधित थी जिससे भारत की बहुसंख्यक आबादी के बीच इनको अपार लोकप्रियता हासिल हुई।

सूरदास हिन्दी की सगुण भक्ति धारा की कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वाधिक प्रसिद्ध और प्रतिनिधि कवि हैं। ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य और उनसे उम्र में केवल दस दिन छोटे थे।

ऐसी जनश्रुति है कि वल्लभाचार्य से मुलाकात के पहले सूरदास केवल भगवान की दास्य–भक्ति में मगन रहते थे और विनय के पद लिखते थे, उन्हें भगवान की लीला का कोई ज्ञान नहीं था। वल्लभाचार्य ने उन्हें भगवान के नाम का स्मरण कराया और 'भागवत' के 'दशमस्कंध' की अनुक्रमणिका सुनाकर उन्हें भगवत–लीला का वर्णन करने का आदेश दिया। आगे चलकर जिस 'वात्सल्य–वर्णन' और 'भ्रमरगीत–सार' के लिए सूरदास की प्रसिद्धि हुई वह इस लीला–वर्णन का ही एक अंग है।

अपनी प्रगति जांचिए

4. तुलसीदास किस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं?
   (i) ज्ञानाश्रयी निर्गुण काव्य धारा
   (ii) प्रेमाश्रयी निर्गुण काव्य धारा
   (iii) कृष्णभक्ति सगुण काव्य धारा
   (iv) रामभक्ति सगुण काव्य धारा

जायसी भक्तिकाल की निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका पूरा नाम मलिक मोहम्मद जायसी था। ये उत्तर प्रदेश के जायस नामक स्थान में रहते थे।

टिप्पणी

जायसी भक्तिकाल के अकेले प्रमुख कवि हैं जिन्हें अपने कवि होने का अभिमान है। वे सूफी बाद में हैं कवि पहले। अपने कवि, और श्रेष्ठ कवि होने का जिक्र जायसी ने 'पद्मावत' में बार–बार किया है। 'पद्मावत' के अंत में वे लिखते हैं–

'मुहमद यहि कबि जोरि सुनावा। सुना सो पेम पीर गा पावा।।
जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई।'

तुलसीदास सगुणभक्ति काव्यधारा की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। ये हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं।

तुलसीदास के नाम पर पचासों ग्रंथों की चर्चा होती है लेकिन उनके कुल बारह ग्रंथों को ही विद्वानों ने प्रामाणिक माना है, जिनमें छः छोटे और छः बड़े हैं। इन ग्रंथों का विवरण आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कुछ इस प्रकार दिया है– 1. रामचरित–मानस (रचनाकाल संवत 1631), 2. रामलला नहछू (जो संभवतः जनेऊ के अवसर को मन में रखकर लिखा गया था); 3. वैराग्य संदीपनी (संत–महिमा, संत–स्वभाव और शांति का वर्णन करनेवाली दोहा–चौपाइयों में लिखी छोटी–सी पुस्तिका); 4. बरवै रामायण (इसमें केवल 69 बरवै छंदों का संग्रह है जिसमें रामकथा का क्रमबद्ध वर्णन है); 5. पार्वती–मंगल (164 छंदों में शिव–पार्वती विवाह का वर्णन); 6. जानकी–मंगल (216 छंदों में राम–जानकी विवाह का प्रसंग है); 7. रामाज्ञा प्रश्न (सात–सात दोहे के सात सप्तकोंवाले सात सर्ग हैं, सगुन विचारने के उद्देश्य से लिखा गया है); 8. दोहावली (भक्ति, नीति और वैराग्य विषयक 573 दोहों का संग्रह) 9. कवितावली (कवित्त, सवैया, छप्पय आदि छंदों का संग्रह, जिसमें छंद रामायणी कथा के कांडों के अनुसार संग्रह कर दिए गए हैं, पर कथा क्रम–बद्ध नहीं है); 10. गीतावली (लीला विषयक गीतों का संग्रह); 11. श्रीकृष्ण गीतावली के पद; 12. विनय–पत्रिका (विनय संबंधी गेय पदों का संग्रह)।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **आवेष्टित :** छिपा या घिरा हुआ।
- **परकोटा :** ऊंची और बड़ी चहारदीवारी।
- **मंगलाचार :** कार्य के पूर्व होने वाला मंगलगान।
- **समदर्शिता :** एक समान समझना।
- **संचयन :** संचय, संग्रह, संकलन।
- **उत्कर्ष :** शिखर, उन्नति।
- **एकाधिपत्य :** एक व्यक्ति का प्रभुत्व।
- **अवगाहन :** डुबकी लगाना, गहरा चिंतन।
- **अनिवर्चनीय :** जिसका वर्णन न किया जा सके।
- **व्युत्पन्न :** उत्पन्न।
- **प्रतिबिम्बित :** जिसकी परछाई पड़ती हो।

टिप्पणी

- **असहिष्णु** : सहन न करने वाला।
- **सांप्रदायिक** : संप्रदाय संबंधी, जातिगत
- **उपसंहार** : समाप्त।

2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. ज्ञानाश्रयी निर्गुण काव्य धारा।
2. प्रेमाश्रयी निगुर्ण काव्य धारा।
3. कृष्ण भक्ति सगुण काव्य धारा।
4. रामभक्ति सगुण काव्य धारा।

2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

क) मथुरा जावै द्वारिका, भावैं जावैं जगनाथ।
साध संगति हरि भगति बिन, कछू न आवै हाथ।।

ख) मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं, ह्वै है लाँबी–मोटी।
काढ़त–गुहत न्हवावत जैहै नागिनि सी भुइँ लोटी।

ग) तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।
गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।

घ) जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे।।
कौन देव बराइ बिरद हित हठि हठि अधम उधारे।
खग मृग व्याध पषान बिटप जड़ जवन कवन सुर तारे।।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. कबीरदास की भक्ति–भावना के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिये।
2. 'सूरदास का वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है।' इस कथन के आलोक में सूरदास के वात्सल्य–वर्णन पर विचार कीजिए।

टिप्पणी

3. जायसी की प्रेम साधना का परिचय दीजिए।
4. तुलसीदास की समन्वय भावना पर सोदाहरण विचार कीजिए।

2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. कबीर– हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
2. भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य– मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
3. लोकवादी तुलसीदास– विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
4. जायसी– विजयदेव नारायण साही।
5. त्रिवेणी– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

इकाई 3 कविता – 2

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 मीराबाई : सामान्य परिचय
3.2.1 मीराबाई : पाठ्यांश
3.2.2 मीरा की कविता में विद्यमान विद्रोह भावना
3.3 बिहारी : सामान्य परिचय
3.3.1 बिहारी की काव्यगत विशेषताएं
3.3.2 बिहारी की बहुज्ञता
3.4 घनानन्द : सामान्य परिचय
3.4.1 घनानन्द की प्रेम साधना और भक्ति
3.4.2 रीतिमुक्त कवि के रूप में घनानन्द का मूल्याकंन
3.5 मैथिलीशरण गुप्त : सामान्य परिचय
3.5.1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत की श्रेष्ठता
3.5.2 मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताएं
3.5.3 मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

मीराबाई भक्तिकाल की सर्वाधिक प्रमुख स्त्री रचनाकार और मध्यकाल का प्रामाणिक स्त्री स्वर हैं। उनकी कविताओं में नारी की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। उनका साहित्य पुरुष सत्ता के प्रति विद्रोह के भाव से परिपूर्ण है। मीरा किसी संप्रदाय में दीक्षित नहीं हुई थीं। वे कृष्ण की भक्त थीं और उनके सगुण–निर्गुण दोनों रूपों की आराधना करती थीं। बिहारी और घनानन्द रीतिकाल की दो धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। बिहारी रीतिकाल की परंपरा को पूरी तरह से अपने भीतर समाहित किये हुए हैं तो घनानन्द उस परंपरा को नकार कर अपनी राह बनाते हैं। इन दोनों की रचनाओं का अध्ययन आपको रीतिकाल का समग्र परिचय करायेगा। मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक काल के पहले प्रमुख कवि हैं। इनके काव्य में द्विवेदीयुगीन साहित्य की समस्त प्रवृतियों का समावेश है। खड़ी बोली हिन्दी का बहुत ही साफ–सुथरा रूप इनकी रचनाओं में मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना का मुखर स्वर विद्यमान है। भारतीय युवाओं के भीतर राष्ट्रीयता की भावना को जन्म देने में इनकी रचनाओं की बड़ी भूमिका है।

टिप्पणी

इस इकाई में आप भक्तिकाल की अंतिम कवयित्री मीरा, रीतिकाल के दो प्रमुख कवियों बिहारी और घनानन्द तथा आधुनिक काल के खड़ी बोली हिंदी के प्रमुख कवि मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य से परिचित हो सकेंगे।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में पढ़ने के बाद आप–

- मीरा, बिहारी, घनानन्द और मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं की व्याख्या कर पाएंगे;
- मीरा की भक्ति–भावना और उनकी विद्रोही चेतना के मूल तत्त्वों से परिचित हो पाएंगे;
- रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी की काव्यगत विशेषताओं और बहुज्ञता का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे;
- रीतिमुक्त धारा के प्रतिनिधि कवि घनानन्द की प्रेम और भक्ति भावना से परिचित हो पाएंगे;
- मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताओं और राष्ट्रीय चेतना की विशेषताओं को समझ पाएंगे।

3.2 मीराबाई : सामान्य परिचय

मीराबाई भक्तिकाल की सर्वाधिक प्रख्यात कृष्णभक्त कवयित्री हैं। मीरा जोधपुर शहर के संस्थापक विख्यात राठौर राजा जोधाजी (1415–1488 ई.) के पुत्र राव दूदा एवं कुसुम कुंवर बाई की इकलौती संतान थीं। इनका जन्म सन 1504 में हुआ था। जन्म के दो वर्ष बाद ही इनकी माताजी का देहांत हो गया। सन 1516 में मीरा का विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध राजा महाराणा साँगा के पुत्र कुंवर भोजराज के साथ हुआ। कुल सात वर्ष बाद ही सन 1523 में मीरा के पति भोजराज का देहांत हो गया। पति की मृत्यु के बाद मीरा को विधवा का जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया लेकिन वह नहीं मानीं। बचपन से ही मीरा का लगाव कृष्ण के प्रति था। पति की मृत्यु के बाद वे पूरी तरह से कृष्ण की भक्ति में मगन हो गयीं। धीरे–धीरे उनका यह लगाव इतना अधिक बढ़ने लगा कि मीरा राजमहल की दीवारों से बाहर निकलकर साधुओं के साथ भगवद भजन करने लगीं। यह बात उनके देवर विक्रमजीत सिंह को पसंद नहीं थी। उसने मीरा को मारने के कई प्रयास किये। मीरा की कविता में उसी को 'राणा' कहकर संबोधित किया गया है। सन 1534 में जब गुजरात के राजा बहादुरशाह ने मेवाड़ पर अधिकार कर लिया तो मीरा अपने नैहर मेड़ता चली गयीं लेकिन कुछ ही वर्षों बाद सन 1538 में जोधपुर के राजा मालदेव ने मेड़ता को जीत लिया। मीरा इन सब परिस्थितियों से परेशान होकर तीर्थाटन पर निकल गयीं। इसी दौरान वृन्दावन में उनकी मुलाकात जीवगोस्वामी से हुई। वृन्दावन से होते हुए मीरा कृष्ण की नगरी द्वारिका

टिप्पणी

चली गयीं और यहीं कई वर्षों तक रहीं। मीरा की मृत्यु के विषय में कोई स्पष्ट सूचना नहीं है। कहा जाता है कि मीरा यहीं एक दिन कृष्ण की मूर्ति में विलीन हो गयीं। डॉ नगेन्द्र ने इनकी मृत्यु सन 1558 से सन 1563 के बीच मानी है।

मीरा अपने पदों का गायन करती थीं जिसका बाद में उनके भक्तों द्वारा संकलन किया गया। डॉ नगेन्द्र ने मीरा की पूर्ण–अपूर्ण ग्यारह रचनाओं का उल्लेख किया है– गीतगोविंद की टीका, नरसी जी का मायरा, राग सोरठा के पद, मलार राग, राग गोविंद, सत्यभानु रूसणं, मीरां के गरबी, रुक्मणीमंगल, नरसी मेहता की हुंडी, चरीत, स्फुट पद। इनमें से 'स्फुट पद' मीरा की सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मीरा के प्रामाणिक पदों का संकलन पद्मावती शबनम और परशुराम चतुर्वेदी ने किया है।

मीरा की भक्ति–भावना

मीरा किसी संप्रदाय में दीक्षित नहीं थी और न ही उन्होंने किसी संप्रदाय की स्थापना की थी। उनकी भक्ति संप्रदाय निरपेक्ष भक्ति है। उनकी भक्ति में विभिन्न मतों और संप्रदाय की मान्यताओं का समावेश है। वे सगुण कृष्ण की उपासिका हैं लेकिन उन्हें जोगी कहकर पुकारती हैं। जोगी नाथपंथी होते थे और निर्गुण ईश्वर की आराधना करते थे। मीरा की भक्ति 'माधुर्य भक्ति' थी। वे कृष्ण को पति मानकर उनकी आराधना करती थीं। स्त्री होने के कारण उनकी भक्ति का यह प्रारूप बहुत स्वाभाविक लगता है। पति कृष्ण से मिलन की उत्कट आकांक्षा हो या उनके वियोग में तड़पना हो सबकुछ विश्वसनीय प्रतीत होता है।

मीरा की भक्ति की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

कृष्ण की भक्ति : मीरा कृष्ण की अनन्य साधिका हैं। कृष्ण के अलावा उन्हें कोई और प्रिय नहीं है। मीरा ने स्पष्ट घोषणा की थी कि 'म्हारां री गिरिधर गोपाल दूसरा णा कूयां'। कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम उनकी भक्ति की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है। कृष्ण को वे कई नामों से पुकारती हैं। कभी उन्हें वे 'गिरिधर नागर' कहती हैं तो कभी 'पतित पावन'। 'भक्त वत्सल', 'कृपा निधान', 'गोपाल' आदि नामों के साथ ही मीरा उन्हें 'जोगी', 'जोगिया', 'रमैया', 'अविनाशी' जैसे नामों से भी पुकारती हैं। इन सब नामों में मीरा को कृष्ण का सबसे प्रिय नाम 'गिरिधर नागर' है। दरअसल मीरा कृष्ण के रक्षक और उनके प्रेमी रूप की आराधिका हैं। 'गिरिधर' शब्द का मतलब है 'पर्वत को धारण करने वाला' और 'नागर' का मतलब है 'चतुर'। मीरा द्वारा कृष्ण को अपना स्वामी मानने की एक वजह यह भी है कि कृष्ण का व्यक्तित्व राम की तुलना में ज्यादा मुक्त और उदार है। राम को 'मर्यादा पुरुषोतम' कहा जाता है और मीरा उसी मर्यादा की मारी हुई हैं। राम के विपरित कृष्ण तमाम सामाजिक बंधनों को तोड़ने वाले नायक हैं। मीरा को कृष्ण इसीलिए अपने समानधर्मा लगते हैं।

मीरा की कविता में कृष्ण के सगुण रूप का वर्णन है लेकिन अनेक स्थलों पर वे उनके निर्गुण रूप का भी ध्यान करती हैं। ऐसा संभवतः वे नाथ–योगियों के प्रभाव में करती हैं। मीरा ने कृष्ण को 'आदि अनादि साहब' और 'निरंजन' कहकर भी पुकारा है। उनका यह प्रियतम 'गगन मंडल में शूली के ऊपर' स्थित है और इससे मिलन की राह ऊंची–नीची और रपटीली है।

टिप्पणी

दाम्पत्य भाव की भक्ति : अपने भगवान के प्रति रागात्मक संबंध की स्थापना भारतीय भक्ति आन्दोलन की सामान्य विशेषता है। इस क्रम में सूरदास ने अपने भगवान को सखा माना है तो तुलसीदास ने स्वामी। किसी के लिए भगवान उसका पुत्र है तो किसी के लिए प्रेमी। मीरा ने कृष्ण की भक्ति पति रूप में की है। कहा जाता है कि मीरा ने बचपन में ही कृष्ण को अपना पति मान लिया था। मीरा के पदों में पति–पत्नी और प्रेमी–प्रेमिका भाव का बहुत ही भावुक और स्वाभाविक चित्र मिलता है। भक्ति के चरम पर कबीर जब राम से मिलन के चित्र रचते हैं तो खुद को स्त्री मान लेते हैं और राम को अपना पति। परंतु जब मीरा कृष्ण के घर जाने और उनके साथ रात बिताने की बात करती हैं तो वह दिल को छू जाता है। कृष्ण के साथ हमेशा साथ रहने की कामना और प्रेम में उनका गुलाम हो जाने की स्वीकृति के विषय में हमारे मन में किसी प्रकार की उलझन नहीं होती।

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ

गिरिधर म्हांरो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।

रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।

रैण दिन बाके संग खेलूँ, त्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ।

जो पहिरावै सोई पहिरू जो दे सोई खाऊँ।

मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण विण पल न रहाऊँ।

पति के रूप में कृष्ण के प्रति मीरा की भक्ति इतनी घनीभूत थी कि भारतीय समाज ने इसे सहज सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया। भारत के कई मंदिरों में कृष्ण के साथ मीरा की मूर्ति आसानी से देखी जा सकती है।

विरह–भावना की प्रधानता : परमात्मा से आत्मा के अलगाव की आध्यात्मिक स्थिति की व्यंजना के क्रम में भक्तिकाल के सभी कवियों ने विरह की भावना को प्रकट किया है। लेकिन उसमें सिद्धांत कथन की शुष्कता ज्यादा है परमात्मा से अलगाव की पीड़ा कम। मीरा की विरह–भावना इस दोष से मुक्त है। कृष्ण–वियोग में लिखी गयी पंक्तियाँ मीरा के जीवन की घनीभूत पीड़ा से जन्मी हैं इसलिए इसमें पाठकों के हृदय–स्थल को छू देने की क्षमता है। मीरा जब कहती हैं कि मैं तो दरद की दीवानी हूँ और मेरा दरद कोई नहीं जानता, यह तो केवल सांवला कृष्ण ही जान पायेगा, तो इसकी सचाई पर किसी को संदेह नहीं रह जाता। मध्यकालीन समाज में स्त्री की पीड़ा को भगवान के अलावा कोई समझ भी कहाँ पाता था! मीरा ने लिखा–

हे री मैं तो दरद दिवाणी मेरो दरद न जाणै कोई।

घाइल की गति घाइल जाणै कि जण लाई होई।

दरद की मारी बन बन डोलूँ वैद मिल्या नहि कोई।

मीरा के प्रभु पीर मिटेगी जब वैद सांवलिया होई।

कृष्ण के प्रति मीरा के प्रेम में पति–पत्नी का भाव होने के कारण इससे उत्पन्न विरह की भावना सहज और सरस लगती है। भक्तिकाल के अन्य कवियों ने भी स्त्री का आलम्बन लेकर अपने विरह भाव को अभिव्यक्त किया है। जायसी की नागमति का विरह वास्तव में

टिप्पणी

जायसी के मन की उपज है इसलिए उसमें बारहमासा की परंपरा का निर्वाह अधिक है, स्त्री की पीड़ा की प्रस्तुति कम। मीरा का विरह उनकी अपनी पीड़ा की ही अभिव्यक्ति है इसलिए बहुत अधिक मार्मिक है। मीरा के दर्द में समस्त स्त्री जाति का दर्द छिपा हुआ है। पति के बिना स्त्री का जीवन न मध्यकाल में सुखी–सुरक्षित था और न ही आज है। इसलिए पति के वियोग से पैदा हुआ मीरा का विरह बेहद प्रामाणिक है। मीरा अपने एक पद में कहती हैं कि रमैया यानी पति के बिना मुझे नींद नहीं आ रही है। उसके अभाव में उसका वियोग मुझे सताता रहता है और उसके प्रेम की आग मुझे झुलसाती रहती है। पिया के बिना मेरे घर में अंधियारा है और मुझे दीपक जलाने की भी इच्छा नहीं हो रही। उसके बिना मेरी सेज सूनी है और उसके वियोग में जाग–जाग कर ही पूरी रात गुजार देती हूँ–

रमैया बिन नींद न आवे।

नींद न आवै विरह सतावै प्रेम की आँच डुलावै।

बिन पिया जोत मंदिर अंधियरो, दीपक दायन आवै।

पिया बिन मेरी सेज अलूनी, जागत रैण बिहावै।

नवधा भक्ति : अन्य भक्तिकालीन कवियों की तरह मीरा की कविता में भी नवधा भक्ति की उपस्थिति है। नवधा भक्ति के तहत भक्त भगवान की आराधना के नौ चरणों का अनुगमन करता है। ये चरण हैं– 1. श्रवण 2. कीर्तन 3. गुण–स्मरण 4. पाद–सेवन 5. वन्दन 6. अर्चन 7. दास्य 8. सख्य और 9. आत्मनिवेदन। कृष्ण के प्रति दाम्पत्य भाव रखने वाली मीरा की भक्ति में इन सभी चरणों की बेहद संवेदनशील और सजीव उपस्थिति है। जब वे अपने पति कृष्ण को भावना के रस में पग कर याद करती हैं, या उनके नाम और गुण का कीर्तन–स्मरण करती हैं, या उनके चरणों की पूजा करती हैं, या उनका वंदन–अर्चन करती हैं तो वे किसी भी अन्य पुरुष भक्त की तुलना में ज्यादा स्वाभाविक और प्रामाणिक लगती है। मीरा कृष्ण के गुणगान के लिए तत्पर हैं क्योंकि वे जानती हैं कि उनको स्मरण किये बिना इस जगत से मुक्ति संभव नहीं है। यदि गोविन्द के गुण गाने से राजा रूठ जाये तो कोई बात नहीं, क्योंकि अपनी नाराजगी में वह हमें देश–निकाला ही तो दे सकता है, लेकिन यदि गोविंद नाराज हो जाये तो फिर मुझे कहाँ जगह मिलेगी।

माई म्हां गोविन्द गुण गाणा

राजा रूठ्यां नगरी त्यागां, हरि रूठ्यां कहां जाणा।

मीरा तो अब प्रेम दिवाणी, सांवलिया वर पाणा।

भक्तिकालीन विभिन्न संप्रदायों का प्रभाव : मीरा के समय में भक्ति की विविध धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। इनमें वल्लभाचार्य की सगुण कृष्ण भक्ति, बंगाल के चैतन्यदेव की भावुक भक्ति, पंजाब के नानकदेव की भक्ति, कबीर का निर्गुण मार्ग और नाथों की तांत्रिक भक्ति प्रमुख थी। मीरा की भक्तिभावना पर इन सब का थोड़ा बहुत प्रभाव है। मीरा किसी संप्रदाय में दीक्षित नहीं हुईं थीं और न ही उन्होंने भक्ति की किसी एक निश्चित धारा का अनुगमन किया था। उनके विषय में प्रसिद्ध है– "नाम रहोगे नाम से, सुनो सयाने लोग, मीरा सुत जायो नहीं शिष्य न मुंड्यो कोय।" अर्थात मीरा को उनके नाम से ही जाना जायेगा, उन्होंने न संतान पैदा की और न ही कोई शिष्य बनाया। वे कृष्ण की आराधिका थीं और

टिप्पणी

अपने कृष्ण को जोगी से लेकर पति तक कई रूपों में पूजती थीं। मीरा की भक्ति पर भारत के विभिन्न प्रांतों में बह रही भक्ति की धारा का भी प्रभाव था। तमिल कवयित्री आंडाल की भक्ति से उन्होंने विद्रोह भाव ग्रहण किया तो बंगाल के चैतन्य महाप्रभु से मधुरा भक्ति। महाराष्ट्र के नामदेव से सामाजिक समानता का विचार ग्रहण किया और पंजाब के नानकदेव से साहस। मीरा संप्रदाय की सीमाओं को जानती थीं। वे यह भी जानती थीं किसी भी संप्रदाय में नारी के लिए सम्मानजनक स्थान नहीं है। चैतन्य महाप्रभु के शिष्य जीवगोस्वामी ने तो उनसे यह कहते हुए मिलने से भी मना कर दिया था कि वे स्त्री हैं। मीरा ने जब उनसे कहा कि मैं तो जानती थी इस संसार में केवल कृष्ण ही एकमात्र पुरुष है, तो वे शर्मिंदा हुए और उनसे मिले। प्रो. गोपेश्वर सिंह ने इस विषय में उचित ही लिखा है– "एक ओर जहां मीरा, भक्ति पर छायी पुरुष–प्रधान नारी–विरोधी सामंती दृष्टि से संघर्ष करती हैं और सफल होती हैं, वहीं सम्प्रदाय–निरपेक्ष प्रेम–भक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करती हैं। मध्यकाल का हर संत किसी–न–किसी सम्प्रदाय का या तो शिष्य है या गुरु है। मीरा न तो किसी सम्प्रदाय में दीक्षित हैं और न अपना कोई सम्प्रदाय निर्मित करती हैं। इस सम्प्रदाय निरपेक्षता के चलते मीरा साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त हैं, जबकि उसी काल के सूर हों या तुलसी, जायसी हों या कबीर, सबके अपने गुरु हैं। सम्प्रदाय हैं। आग्रह हैं। दुराग्रह हैं।"

3.2.1 मीराबाई : पाठ्यांश

1. *नैणा लोभी रे बहुरि सके नहिं आइ।*
रूँम रूँम नखसिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाइ।
मैं ठाढ़ी ग्रिह आपणेरी, मोहन निकसे आइ।
बदन चंद परकासत हेली, मंद मंद मुसकाइ।
लोक कुटुंबी बरजही, बतियाँ कहत बनाइ।
चंचल निपट अटक नहिं मानत, परहथ गए बिकाइ।
भली कहौ कोइ बुरी कहौ मैं, सब लई सीसि चढ़ाइ।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर के बिनि, पल भर रह्यो न जाइ।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद्यांश परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'मीराबाई की पदावली' से लिया गया है। इस पद की लेखिका हिन्दी के भक्तिकाल की प्रमुख कवयित्री मीरा हैं। मीरा ने अपने पदों में कृष्ण की भावनाप्रधान भक्ति की है। उन्होंने कृष्ण की पति के रूप में कामना की है। उनके पदों में माधुर्य भक्ति की उपस्थिति है।

शब्दार्थ : नैणा = नयन, आँख। **बहुरि** = बहुत। **रूँम रूँम** = रोम रोम। **नखसिख** = पैर के नाखून से लेकर सिर तक। **ललकि रहना** = पाने की ललक होना। **ललचाइ** = अधीर होना। **ठाढ़ी** = खड़ी रहना। **ग्रिह** = घर पर खड़ी रहना। **घर आपणे** = अपने घर। **परकासत** = स्वय प्रकाशित होना। **हेलि** = सखी। **कुंटबी** = परिवारजन। **बरजि** = रोकना, मना करना। **बतियाँ** = बातें करना। **अटक** = रोक, **परहथ** = पराये के हाथ। **सीसि** = शीश। **बिनि** = बिना।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में मीरा कृष्ण के रूप सौन्दर्य पर लोभित हो जाने का वर्णन कर रही हैं।

व्याख्या : उपर्युक्त पद में मीरा कृष्ण के प्रेम में व्याकुल अपने नेत्रों की दशा का वर्णन करते हुए कह रही हैं कि मेरे नेत्र बहुत लोभी हो गये हैं। ये एक बार जो कृष्ण की मधुर मूरत को निहारने के लिए उस तरफ चले जाते हैं फिर लौटकर वापस ही नहीं आ पाते। ये अपने रोम–रोम से कृष्ण को नख से लेकर शिख तक देखते रहते हैं और उनको पाने की ललक से अधीर हो उठते हैं। अर्थात कृष्ण को एक बार देख लेने के बाद मीरा उनको प्राप्त कर लेने के लिए बेचैन हो जाती हैं। मीरा आगे कहती हैं कि मैं तो अपने घर के आगे खड़ी थी और उधर से मोहन जा रहे थे। उनका मुख चंद्रमा के समान चमक रहा था और वे मंद मंद मुस्कुरा रहे थे। उनके चेहरे के सौन्दर्य को देखकर मेरी आँखे उनके रूप पर मोहित होकर उन्हीं से जाकर लग गयीं। अब मेरी आँखे उनके चेहरे से हट ही नहीं रही थीं। मेरा समाज और मेरे परिवार के लोग चिल्ला–चिल्ला कर मुझे ऐसा नहीं करने के लिए रोक रहे थे। उन्होंने मुझे प्यार से भी समझाने की कोशिश की। परंतु मेरी यह चंचल आंखें किसी भी तरह का बंधन मानने को तैयार ही नहीं थीं क्योंकि ये तो किसी पराये के हाथों बिक गयी थीं। कहने का मतलब यह है कि कृष्ण को देखते ही मीरा अपना दिल उन्हें दे बैठीं और अब वे किसी की धमकी या सलाह मानने को तैयार नहीं हैं। अंत में मीरा कहती हैं कि कोई मुझे भला कहे या बुरा मैंने कृष्ण के प्रेम में अपना शीश चढ़ा दिया है अर्थात अपने आप को कुर्बान कर दिया है। अब गिरिधर कृष्ण के बिना मीरा से एक पल भी रहा नहीं जाता।

2. *मैं तो गिरधर के घर जाऊँ*
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़ै ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ।
रैणदिना बाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिनि पल न रहाऊँ।
जहाँ बैठावै तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ।

शब्दार्थ : म्हाँरो = मेरा। **सांचो** = सच्चा। **रैण** = रात। **बाके** = उसके। **ज्यूँ त्यूँ** = जिस किसी भी प्रकार से क्यों न हो। **वाहि** = उसको। **पुराणी** = पुरानी। **उण** = उन। **तितही** = वहीं। **रहाऊं** = रह सकती हूँ। **बलि** = कुर्बान होना।

सन्दर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : मीरा ने इस पद में कृष्ण के प्रति अपने एकाग्र समर्पण का वर्णन किया है।

व्याख्या : मीरा कहती हैं कि मैं तो अब गिरधर के घर जाऊँगी। गिरधर ही मेरा सच्चा प्रियतम है जिसके रूप को देखते ही है मैं उस पर लोभित हो जाती हूँ। रात होते ही मैं उसके पास चली जाती हूँ और भोर होते ही फिर उसके पास पहुँच जाती हूँ। इस प्रकार रातदिन मैं उसके साथ ही आनन्द मनाती रहती हूँ और जिस किसी प्रकार से क्यों न हो उसको अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयास करती हूँ। मैं उसके प्रेम में उसकी गुलाम हो गयी हूँ। वह अब मुझे जो भी पहनावेगा उसी को पहनूंगी और जो भी देगा उसी को

टिप्पणी

टिप्पणी

खाऊंगी। मेरी और उसकी प्रीत बहुत ही पुरानी है, उसके बिना एक पल भी रहना कठिन है। मेरा प्रियतम मुझे जहाँ भी बैठावेगा वहीं मैं बैठ जाऊंगी और यदि वह मुझे बेचना भी चाहे तो मैं हँसी–खुशी बिक जाने को तैयार हूँ। अंत में मीरा कहती हैं कि मेरे तो देवता गिरधर नागर ही हैं मैं उनके ऊपर बार–बार कुर्बान हो जाना चाहती हूँ।

विशेष : राजस्थानी हिन्दी का प्रयोग।

कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम का प्रदर्शन।

3. *मैं तो म्हारौं रमैयाने देखबो करूँरी।*
तेरे ही उमरण, तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यानु धरूँरी।
जहाँ जहाँ पाँव धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँरी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ लिपट परूँरी।

शब्दार्थ : **रमैया ने** = प्रियतम राम को। **करूँरी** = करती हूँ। **धरणी** = पृथ्वी। **निरत** = कीर्तन में नृत्य करना।

सन्दर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : मीरा ने यहाँ रात दिन प्रभु को स्मरण करने वाली अपनी मनोदशा का वर्णन किया है।

व्याख्या : मीरा कहती हैं कि मैं तो अपने प्रियतम को रात दिन देखा करती हूँ। परमात्मा, मैं तो सदैव तुम्हारा ही स्मरण और तुम्हारा ही सुमिरण करती हूँ। तुम सदैव मेरे ध्यान में रहते हो। इस पृथ्वी पर चलते हुए जहाँ जहाँ मेरे पाँव पड़ते हैं वहाँ वहाँ मैं तुम्हें स्मरण करती हूँ। मीरा यहाँ अजपाजप की बात करती हैं जिसमें साधक साँस के हर आवागमन के साथ भगवान को याद करता है। अंत में मीरा कहती हैं कि मेरे तो प्रभु गिरधर नागर हैं, मैं तो उनके चरणों में ही लिपट कर पड़ी रहूँगी।

4. *नहिं भावै थारों देसलड़ो रँगरूड़ों।*
थांरा देसाँ में राणा साध नहीं छै, लोग बसै सब कूड़ों।
गहणा गांठी राणा हम सब त्यागा, त्याग्यो कररो चूड़ों।
काजल टीकी हम सब त्यागा, त्याग्यो छै बाँधन जूड़ो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बर पायो छै पूरो।

शब्दार्थ : **भावै** = अच्छा लगता है। **थाँरो** = आपका। **देशलड़ो** = देश। **रंगरूड़ो** = विचित्र, सुन्दर। **देसां में** = देश में। **राणा** = मीरा का देवर। **छ** = हैं, **कूड़ो** = निकम्मे, बेकार। **गहणां गांठी** = आभूषण। **त्याग्या** = त्याग दिया, **कररो** = हाथ की, **चूड़ो** = हाथी दांत की चूड़ियां, **टीकी** = बिंदी। **जूड़ो** = वेणी।

सन्दर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में मीरा अपने देवर राणा को संबोधित करते हुए कहती हैं कि तुम्हारा देश बुरा है और इसमें रहने वाले लोग कूड़ा हैं। ऐसा वह इसलिए कहती हैं कि राणा के लोगों ने मीरा को जान से मारने की कोशिश की थी क्योंकि वह उसकी मर्यादा की परवाह न करते हुए कृष्ण की भक्ति के लिए राजमहल के बाहर चली जाती थीं।

टिप्पणी

व्याख्या : मीरा राणा को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि तुम्हारा यह विचित्र देश मुझे नहीं भाता है। राणा! तुम्हारे देश में साधु या सज्जन लोगों का वास नहीं है। यहाँ तो सब कूड़ा और बेकार मनुष्यों का निवास है। राणा! मैंने सभी प्रकार के आभूषणों का त्याग कर दिया है, अपने हाथों से चूड़ियाँ भी निकाल फेंकी हैं। काजल और टीका का भी मैंने त्याग कर दिया है और अब मैं अपने बालों का जूड़ा भी नहीं बनाती हूँ। तात्पर्य यह कि मैंने तो विवाहिता स्त्री के सारे चिह्नों को निकाल फेंका है फिर भी तुम्हारे लोग मेरे पीछे पड़े हैं। मैंने इस संसार में विवाहिता स्त्री के लिए किये जाने वाले सारे शृंगार को इसलिए त्याग दिया है क्योंकि मुझे तो कृष्ण जैसा वर मिल गया है जो सम्पूर्ण है। इस संसार के वरों में तो तमाम दोष हैं लेकिन मेरे गिरधर नागर में किसी भी तरह के दोष की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

3.2.2 मीरा की कविता में विद्यमान विद्रोह भावना

मीरा भक्तिकाल की एकमात्र प्रभावी और सशक्त कवयित्री हैं। उनकी कविता में स्त्री की पीड़ा, उससे मुक्ति की चाह और उसके खिलाफ विद्रोह का मुखर स्वर विद्यमान है। मीरा की कविता उनके जीवन–बोध से जन्मी है। ईश्वर भक्ति का सबको समान अधिकार है लेकिन स्त्री होने के कारण मीरा को कृष्ण की आराधना करने से भी रोका गया। एक राजवंश की बेटी और दूसरे राजवंश की बहू होने के कारण उनसे मर्यादा में रहने की उम्मीद की गयी। पति की मृत्यु के बाद उन्हें सती होने के लिए मजबूर किया गया। कृष्ण की भक्ति के लिए राजमहल से बाहर जाने पर उन्हें मारने तक की कोशिश की गयी। मीरा ने अपने काव्य में इन सबका प्रतिवाद किया। उन्होंने 'राणा', उसकी सत्ता और उसके समाज को ललकारते हुए कहा कि तुम्हारा देश तो बड़ा विचित्र है उसमें भगवान की भक्ति का भी सम्मान नहीं है। तुम्हारे देश में तो सब कूड़ा लोग बसते हैं। मीरा के शब्द हैं– "राणांजी थारो देसड़लो रंग रूडो थांरे मुलक में भक्ति नहीं छै, लोग बसे सब कूड़ो।"

मीरा की कविता में स्त्री मुक्ति की आक्रामक चाह मात्र न होकर उसका व्यवस्थित सपना भी है। वे भारतीय स्त्रियों को तमाम तरह के अनावश्यक बंधनों से मुक्त करना चाहती थीं। इसके लिए उन्होंने इसका बचाव करने वाले सत्ता तंत्रों के खिलाफ धावा बोल दिया। मीरा का यह विद्रोह आज की स्त्रियों के लिए भी बहुत अधिक प्रेरणादायी है। प्रो मैनेजर पांडेय ने लिखा है कि, "मीरा के काव्य में राजसत्ता, पुरुषसत्ता, लोकरूढ़ि और कुलीनता के विरुद्ध विद्रोह का स्वर जैसा प्रखर है वैसा उस काल के किसी अन्य कवि का नहीं है।.. ...आज भी भारतीय नारी को गुलाम बनाए रखने में राजसत्ता, पुरुषसत्ता, लोकरूढ़ि और कुल–कानि की बहुत बड़ी भूमिका है। मीरा के जीवन और काव्य से इन चारों के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा मिलती है।"

मीरा के काव्य में विद्यमान विद्रोह की चेतना पर यहां विस्तार से विचार किया जा रहा है–

पुरुष सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह : एक ऐसी समाज व्यवस्था जिसमें पुरुष और उसकी मानसिकता का प्रभुत्व हो उसे पुरुषसत्तात्मक समाज व्यवस्था कहते हैं। भारत का समाज प्राचीन काल से ही पुरुषसत्तात्मक रहा है। वैसे यहाँ नारियों के प्रति सम्मान की भावना भी रही है लेकिन उनके पास किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं रहा है। उन्हें ईश्वर भक्ति के लिए भी घर की सीमारेखा को पार करने की अनुमति नहीं

टिप्पणी

थी। मीरा ने इसे देखा–भोगा था। उनकी कवितायें इस व्यवस्था के प्रति खुला विद्रोह हैं। पुरुष समाज ने स्त्री को कुल, मर्यादा, लोकलाज, धार्मिक विधि–विधान, संस्कार, बल प्रयोग आदि कई माध्यमों से गुलाम बनाया था। मीरा उन सभी विचारों और स्थितियों के मूल पर प्रहार करती हैं। स्त्री की गुलामी में धर्म की बड़ी भूमिका थी। मीरा ने इसी धर्म का सहारा लेकर ही उसकी जड़ता को तोड़ा। जैसे कबीर ने राम के नाम पर जाति व्यवस्था को चुनौती दी थी वैसे ही मीरा ने कृष्ण के नाम पर पुरुष समाज को ललकारा। वे मर्द और उनकी सोच का साथ देने वाली औरतों को संबोधित करती हुई कहती हैं कि मैं चोरी नहीं करती और न ही किसी जीव को परेशान करती हूँ फिर मेरा कोई क्या कर लेगा– "चोरी न करस्यां जीव न सतस्यां काइ करसी म्हारो कोई।"

सामंती समाज के बंधनों के खिलाफ विद्रोह : मध्यकाल का समाज सामंती समाज था। इस समाज में सामंत ही सर्वोपरि था और उसके खिलाफ बोलना राजद्रोह होता था। मीरा राठौड़ राजकुल की बेटी और सिसोदिया राजकुल की बहू थीं, जहाँ स्त्री पर तमाम प्रकार के बंधन थे। मीरा ने उन सब बंधनों को तोड़ा और कृष्ण के प्रेम में मतवाली होकर राणा के महल से बाहर निकल गयीं। मीरा के पदों में 'राणा' शब्द का प्रयोग बार–बार हुआ है और उनमें उसकी सत्ता को चुनौती दी गयी है। इन पदों का तेवर बहुत अधिक आक्रामक है। अपने एक पद में वे कहती हैं कि सिसोदिया राजकुल रूठकर मेरा क्या कर लेगा? राणा यदि रूठ भी गया तो अधिक से अधिक मुझे अपने देश से निकाल देगा लेकिन यदि हरि रूठ जायेंगे तो मैं कुम्हला जाऊँगी–

सीसोद्यो रूठ्यो म्हांरो कांई कर लेसी।
म्हें तो गुण गोविंद का गास्या, हो माई।
राणाजी रूठ्यां वारों देस रखासी।
हरि रूठ्या कुम्हलास्यां, हो माई।

मीरा की कविता में 'राणा' शब्द संभवतः उनके देवर के लिए प्रयुक्त हुआ है लेकिन अपने अर्थ विस्तार में वह हर उस सामंत को समेटे हुए है जो स्त्री को अपने अधिकारों का प्रयोग कर गुलाम बना लेने की कोशिश करता है। 'राणा' जैसे ताकतवर सामंत के समक्ष पति विहीन विधवा मीरा की कोई औकात नहीं थी। उसने उन्हें कई बार मारने की भी कोशिश की लेकिन मीरा डरी नहीं। मीरा का यह साहस सामंती सत्ता के खिलाफ बगावत थी। आधुनिक युग में भी उन मूल्यों के पोषक मर्दों के खिलाफ संघर्ष करती स्त्रियों के लिए मीरा का यह संघर्ष प्रेरणादायी है।

कुल और मर्यादा के अहंकार को चुनौती : मीरा जिस सिसोद्या वंश में ब्याही गयी थीं वह राजस्थान के राजपूताने का एक प्रसिद्ध कुल था। इसकी मर्यादा का पालन करना इस वंश की प्रत्येक स्त्री का कर्तव्य था। लेकिन मीरा ने कृष्ण की भक्ति के आवेग में इस वंश के झूठे अहंकार को चुनौती दी। इसका परिणाम यह हुआ कि सास ने इन्हें 'कुलनाशी' कहा और देवर ने 'जहर का प्याला' भेजा। मीरा को मारने की असंख्य कोशिशें हुई, लेकिन मीरा नहीं डरीं। मीरा का यह विद्रोह व्यक्तिगत होते हुए भी कुल और मर्यादा के बंधन में सदियों से सिसक रही स्त्री को साहस देता है और उसकी मुक्ति की राह खोलता है। कुल और मर्यादा की ये बेड़ियाँ केवल राजघरानों में ही नहीं थीं। भारत में गरीब–से–गरीब

टिप्पणी

परिवार भी अपनी मर्यादा को लेकर सचेत रहता है और इस मर्यादा का समस्त भार स्त्री के कंधों पर होता है। मीरा भारतीय नारियों को इस झूठी मर्यादा का प्रतिकार करने को उत्साहित करती हैं। उनके पदों में 'लोकलाज' शब्द और उसका विरोध बार–बार होता है। वे लोक और मर्यादा के खिलाफ चलती हैं और अपनी इस चाल को 'अपूठी चाल' कहती हैं। यहाँ अपूठी का मतलब परंपरा द्वारा अपुष्ट है। मीरा को अपनी इस नयी चाल पर चलने से मिलने वाली बदनामी की जरा भी फिक्र नहीं है। उन्होंने लिखा है–

राणाजी म्हाने या बदनामी लागे मीठी।
कोई निंदो कोई बिंदो, मैं चलूंगी चाल अपूठी।

परदा–प्रथा का नकार : स्त्री के व्यक्तित्व और अस्तित्व के दलन का सर्वाधिक मूर्त और मजबूत हथियार परदा की प्रथा रही है। भारतीय नारी का सारा जीवन परदे के पीछे ही गुजर जाता रहा है। वह कभी जीवन और समाज का प्रत्यक्ष अनुभव कर ही नहीं पाती। प्राचीन समय से ही पर्दा–प्रथा को सभी धर्मों ने ईश्वरीय विधान और औरत की मर्यादा के साथ जोड़ दिया था जिसकी वजह से इस पर सवाल करना सांस्कृतिक संकट की तरह देखा जाता था। इस्लाम के आक्रमण के पश्चात भारत में यह प्रथा और अधिक मजबूत हुई। मध्यकालीन समाज की स्त्रियाँ इस प्रथा की बेड़ियों में ज्यादा जकड़ी हुई थीं। स्त्री होने के नाते मीरा पर्दा प्रथा की क्रूरता और उसके निर्मिति के तर्कों के खोखलेपन को बेहतर तरीके से समझ रही थीं। उनके जीवन में तो इस प्रथा के कारण कृष्ण की भक्ति के मार्ग में भी बाधा पैदा की गयी। मीरा का देवर राणा सामाजिक लोकलाज का भय दिखाकर उन्हें संतों के साथ बैठ कर कृष्ण की भक्ति करने से रोक रहा था। इसीलिए मीरा ने अपनी कविताओं में इस प्रथा का खुला विरोध किया। 'पग बांध घूंघरयां णाच्या री' जैसे अनेक पदों में मीरा पैरों में घुंघरु बाँध कर नाचने की बात करती हैं, यह एक तरह से पर्दा प्रथा का ही विरोध है। अपने एक पद में मीरा कहती हैं कि मैं तो लोकलाज और कुल की मर्यादा को पानी की तरह बहा कर घर से बाहर निकल गयी हूँ यदि किसी को इससे शर्म आती हो तो वह अपने घर में पर्दा कर ले।

लोकलाज कुल काण जगत की, दई बहाय जस पाणी
अपणे घर को परदा कर लो, मैं अबला बौराणी।

सती प्रथा का विरोध : सती प्रथा प्राचीन काल से भारतीय समाज में चली आ रही एक क्रूर प्रथा थी। इसके तहत पति की मृत्यु के पश्चात उसकी पत्नी भी उसकी चिता में जिंदा ही जल मरती थी। यह पत्नी का अपने पति के प्रति प्रेम और समर्पण का चरम बलिदान था। यह स्त्री की पवित्रता और एकनिष्ठता से भी जुड़ा हुआ था। मध्यकाल में यह प्रथा काफी प्रचलन में थी। मुसलमानों के साथ युद्ध में यदि कोई राजा मारा जाता तो उसकी अनेक पत्नियाँ अपने पति की चिता में जल मरती थीं। इसी प्रथा का वीभत्स रूप जौहर की प्रथा थी जिसमें मुसलमानों के अधीन हो जाने पर किसी राज्य की स्त्रियाँ अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए अग्नि–कुंड में कूदकर सामूहिक रूप से आत्महत्या करती थीं। मीरा ने इसको देखा था और भोगा भी था। पति की मृत्यु पर उनसे भी सती हो जाने के लिए कहा गया था, लेकिन उन्होंने यह कहते हुए इंकार कर दिया था कि– 'गिरधर गास्यां सती न होस्यां, मन मोह्यो धननामी।' मीरा की यह घोषणा और उनका जीवन इस प्रथा के विरोध

टिप्पणी

में खड़ा है। यह तब और भी अधिक मूल्यवान और क्रांतिकारी हो जाता है जब हिन्दी के तमाम प्रगतिशील संत–भक्त कवि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सती प्रथा का समर्थन करते हुए दिखते हैं। कबीर–जायसी–सूर–दादू–रज्जब जैसे तमाम संत–भक्त कवियों के लिए भगवान के प्रति चरम एकनिष्ठता और समर्पण का आदर्श सती है।

स्त्री स्वातंत्र्य की चाह : स्त्री की समग्र स्वतंत्रता का विचार तो आधुनिक है लेकिन मीरा की कविता में उसका बीज मिलता है। यही कारण है कि वर्तमान स्त्रीवादी रचनाकारों को मीरा से वैचारिक सहारा प्राप्त होता है। मीरा ने जिस लोकलाज, मर्यादा, सामंती–मूल्य और स्त्री विरोधी रूढियों का विरोध किया था उसका मूल लक्ष्य स्त्री की आजादी ही थी। लोकलाज को त्यागकर, पर्दे को फाड़कर और पैरों में घुघुरु बांधकर नाचना इसका संकेत है। मीरा यह सब वास्तव में नहीं कर रही थीं। स्त्री की गुलामी का सबसे बड़ा कारण लोकलाज का भय था इसलिए मीरा ने उसके हर रूप पर प्रहार किया। वे भारतीय नारी को मर्यादा के मोह से बाहर निकालकर अपने आत्म को पहचानने की ओर अग्रसर करना चाहती थीं। उनके पदों में 'मैं' का स्वर अलग से पहचान में आता है– 'लोक लाज कुल की मरजादा था मैं एक ना राखूंगी'। यह 'मैं' आधुनिक चेतना का प्रमाण है। मीरा स्त्री की आजादी की राह कृष्ण के प्रेम के द्वारा प्राप्त करती हैं। इसलिए उनकी कविता में पुरुष सत्ता के खिलाफ विद्रोह तो है लेकिन पुरुष मात्र के खिलाफ नहीं। मीरा की स्त्री–मुक्ति पुरुष से मुक्ति नहीं बल्कि पुरुष के साथ मुक्ति की कल्पना करती है।

सामाजिक समानता की पक्षधरता : मीरा उच्च कुल और उच्च वंश में जन्मी नारी थीं। उनकी कविता में इससे प्राप्त साहस तो मिलता है लेकिन अहंकार नहीं। कृष्ण की भक्ति से प्राप्त सद्भाव की वजह से वे सामाजिक समानता की समर्थक हैं। वे भगवान की भक्ति और उससे प्राप्त मुक्ति का द्वार सबके लिए खोलना चाहती हैं। मीरा भीलणी और अहीरणी सबकी मुक्ति की कामना करती हैं।

अच्छे मीठे चाख चाख बेर लाई भीलणी।
ऐसा कहा अचारवती, रूप नहीं एक रतीय
नीचे कुल ओछी जात, अति ही कुचलणी।
जूठे फल लीन्हे राम प्रेम की प्रतीत जाणय
ऊंच नीच जाने नहीं, रस की रसीलणी।

3.3 बिहारी : सामान्य परिचय

बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्वपूर्ण कवि हैं। बिहारी का जन्म 1595 ई. में ग्वालियर में और मृत्यु सन् 1663 में हुई थी। बिहारी की प्रसिद्धि का आधार उनका एकमात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है। जिसकी रचना सन् 1662 में की गई थी। बिहारी ने रीतिकाल के आचार्य कवियों की तरह लक्षण ग्रन्थ तो नहीं लिखे किन्तु उनके सतसई को देख कर कहा जा सकता है कि उन्हें रीतिशास्त्र और काव्य निरूपण के वैशिष्ट्य का खूब ज्ञान था।

टिप्पणी

बिहारी जयपुर के राजा जससिंह के दरबारी कवि थे। एक मान्यता है कि जब बिहारी जयपुर पहुंचे तब राजा जयसिंह अपनी सद्यः विवाहिता छोटी रानी के रूप और प्रेम में इतने खोये हुए थे कि राजकाज की ओर उनका ध्यान ही नहीं था। राज्यव्यवस्था अस्त व्यस्त हो चुकी थी। अराजकता लगातार बढ़ती जा रही थी। पर राजा इन सबको भुला कर महल के भीतर रास–रंग में डूबे हुए थे। ऐसे में बिहारी ने राज्य और प्रजा का ख्याल कर राजा के पास एक दोहा लिखकर भिजवाया–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं विध्यौ आगे कौन हवाल।।

ऐसी मान्यता है कि राजा ने दोहे का अर्थ समझ लिया था। वे अपने रास–रंग से बाहर निकल आये।अपने राज्य और अपनी प्रजा के प्रति तथा अपने दायित्वों के प्रति सजग हो गए। यह बिहारी का एक कवि के रूप में अपने समाज के प्रति महत्तम दायित्व था। इस घटना के बाद राजा जयसिंह के दरबार में बिहारी की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। दरबार में रहते हुए ही बिहारी ने राजा के निर्देश पर विभिन्न दोहों के रूप में 'बिहारी सतसई' की रचना की थी। 'बिहारी सतसई' में कुल मिलाकर 713 दोहे हैं। इस ग्रन्थ की प्रेरणा बिहारी को 'गाथा सतसई', 'अमरुक शतक' और 'आर्या सप्तशती' जैसे ग्रन्थों से मिली थी। 'बिहारी सतसई' शृंगार रस का एक श्रेष्ठ मुक्तक काव्य है। बिहारी का एक–एक दोहा भाव, रस, विचार, भक्ति, नीति और भाषा की दृष्टि से अत्यधिक मूल्यवान है। इसीलिए उनके दोहों की प्रशंसा में कहा जाता है कि–

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं घाव करैं गम्भीर।।

3.3.1 बिहारी की काव्यगत विशेषताएँ

बिहारी रीतिकाल के सर्वप्रिय कवि होने के साथ–साथ प्रतिनिधि कवि भी हैं। बिहारी की यह लोकप्रियता और काव्यगत प्रतिनिधित्व उनकी काव्यगत क्षमताओं और उनकी विशिष्ट प्रतिभा के कारण है। बिहारी का एक मात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है, जिस पर अब तक लगभग पचास से अधिक टीकाएँ लिखी गयी हैं।

बिहारी की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण है उनके काव्य में कला और भाव का बहुत ही सुन्दर और संतुलित समन्वय। कहीं भी भाव और कला एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते बल्कि एक दूसरे के सहयोगी बन कर आते हैं। भाव और कला का ऐसा सुन्दर सम्बन्ध हिन्दी साहित्य में तुलसीदास के अलावा अन्यत्र दुर्लभ है। दो पंक्तियों के दोहे में भाव का इतना सर्वोत्तम स्वरूप प्रस्तुत कर देना बिहारी की कलात्मक सफलता है। इसलिए कहा गया है कि बिहारी के दोहे नावक यानी शिकारी के बाणों की तरह हैं जोकि आकार में छोटे होते हुए भी लक्ष्य को गहराई से बेध देते हैं।

बिहारी ने मुक्तक लिखें हैं। मुक्तकों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कितने कम शब्दों में कितने अधिक भावों को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ भावों को प्रस्तुत करने का अर्थ सौन्दर्य की सृष्टि करना भी है। उनके दोहों में यह विशेषता देखकर आचार्य

टिप्पणी

रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में चरम–उत्कर्ष को पहुँचा है, इसमें कोई सन्देह नहीं।' इस कारण बिहारी की गणना अत्यन्त सफल मुक्तककारों में होती है और इसका मूल कारण उनकी वे काव्यगत विशेषताएँ हैं जिनके फलस्वरुप उनका प्रत्येक दोहा कल्पना, सौन्दर्य, भाव और भाषा की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ ठहरता है। साथ ही इन सब में बिहारी की मौलिक प्रतिभा उनके काव्यगत सौन्दर्य में चतुर्दिक वृद्धि कर देता है। इस तरह बिहारी के काव्य की काव्यगत विशेषताएँ लक्षित की जा सकती हैं–

1. जीवन के मार्मिक प्रसंगों की अभिव्यक्ति

बिहारी मौलिक प्रतिभा के कवि हैं, उनकी मौलिकता जीवन के सूक्ष्म एवं मार्मिक प्रसंगो को खुली आंखों से देखने और उसे कविता में पूरी सफलता के साथ व्यक्त करने से उपजी है। बिहारी का मानव–प्रकृति से नजदीक का नाता था। वे मानव प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण और उसकी परख में पारंगत थे। उन्हें ऐसे प्रसंगों और स्थलों की पूरी पहचान थी जो मनुष्य के मन को रमाते हों। उदाहरण के लिए उनका एक दोहा देख सकते हैं–

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं, भौंहनु हँसै, दैन कहैं, नटि जाइ।।

इस दोहे में नायिका नायक की बांसुरी छिपा देती है किन्तु जब नायक अपनी बांसुरी माँगता है तो शपथ लेकर बताती हैं कि उसके पास बांसुरी नहीं है। इस पर जब नायक निराश होकर वापस जाने को होता है तो नायिका उसे देखकर मुस्कुरा देती है, जिससे नायक को सन्देह हो जाता और वह अपनी बांसुरी पुनः मांगता है, जिस पर नायिका नट जाती है। इस तरह नायिका बांसुरी छुपाने आदि का आचरण केवल नायक से बात करने के लालच में करती है। यह मनुष्य जीवन का बहुत ही स्वाभाविक, मार्मिक और निर्दोष प्रसंग है, जिसे बिहारी ने बहुत ही अधिकार भाव से प्रस्तुत किया है।

2. कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति

कल्पना की समाहार शक्ति का अर्थ जीवन के प्रेम आदि प्रसंगों का सूक्ष्म चित्रण और भाषा की समास शक्ति से आशय कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव सम्पदा का प्रस्तुतिकरण है। जिस रचनाकार में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास शक्ति पर अधिकार हो वह एक श्रेष्ठ मुक्तककार होगा। इस लिहाज से बिहारी और उनका काव्य एक श्रेष्ठ मानक है। क्योंकि उन्होंने एक–एक दोहे में बहुत ही विशिष्ट सौन्दर्य की सृष्टि की है। एक पूरे घटनाक्रम, एक पूरी बातचीत को दो पंक्तियों के दोहे में चित्र की भांति चित्रित कर देने में बिहारी अद्वितीय हैं। उदाहरण के लिए अपने इस दोहे में बिहारी ने नायक–नायिका के मान–मनुहार के सौन्दर्य को पूरी कलात्मक उंचाई के साथ व्यक्त किया है–

कहत, नटत, रीझत, मिलत, खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु ही सब बात।।

नायक ने नायिका से मिलने का निवेदन किया किन्तु नायिका ने परिस्थितियों का हवाला देकर उसके निवेदन को अस्वीकार कर देती है। लेकिन अस्वीकार की उस अदा पर

टिप्पणी

ही नायक को प्यार आ जाता है, अर्थात नायक रीझ जाता है। नायक के रीझने पर नायिका खीझ जाती है। आखिरकार दोनों का मिलन हो जाता है और इस पर नायक व्यंग्यपूर्ण हंसी के साथ खिल उठता है और नायक की इस उद्दण्डता को देखकर नायिका स्वभावतः लज्जित हो जाती है। इस दोहे में बिहारी ने नायक–नायिका के बीच घटित हुए एक प्रेम के जीवंत स्वाभाविक किन्तु शान्त प्रसंग को दो पंक्तियों में व्यक्त कर नायक–नायिका के प्रेम को और अधिक संवादी और 'इन्टेंस' बना दिया है जो कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है।

3. क्रियाविदग्धता

बिहारी के काव्य की एक महत्वपूर्ण काव्यगत विशेषता उनकी रचनाओं में मौजूद क्रियाविदग्धता है। बिहारी ने अपनी नायिकाओं की क्रियाविदग्धता के माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव सौन्दर्य की सृष्टि की है। इसमें नायिकाएँ नायक अर्थात अपने प्रेमी से इस चतुराई और कुशलता के साथ संवाद करती हैं कि उन दोनों के अतिरिक्त कोई अन्य उस बातचीत का अभिप्राय नहीं समझ सकता। इस तरह के प्रयोग बिहारी के काव्य के आकर्षण में अत्यधिक बृद्धि कर देते हैं। उदाहरण के लिए बिहारी का एक दोहा देखा जा सकता है जिसमें क्रियाविदग्धता नायिका की एक चेष्टा में पांच भिन्न अर्थ निकलते हैं–

हरषि न बोली, लखि, ललनु, निरखि अमिलु संग साथ।
आंखिनु ही मैं हंसि धरयौ सीस हियै धरि हाथ।।

अर्थात नायक को देखकर प्रसन्न नायिका भाषा के स्तर पर नायक से अपनी खुशी व्यक्त नहीं कर पाती इसलिए वह अपनी खुशी को आंखों से व्यक्त करते हुए अपने हाथ को दिल पर रख लेती है। नायिका की यह चेष्टा दूसरों के लिए किसी महत्व की नहीं है किन्तु हंसती हुई आंखों के साथ दिल पर हाथ रखना में नायक के लिए कई तरह के संदेश हैं, जैसे– 1. तुम मेरे दिल में रहते हो, 2. मैं शपथ खाकर कहती हूं कि मैं आधी रात को तुमसे मिलूंगी, 3. मैं दोनों पर्वतों के मध्य पड़ने वाले बाग में कृष्णपक्ष में तुमसे मिलूंगी, 4. मैं जमुना तट पर स्थिति शिव मन्दिर में मिलूंगी, 5. मुझे याद है कि मैंने तुमसे मिलने का वचन दिया है और मैं सूर्यास्त के समय तुमसे मिलूंगी। इस तरह बिहारी ने क्रियाविदग्धता के माध्यम से एक क्रिया से एक से अधिक अर्थ का निष्पादन कर अपनी एक विशिष्ट काव्य–प्रतिभा का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

4. व्यंजकता

बिहारी का 'बिहारी सतसई' बुनियादी तौर पर ध्वनि काव्य है। बिहारी ने व्यंजना शक्ति के माध्यम से अपरिमित एवं गूढ़ भावों को अभिव्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। इसीलिए बिहारी के दोहों में व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है। व्यंग्यार्थ का यह गुण बिहारी की विशुद्ध मौलिक प्रतिभा से उत्पन्न हुआ है। बिहारी के एक–एक दोहे में एक से अधिक अर्थ भरे रहते हैं। व्यंजकता का एक श्रेष्ठ उदाहरण है–

लिखन बैठि जाकी सबिह, गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।।

टिप्पणी

इस दोहे में बिहारी नायिका के अद्वितीय रूप की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि नायिका का चित्र बनाने के लिए बड़े–बड़े चित्रकारों ने कोशिश की किन्तु कोई सफल नहीं हो सका। बिहारी चित्रकारों की असफलता के कारण नहीं बताते। चित्र नहीं बना पाने का कारण कुछ भी हो सकता है। जैसे – 1. नायिका इतनी सुन्दर थी कि उसके रूप को देखकर चित्रकार अपना होश खो बैठते थे। 2. चित्रकार नायिका के रूप को देखते रह जाते थे, चित्र बनाना भूल जाते थे। 3. चित्रकारों की निगाह नायिका के जिस अंग पर पड़ती थी वे उसी का चित्र बनाने लग जाते थे, नायिका की पूरी छवि उनसे ओझल हो जाती थी। 4. नायिका का सौन्दर्य पूर्ण था, पूर्णता के समक्ष आते ही बड़े से बड़े चित्रकारों (कलाकारों) का कर्तापन मिट जाता था, और वे चित्र नहीं बना पाते थे। अपनी प्रतिभा, काव्य विवेक और मनुष्य जीवन–व्यापार को गहराई से समझने के कारण व्यंजकता बिहारी की कविता का महत्वपूर्ण गुण बन गया है। बिहारी का एक और सुप्रसिद्ध दोहा व्यंजकता का अप्रतिम उदाहरण है–

नहिं पराग नहि मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं विंध्यौ आगे कौन हवाल।।

इस दोहे का सामान्य अर्थ कली और भौंरे से जुड़ा है, किन्तु यह अपनी व्यंजना में राजा जयसिंह के आचरण और अपनी नवविवाहिता के प्रति आसक्ति से भी सम्बन्धित है।

5. वाग्वैदग्ध्य

बिहारी के काव्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसमें मौजूद वागविदग्धता है। वागविदग्धता का अर्थ भावों के अनुसार शब्दों का प्रयोग है। जिसमें बिहारी अद्वितीय हैं। इस दृष्टि से 'बिहारी सतसई' का पहला दोहा ही उल्लेखनीय है–

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परैं, स्याम हरित दुति होई।।

बिहारी इस दोहे में अपने दुखों के हरण के लिए राधा से प्रार्थना करते हैं, साथ ही वे इस कार्य के लिए राधा की योग्यता को भी रेखांकित करते हैं। जो वागविदग्धता का बेजोड़ उदाहरण है – 1. राधा जो श्रीकृष्ण की 'दुति' का 'हरण' करती हैं। 2. राधा के गौर वर्ण वाले शरीर की छाया पड़ने से सावंले रंग वाले श्रीकृष्ण का रंग हरा हो जाता है। 3. राधा का ध्यान करने से पापों का नाश हो जाता है। 4. राधा की झलक मात्र से श्रीकृष्ण का मन प्रसन्न हो जाता है। 5. राधा श्रीकृष्ण की आदि शक्ति हैं, कृष्ण राधा से ही शक्ति पाते हैं। ऐसे में श्रीकृष्ण अपनी आदि शक्ति को पाकर 'हरे' (शक्तिमान) हो जाते हैं। वागविदग्धता के ऐसे अनेक उदाहरण बिहारी के काव्य में भरे पड़े हैं।

6. प्रेम–श्रृंगार का चरम वैभव

बिहारी के काव्य में श्रृंगार रस का चरम वैभव उपलब्ध है। 'बिहारी सतसई' का मूल रस श्रृंगार ही है। उसमें श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग चित्रित किये गए हैं। बिहारी ने नायिका के अंग–प्रत्यंग, हावभाव, नायक नायिका के प्रेम प्रसंगो और क्रीड़ाओं का सरस तथा सजीव वर्णन किया है। बिहारी का प्रेम भी सामान्य गृहस्थ जीवन का प्रेम है। उनके

टिप्पणी

यहां प्रेम शुद्ध अशरीरी नहीं है। बिहारी के प्रेम जीवन का आदर्श परेवा का सुखी जीवन है जिसमें किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं है, कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है और कोई अभाव नहीं है–

पटु पाखैं भखु कांकरे सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि में तू ही एक विहंग।।

प्रिय के साहचर्य के सुख को इतना महत्व देना जीवन में अत्यंत स्वाभाविक है। इसी उल्लास को बिहारी एक दोहे में रेखांकित करते हुए मुक्ति (मोक्ष) को अस्वीकार कर देते हैं–

चमक तमक, हांसी, हंसी समक मसक झपट लपटानि।
ए जिहिं रति सो रति मुकति, और मुकति अति हानि।।

तो वहीं बिहारी का श्रृंगार वर्णन नितान्त स्वाभाविक है। बिहारी एक ग्रामीण युवती के निरंलकार सौन्दर्य पर इसलिए मुग्ध हैं कि जब वह गदराये शरीर वाली युवती हंसती है तो उसके गालों में गड्ढे पड़ जाते हैं। श्रृंगार के नाम पर उसने एक चमकीले कीड़े की पांख या सुनहले रंग के जंगली पौधे की पत्ती का एक टुकड़ा बिन्दी के रूप में लगा लिया है–

गोरी गदकारी परैं हंसत कपोलन गाड़।
कैसी लसति गंवारि यह, सुनकिरवा की आड़।।

श्रृंगार का एक ऐसा ही दोहा राधा–कृष्ण की प्रेम क्रीड़ा का है–

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहनु हंसे देन कहै नटि जाय।।

बिहारी का काव्य श्रृंगार और प्रेम के ऐसे बहुत सारे चित्रों से सजा है। उसमें सामान्य जन जीवन, गृहस्थ जीवन के प्रेम के चित्रों से लेकर नायक–नायिका के बीच के स्वाभाविक राग–विराग सम्मिलित हैं। बिहारी का प्रेम और श्रृंगार वर्णन कोरी कल्पना न होकर उस समय की वास्तविकता की उपज है इसलिए वह विश्वसनीय और मोहक है।

7. प्रकृति चित्रण

मनुष्य का सरोकार हमेशा से प्रकृति से रहा है। पेड़ पौधे, पशु पक्षी, नदी तालाब, घाटी पहाड़ से मनुष्य का जीवन गहरे अर्थों में जुड़ा रहा है। वस्तुतः पूरे रीतिकालीन काव्य का प्रकृति से बहुत ही नजदीक का रिश्ता रहा है। बिहारी के अतिरिक्त सेनापति जैसे कवि तो अपने प्रकृति वर्णन के लिए ही प्रसिद्ध हैं। बिहारी का प्रकृति वर्णन मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध में सन्तुलन की तरह है। बिहारी प्रकृति को सौन्दर्य के उपमानों के रूप में श्रृंगार के भावों के सहायक के रूप में और सांकेतिक अर्थों के माध्यम के रूप में चित्रित करते हैं–

सोन जुही सी जगमगै अंग–अंग जोबन जोति।
सुरंग कसूंभी, कचुकी, दुरंग देह–दुति होति।।

टिप्पणी

अथवा–अन्योक्ति माध्यम के रूप में–

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब अलि, रही गुलाब में, अपत कंटीली डार।।

तो वहीं बिहारी एक दोहे में चैत के महीने में आमों के बाग दूर से मंजरियों की मादक गन्ध से भ्रमरों को आकर्षित करते हैं। मंजरियों को घेर कर गुनगुनाते हुए भौंरे उस आकर्षण को ध्वनिमय बनाते हैं–

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी–गंध।
ठौर–ठौर झौरत झूमत झंपत, झौर–झौर मधु–अंध।।

इसी तरह जेठ की दोपहरी का वर्णन करते हुए बिहारी कहते हैं कि–

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन–तन मांह।
देखि दुपहरी जेठ की छाहौं चाहति छांह।।

इस दोहे में 'छांहौ चाहति छांह' कह कर बिहारी ने जेठ की तपती दोपहरी के भयंकरता को मूर्तिमान कर दिया है। दूसरे रीतिकालीन कवियों की तरह बिहारी ने भी प्रकृति को आलम्बन के रूप में ही चित्रित किया है। किन्तु अनुभूति की सघनता और विश्वसनीयता बिहारी के प्रकृति चित्रण को महत्वपूर्ण बनाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बिहारी न केवल रीतिकाल के बल्कि पूरे हिन्दी साहित्य के विशिष्ट कवि हैं, उनकी यह विशिष्टता उनकी काव्यगत विशेषताओं के कारण है।

3.3.2 बिहारी की बहुज्ञता

एक श्रेष्ठ कवि की अन्तर्दृष्टि व्यापक होनी चाहिए। कविता समाज सापेक्ष होती है। उसकी महत्ता के लिए यह आवश्यक है कि कवि जीवन और जगत को सम्पूर्णता में समझे, जीवन और जगत के समस्त सत्यों को आत्मसात करे। कवि की दृष्टि जितनी असाधारण होगी वह उतनी ही गहराई से वस्तुओं, घटनाओं के भीतरी सन्दर्भों से स्वयं को जोड़ सकेगा। कवि अपने बाह्य जगत को अपनी भावमयी कविता में तभी पुनरुत्पादित कर पाता है जब उसकी दृष्टि उदार और सम्पन्न हो। कवि की अनुभूति जितनी व्यापक और उदार होगी उसकी कविता उतनी ही विशिष्ट होगी। आचार्य मम्मट ने कहा है कि– "शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्। काव्या शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुदभवे।।" अर्थात यह निर्विवाद है कि कवि को उत्तम काव्य के सृजन के लिए अन्य चीजों के अलावा लौकिक ज्ञान यानी 'लोकशास्त्र के अवेक्षण' में पारंगत होना चाहिए। एक सामान्य व्यक्ति का प्रायः अपने जीवन के सुख–दुःख से सम्बन्ध होता है, किन्तु एक कवि अपनी संवेदना और अनुभूति के बल पर दूसरों के सुख–दुःख को भी महसूस कर उसे कविता में प्रस्तुत करता है। कवि ऐसा तभी कर पाता है जब उसे संसार का निकट से ज्ञान हो। इस दृष्टि से देखा जाय तो बिहारी मौलिक प्रतिभा के धनी होने के साथ–साथ जीवन और जगत के विविध विषयों से भी परीचित थे। उनको लोक और शास्त्र दोनों का विशद ज्ञान था। यही कारण है कि उनके दोहों में उनकी बहुज्ञता स्पष्टतः दिखती है। बिहारी को केवल ब्रजभाषा का ही नहीं बल्कि

टिप्पणी

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा फारसी आदि भाषाओं का ज्ञान था। साथ ही उन्होंने हिन्दी के अपने पूर्ववर्ती कवियों तुलसीदास, सूरदास, कबीर आदि का भी विधिवत अध्ययन किया था। वे साहित्यशास्त्र के भी मर्मज्ञ थे। उनके इस ज्ञान आधारित बहुज्ञता को उनके काव्य में लक्षित किया जा सकता है। लोकज्ञान के अतिरिक्त उन्हें अपने समय के अधिकांश ज्ञान के माध्यमों की गहन जानकारी थी। बिहारी ने आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, चित्रकला, इतिहास, पुराण, राजनीति एवं नीतिशास्त्र आदि के ज्ञान का अपने दोहों में बखूबी प्रयोग किया है। बिहारी की बहुज्ञता को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

1. मानव प्रकृति की जानकारी

बिहारी को मानव–प्रकृति की गहरी जानकारी थी। दूसरे शब्दों में उन्हें मानव–मन का चितेरा कहा जा सकता है। मानव–मन और उसकी प्रकृति का यह ज्ञान उन्हें मनोविज्ञान से मिला था। उन्होंने मानव–मन के शोक, हर्ष, प्रेम, शृंगार आदि मनोभावों का जीवन्त चित्रण किया है। राजा जब अपनी आसक्तियों के चलते रात–काज से विमुख हो जाता है, तो उसे किस प्रकार 'कान्तासम्मत उपदेश' दिया जा सकता है, उसका उदाहरण बिहारी का यह दोहा है–

नहिं परागु, नहीं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल,
अली, कली ही सौं बंध्यौं, आगें कौन हवाल।

तो वहीं ऐश्वर्य और धन के अहंकार में अंधे हुए पुरुष को बिहारी इस प्रकार सचेत करते हैं–

कनक कनक तैं सौ गुनौ, मादकता अधिकाय।
उहिं खाए बौराय जग, इहिं पाएं हीं बौराय।।

1. ज्योतिष का ज्ञान

बिहारी आमेर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। उस समय जयपुर (आमेर) ज्योतिष का महत्वपूर्ण केन्द्र था। बिहारी को ज्योतिष का गहरा ज्ञान था। जिसका प्रयोग वे अपने दोहों में करते थे। एक दोहे में कहते हैं कि –

सनि कज्जल चख झख लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति है भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु।।

अर्थात नायिका ने काजल लगी आंखों से नायक को देखा। फलस्वरुप नायक के मन में स्नेह उत्पन्न हो गया। इस प्रेम के परिणाम के बारे में चिन्तित नायिका को उसकी सखी समझाते हुए कहती है कि काजलरूपी शनि के नेत्ररूपी मीन लग्न में स्थित होने के सुन्दर समय में जन्मे स्नेह रूपी बालक राजा की तरह सम्पूर्ण शरीर पर अधिकार करेगा। अर्थात प्रेम सफल होगा। इस दोहे का आधार ज्योतिष का वह नियम है जिसमें कहा गया है कि जब शनि मीन लग्न में हो तो उसे राजयोग कहते हैं। और उस समय जिस बच्चे का जन्म होता है वह राजा बनता है। यहां रंगों की समानता का आधार लिया गया है। शनि का रंग काला होता है और सुन्दर आंखों का उपमान मीन (मछली) से दिया जाता है। इसी प्रकार बिहारी ने अपने एक दोहे में 'वर्षा योग' का प्रयोग किया है–

टिप्पणी

मंगल बिन्दु सुरंग मुख ससि केसर आड़ गुरू।
इक नारी लहि संग रसमय किय लोचन जगत।।

अर्थात नेत्रों, मुख और तिलक के रंगों में मंगल, चन्द्रमा और बृहस्पति (वर्णसाम्य के आधार पर) को देखकर कवि कह रहा है कि – चन्द्रमा (मुख) मंगल (लाल रंग का टीका) और बृहस्पति (केसर का पीला टीका) एक ही नारी (नाड़ी) को प्राप्त कर संसार को (देखने वालों के लोचन–जगत को) रस से आप्लावित किये हुए हैं। इस दोहे का आधार ज्योतिष ही है जिसमें कहा गया है कि यदि एक ही नाड़ी पर चन्द्रमा, मंगल और बृहस्पति एकत्र हो जांय तब भारी वर्षा का योग होता है।

2. नीतिशास्त्र का ज्ञान

बिहारी नीतिशास्त्र के भी मर्मज्ञ थे। बिहारी सतसई में उन्होंने अपने विशिष्ट नीति ज्ञान का परिचय कई जगह दिया है। एक दोहे में वे कहते हैं कि स्वार्थ में अंधे व्यक्ति को कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, ऐसे व्यक्ति की संगत में केवल हानि ही होती है–

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगन्ध।।

बिहारी जानते थे कि बड़ा बनने के लिए मनुष्य को सद्‌गुणों और सद्‌वृत्तियों से युक्त होना पड़ता है। वे मनुष्य के ओछेपन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिं न नैक हूं फारि निहारै नैन।।

बिहारी एक तरफ चाटुकारिता के बल पर उच्च पद प्राप्त करने वाले लोगों की निन्दा करते हैं तो वहीं वे यह भी जानते हैं कि राजा लोग भी व्यक्ति के गुणों को नहीं बल्कि उसकी चाटुकारिता को ही महत्व देते हैं–

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रही चंग–रंग भूपाल।।

इस तरह देखा जा सकता हैं कि बिहारी नीतिशास्त्र और व्यवहार ज्ञान के पंडित थे जिसका प्रयोग उन्होंने अपने दोहों में किया है।

3. गणित का ज्ञान

बिहारी ने 'बिहारी सतसई' में जहां–तहां गणित के ज्ञान का भी प्रयोग किया है। यद्यपि उन्होने गणित के सामान्य नियमों का ही प्रयोग किया है किन्तु काव्य में प्रयुक्त होने के बाद गणित और काव्य दोनों का सौन्दर्य बढ जाता है–

कहत सबै बेंदी दएं आंकु दस गुनो होतु।
तिय लिलार बेंदी दएं अगनित बढ़तु उदोतु।।

अर्थात अंक के आगे बिन्दी लगाने से अंक दस गुना हो जाता है किन्तु वही बिन्दु जब किसी स्त्री के मस्तक पर लगाया जाता है तब उसका सौन्दर्य अगणित हो जाता है।

टिप्पणी

4. आयुर्वेद का ज्ञान

बिहारी अपनी बहुज्ञता का प्रयोग अपनी कविता को सब तक सहज रूप से सम्प्रेषित करने के लिए करते हैं। शास्त्रीय और लौकिक ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि से होता है। बिहारी अपने इस ज्ञान का उपयोग भाव–प्रसार के साधन के रूप में करते हैं। बिहारी ने अपने आयुर्वेद के ज्ञान का प्रयोग इन दोहो में किया है–

मैं लखि नारी–ज्ञानु, करि राख्यो निरधार यह।
बहई रोगु–निदानु, बहै वेदु, औषधि वहै।।
यह बिनसतु नगु राखि कै, जगत बड़ौ जसु लेहु।
जरी विषम जुर जाइयैं, आइ सुदरसनु देहु।।
बहु धनु लैं अहसानु कै, पारौ देत सराही।
बैद–बधु हंसि भेद सौं रही नाह मुंह चाहि।।"

इन दोहों में पारौ (पारदभस्म), नारी–ज्ञानु (नाड़ी ज्ञान), सुदरसन (सुदर्शन तथा सुदर्शन नामक चूर्ण), रोगु–निदानु (रोग–निदान), औषधि, विषम जुर (विषम ज्वर) आदि वैद्यक शास्त्र के इन शब्दों का प्रयोग कर बिहारी ने अपने आयुर्वेद ज्ञान का परिचय दिया है।

5. इतिहास–पुराण का ज्ञान

कुछ विद्वानों ने बिहारी को पौराणिक भी कहा है। 'बिहारी सतसई' के कई दोहों में बिहारी ने अपने पुराण ज्ञान का प्रयोग किया है। जैसे द्रौपदी चीर हरण, सीताराम चरित्र, अघासुरवर्णन, गोवर्धन पर्वत लीला, वामनावतार आदि। इनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार है–

पिय बिछुरन कौ दुराहु दुखु, हरषु जात प्यौसार।
दुरजोधन लौं देखियत तजत प्रान इहि बार।।

या फिर

प्रलयकरन बरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति–गरबु हर्‌यौ हरषि गिरिधिर गिरि धरि हाथ।।

6. राजनीति शास्त्र का ज्ञान

बिहारी राजाश्रय के कवि थे। उन्हें राजनीति का विधिवत ज्ञान था। उन्होंने राजनीति के कई लक्षणों का प्रयोग अपने दोहों में किया है। एक दोहे में वे कहते हैं कि यदि सेना का अग्रिम पंक्ति का दस्ता कमजोर हो तो मुख्य सेना पर अचानक मुश्किल पड़ सकती है–

जुरे दुहुनि के दृग झमकि रुके न झीनै चीर।
हलुकी फौज हरौलु ज्यों परत गोल पर भीर।।

तो वहीं एक दोहे में वे दोहरी शासन प्रणाली में प्रजा के ऊपर जो अत्याचार और कुशासन की मार पड़ती है उसका चित्रण करते हुए कहते हैं कि–

टिप्पणी

दुसह दुराज प्रजानु कौ क्यों न बढ़ै दुख दन्द।
अधिक अंधेरो जग करै मिलि मावस रवि चन्द।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बिहारी के काव्य की श्रेष्ठता और लोकप्रियता उनकी बहुज्ञता के कारण है। बिहारी को अपने समय और पूर्व से चले आ रहे लगभग सभी शास्त्रों, विषयों के साथ–साथ लोक नीति और व्यवहार का भी पूर्ण ज्ञान था। जिसका प्रयोग वे अपने काव्य में करते थे। जिससे उनके काव्य के सौन्दर्य और व्यजंना में वृद्धि होती थी।

व्याख्या भाग : भक्ति

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित–दुति होइ।।

शब्दार्थ : भव = संसार, दुनिया। **बाधा** = विघ्न, मुश्किल। **भव–बाधा** = संसारिक दुःख, दरिद्रता, अपमान, चिन्ताएं आदि जो मनुष्य को व्यथित किये रहती हैं। **नागरि** = चतुर, सयानी। **झाँई** = आभा, परछाँई, झलक। **परैं** = पड़ने से। **स्यामु** = श्रीकृष्ण, सांवले रंग वाले कृष्ण, काला रंग (दुःख, दरिद्रता, बाधा के अर्थ में) **हरित** = हरा। **दुति** = चमकदार।

सन्दर्भ : उपर्युक्त दोहा रीतकाली के श्रेष्ठ कवि बिहारी द्वारा रचित हैं जिसे उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' में संकलित किया गया है।

प्रसंग : बिहारी अपने भक्तिपरक दोहों के लिए प्रसिद्ध हैं। रीतिकालीन काव्य परम्परा के अनुसार शृंगार और नीति सम्बन्धी दोहों के अलावा बिहारी ने भक्ति के भी श्रेष्ठ दोहे लिखे। व्याख्या के लिए दिये गये दोहे में बिहारी राधा जो कृष्ण की आदि शक्ति हैं, से अपने जीवन के दुःखों को दूर करने के लिए अनुरोध कर रहे हैं। यह भक्ति भाव का श्रेष्ठ दोहा है।

व्याख्या : वे चतुर, (सर्व सामर्थ्यवान) राधा मेरे जीवन के समस्त दुःखों को दूर करें, जिनके शरीर की परछाहीं पड़ने मात्र से श्रीकृष्ण का श्याम रंग हरे रंग में बदल जाता है।

जीवात्मा 'भव' बाधा से मुक्त होने के लिए राधा की आराधना करती है। राधा में वह योग्यता है जिससे वे जीव के अनुरोध को स्वीकार कर उसके दुःख को दूर कर सकती हैं। राधा की इसी योग्यता को रेखांकित करते हुए जीव प्रार्थना करता है कि वे ही (सोय या सोइ) राधा मेरी भवबाधा का हरण करें जो श्रीकृष्ण की 'दुति' का 'हरण' करती हैं। यहां इस क्रिया के कई अर्थ हैं। 1. श्यामवर्ण के श्रीकृष्ण की देह पर राधा की आभा (झाई) पड़ते ही मुख्य दुति (श्यामलता) का हरण हो जाता है। कृष्ण का रंग सावंले से गोरा हो जाता है। 2. राधा की झाईं (झलक) मात्र इतनी प्रभावशाली है कि उसके (कृष्ण की आंखों में) पड़ते ही कृष्ण का मन हरा (बदल जाना, अच्छा होना, प्रसन्न होना) हो जाता है। 3. जो शक्ति (माया) इस 'भव' को संभव करती है वही इससे उत्पन्न 'भय' का हरण भी कर सकती है।

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न उनकौ कामु।
मन – काँचै नाचै बृथा, साँचै राँचै रामु।।

शब्दार्थ : जपमाला = माला जिस पर जाप किया जाता है। **छापैं** = छाप (द्वारका के पुराने मन्दिर में धातु की मुद्राओं को आग में गर्म कर भक्तों की देह पर छाप दिया जाता था, जिससे स्थायी चिन्ह 'छापा' उभर आता था। वह उस समय भक्ति का एक प्रकार का प्रतीक हुआ करता था।) **तिलक** = माथे पर लगाया जाने वाला टीका। **सरैं** = होना, काम निकलना। **मन काँचै** = कच्चे मन वाला, कमजोर आस्था वाला, भक्ति से रहित मन वाला। **साँचै** = सच्चाई से, सच्ची भक्ति से। **राँचै** = रंजित होता है, प्रसन्न होता है।

टिप्पणी

प्रसंग : सच्ची भक्ति के लिए बाह्य आडम्बरों की व्यर्थता को स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा है कि भक्ति मन की सच्ची आस्था, पवित्रता और निष्ठा से सम्बन्धित है। वेशभूषा, चन्दन टीका, माला आदि बाह्य प्रतीक हैं। सच्ची भक्ति में इनका कोई स्थान नहीं है।

व्याख्या : जप की माला (जपने और धारण करने) से, छापा बनावाने से और तिलक लगाने से एक भी काम नहीं बनता, यह सब करते हुए कच्चे मन वाला व्यर्थ (वृथा – बिना कुछ लाभ के) ही नाचता रहता है। राम (ईश्वर) तो सच्चे (आचरण वाले) से ही प्रसन्न (राँचै) होते हैं।

मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु काँचो काँच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियत जहाँ।।

शब्दार्थ : **निरधार** = निश्चय। **काँचों** = टूटकर अनेक रूपों में बिखर जाने वाला। **काँच** = शीशा। **एकै** = एक। **अपार** = अनंत।

प्रसंग : कवि ने दुनिया की नश्वरता और ईश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन किया है। जिसमें कहा गया है कि मनुष्य इस दुनिया को इसकी नश्वरता के बावजूद सत्य मानता है और इसमें फंसा रहता है। जबकि सत्य यह है कि एक मात्र ईश्वर ही सर्वव्यापी है।

व्याख्या : मैंने निश्चित रूप से (निरधार) यह जान लिया है कि यह संसार कच्चा (टूटकर अनेक रूपों में बिख़र जाने वाला) शीशा है। इसलिए इस संसार के प्रत्येक टुकड़े में प्रत्येक कण में जिनकी संख्या अनन्त (अपार) है, एक ही रूप (ब्रह्म का) प्रतिबिंबित होता हुआ दिखाई दे रहा है।

नीति

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख–दंदु।
अधिक अँधेरौ जग करत मिलि मावस रहब–चंदु।।

शब्दार्थ : **दुख–दंदु** = दो प्रकार के दुःखों का संघर्ष (दुख–द्वन्द्व)।

प्रसंग : कवि की प्रस्ताविक उक्ति है कि 'दुराज' अर्थात दुअमली में प्रजा को अधिक दुःख उठाना पड़ता है।

व्याख्या : दुःसह द्विराज में प्रजाओं के निमित्त दुःख का द्वन्द्व क्यों न बढ़े। (देखो) अमावस को सूर्य (तथा) चन्द्रमा मिलकर (एक राशि पर अधिकार करके) जगत में अधिक (और सब तिथियों की अपेक्षा विशेष) अंधेरा (1. तिमिर 2. अंधेर, अत्याचार) करते हैं।

नहिं परागु, नहीं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बंध्यौं, आगैं कौन हवाल।।

टिप्पणी

शब्दार्थ : परागु = पराग (फूलों में मौजूद कण)। **मधुर** = मीठा। **मधु** = शहद। **बिकासु** = खिलना, विकसित होना। **अली** = भौंरा। **बंध्यौ** = बंधना, बिंध जाना। **हवाल** = स्थिति, दशा।

प्रसंग : यह बिहारी का बहुत प्रसिद्ध दोहा है। माना जाता है कि राजा जयसिंह अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में पड़कर राज–काज से विमुख हो गये थे तब बिहारी ने राजा को यह दोहा लिखकर भिजवाया। राजा ने जब यह दोहा पढा तब उनको अपनी गलती का एहसास हुआ और वे वापस अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सचेत हो गए। यह दोहा अन्योक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण है। राजा जब अपनी आसक्तियों के चलते राजकाज से विमुख हो जाता है, तो उसे किस प्रकार 'कान्तासम्मत उपदेश' दिया जा सकता है, यह दोहा उसका उदाहरण है। अवयस्क युवती के प्रेम में पड़े हुए किसी भी पुरुष पर यह दोहा लागू हो सकता है।

व्याख्या : अभी इस कली (अविकसित पुष्प) में पराग नहीं आया है, मधुर मधु का सुजन नहीं हुआ है, अभी (इहिं काल) इस कली का विकास नहीं हुआ है, (अर्थात अभी कली पुष्प नहीं बन पायी है।) अतः हे भ्रमर! तुम अभी ही (इस अविकसित) कली से बँध गये हो तो आगे (जब यह कली विकसित होकर पुष्प में परिवर्तित हो जायेगी, पूर्णयौवना होगी) तुम्हारा क्या हाल (स्थिति, दशा) होगा।

नायिका वर्णन

पत्रा हीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास।
नितप्रति पून्यौई रहै आनन ओप उजास।।

शब्दार्थ : पत्रा = तिथि–पत्र, पचांग। **तिथि** = दिनांक, दिन। **पाइयै** = पाना, प्राप्त करना। **वा** = उसके। **चहुँ पास** = चारो ओर। **नितप्रति** = प्रतिदिन। **पून्यौं** = पूर्णिमा, पूरा चांद। **आनन** = मुख। **उजास** = उजाला।

प्रसंग : दूती, सखी, नायक अथवा कवि ने अत्युक्तिपूर्ण ढ़ंग से नायिका के मुख के सौन्दर्य की प्रशंसा की है।

व्याख्या : (तिथि जानने के दो साधन हैं– एक तिथि–पत्र या पंचांग और दूसरा चन्द्रमा का प्रकाश।) किन्तु इस दोहे में कहा गया है कि उस (वा) घर (जहां वह सुन्दर स्त्री रहती है) के चारों तरफ (चँहु पास) तिथि सिर्फ पत्रा से ही पायी (जानी) जा सकती है (अर्थात पत्रा देखकर ही पता लगाया जा सकता है कि आज कौन सी तिथि है, क्योंकि उस स्त्री का मुख हमेश पूर्णिमा के चांद की तरह प्रकाशित, चमकता रहता है, अतः) नित्य प्रति वहां मुख की चमक के प्रकाश के कारण (आनन ओप उजास) पूर्णिमा ही बनी रहती है अर्थात् प्रकाश देखकर प्रत्येक रात को पूर्णिमा की रात ही समझा जाता है।

रससिंगार– मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु, नैन।।

शब्दार्थ : रससिंगार मंजनु किए = श्रृंगार रस में नहाये या डूबे हुए। **कंजनु** = कमल। **भंजनु** = भंग, पराजय। **अंजनु रंजनु हूँ बिना** = अंजन रंगने (लगाने) के बिना। **खंजनु** = खंजन पक्षी, जो अपनी चंचलता के लिए प्रसिद्ध है। **गंजनु** = तिरस्कार। **नैन** = आंख।

टिप्पणी

प्रसंग : नायक, सखी, दूती या कवि द्वारा स्त्री की सहज और सुन्दर आंखों की स्वाभाविक प्रशंसा की गई है।

व्याख्या : श्रृंगार रस में नहायी हुई या डूबी हुई आँख कमल की सुन्दरता को भी पराजित कर रहीं हैं (भंग कर रही हैं)। अपनी शोभा के लिए किसी बाहरी संसाधन (साधन) की आवश्यकता न समझने वाली सुन्दर स्त्री ने अंजन तक नहीं लगाया है। बिना अंजन के (इस सुन्दरी के) ये नेत्र सुन्दरता और लीलायुक्त चंचलता में खंजन पक्षी का गर्व भंग करने (लज्जित करने) वाले हैं।

विरह

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात।।

शब्दार्थ : कागद = कागज। **सँदेसु** = संदेश। **लजात** = संकोच। **हियौ** = हृदय।

प्रसंग : प्रिय के वियोग में तड़प रही विरहिणी प्रवासी को किसी भी भंति अपना हाल नहीं बता पाती है। वह न तो संदेश भेज पाती है और न उसे पत्र लिख पाती है। अपने विरही हृदय के हाल के लिए प्रिय के हृदय को सहभोक्ता बनाकर कहती है कि वही सब कुछ बता देगा।

व्याख्या : विरहिणी कहती है कि अपना हाल कागज पर लिखते नहीं बनता (अर्थात लिख नहीं पाती, विरह के कारण लिखने की स्थिति में नहीं है) और मौखिक सन्देश कहते हुए उसे संकोच हो रहा है (लेकिन मेरा प्रेम सन्देश अनकहा नहीं रह जायेगा, मुझे पूरा भरोसा है कि) तुम्हारा हृदय ही मेरे हृदय की सारी बातें कह देगा। इस दोहे में प्रेम की बहुत ही स्वाभाविक एवं मार्मिक स्थिति का वर्णन किया गया है।

3.4 घनानन्द : सामान्य परिचय

घनानन्द रीतिकाल के रीतिमुक्त काव्यधारा के सर्वप्रमुख कवि हैं। घनानन्द की काव्यगत विशेषताओं को महत्व देते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें 'साक्षात रसमूर्ति' कहा है। घनानन्द का जन्म 1689 ई. में और मृत्यु 1739 ई. में हुई थी। घनानन्द के बारे में प्रसिद्ध है कि ये दिल्ली के शासक मुहम्मदशाह के यहां मुख्य मुंशी थे। साथ में अद्भुत काव्य प्रतिभा के धनी भी थे, इसीलिए बादशाह के दरबार में घनानन्द की बहुत प्रतिष्ठा थी। घनानन्द सुजान नामक नर्तकी से प्रेम करते थे। घनानन्द से उनकी प्रतिभा, दरबार में उनका विशेष स्थान और सुजान जैसी श्रेष्ठ नर्तकी के प्रेम पात्र होने के कारण दूसरे दरबारी ईर्ष्या करते थे। हर समय वे घनानन्द को नीचा दिखाने का प्रयास करते रहते थे। अपनी इसी योजना के तहत घनानन्द के दुश्मनों ने बादशाह से कहा कि घनानन्द बहुत अच्छा गीत गाते हैं। ऐसा सुनकर बादशाह ने उनसे गीत गाने को कहा, किन्तु घनानन्द आनाकानी करने लगे। कुचक्रियों को अवसर मिला, उन्होंने बादशाह से कहा कि घनानन्द गाते तो अच्छा हैं किन्तु सिर्फ सुजान के कहने पर गाते हैं, सुजान को बुलाया जाये और उनसे कहलवाया जाये तो ये गायेंगे। हुआ भी यही। सुजान बुलाई गयीं। उन्होंने कहा और

अपनी प्रगति जांचिए

1. मीराबाई का जन्म कब हुआ?
   (i) 1502
   (ii) 1504
   (iii) 1506
   (iv) 1508
2. मीरा ने किस संप्रदाय से दीक्षा ली थी?
3. बिहारी किस राजा के दरबारी कवि थे?
4. बिहारी की बहुज्ञता के चार उदाहरण दीजिए।

टिप्पणी

घनानन्द ने गाया। गाते समय घनानन्द का मुंह सुजान की तरफ और पीठ बादशाह ओर थी। गाना समाप्त हुआ। उस दिन सिद्ध हो गया कि सचमुच घनानन्द एक श्रेष्ठ गायक भी हैं। बादशाह बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु घनानन्द से ईर्ष्या रखने वाले दरबारियों ने बादशाह को भड़का दिया कि घनानन्द ने आपकी ओर पीठ और सुजान की ओर मुंह करके गाया तथा आपके कहने पर नहीं सुजान के कहने पर गाया। जाहिर सी बात है कि ये दोनों बातें बादशाह का अपमान हैं। दरबारियों की बातों में आकर बादशाह ने घनानन्द को राज्य से निकल जाने का आदेश सुना दिया। घनानन्द ने राज्य छोड़ते समय सुजान को भी साथ चलने को कहा, किन्तु सुजान ने मना कर दिया। इस बात से घनानन्द का दिल टूट गया। वे विरक्त हो गए। वृन्दावन जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। वृन्दावन में रहते हुए घनानन्द एकनिष्ठ भाव से सुजान की स्मृति में सुजान को ही संबोधित काव्य–सृजन करते रहे। घनानन्द की कविता में आया हुआ 'सुजान' शब्द उनकी प्रेमिका और परमतत्व दोनों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऐसी मान्यता है कि नादिरशाह के आक्रमण में घनानन्द की मृत्यु हुई।

घनानन्द के ग्रन्थों की संख्या के सम्बन्ध में कई मत हैं। उनमे से कुछ इस प्रकार हैं– 1. सुजान सागर 2. रसकेलिवल्ली 3. विरहलीला 4. कृपाकाण्ड और 5. लोकसार। इसके अतिरिक्त उनके सवैयों और कवित्त की और भी रचनाएं मिलती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार उनके सवैयों तथा कवित्त की रचनाओं में 150से लेकर 400 तक छंद संगृहीत हैं। डॉ. नगेन्द्र ने घनानन्द के सवैयों–कवित्त की संख्या 752, पदों की संख्या 1,057 और दोहे–चौपाइयों की संख्या 2,354 तक मानी है।

घनानन्द रीतिकाल के सर्वाधिक व्यवस्थित कवि हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में घनानन्द की काव्य–प्रतिभा, काव्य–विवेक और काव्य–निष्ठा की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए कहा है कि ''प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।''

3.4.1 घनानन्द की प्रेम साधना और भक्ति

'लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत' की घोषणा करने वाले घनानन्द और उनकी कविता में निहित प्रेम और भक्ति दूसरे रीतिकालीन कवियों से भिन्न हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने घनानन्द की कविता की महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'ये साक्षात् रसमूर्ति और ब्रजभाषा काव्य के प्रधान स्तम्भों में हैं।' 'इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। विप्रलम्भ शृंगार ही अधिकतर इन्होंने विषय रूप में लिया है। ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तककार कवि हैं। 'प्रेम की पीर' लेकर ही इनकी वाणी का प्रस्फुटन हुआ। प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।' 'प्रेम की गूढ़ अन्तर्दशा का उद्घाटन जैसा इनमें है वैसा हिन्दी के अन्य शृंगारी कवियों में नहीं।' घनानन्द की कविता के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की उपर्युक्त टिप्पणियां उनके महत्व का परिचय देती हैं। रीतिमुक्त कवियों के बारे में प्रायः यह मान्यता रही है कि 'इनका प्रेम मुख्यतः अशरीरी और मानसिक है। वैयक्तिकता के प्रभाव के कारण इनके प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण को रोमैण्टिक प्रेम की

टिप्पणी

संज्ञा दी जा सकती है।' किन्तु घनानन्द के काव्य में उपलब्ध रूप–वर्णन और संयोग को देखते हुए उनके प्रेम को केवल मानसिक और अशरीरी नहीं कहा जा सकता। घनानन्द का जो प्रेमी है वह पहले प्रेमिका के शरीर के एक–एक अंग की शोभा पर मुग्ध होता है और फिर उसके मन में उस सौन्दर्य को प्राप्त करने की लालसा जगती है और जब उस सौन्दर्य को प्राप्त नहीं कर पाता तो कष्ट का अनुभव करता है–

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भांति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आंजिहौं।
रति–रसना–सवाद–पांवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सों मांजिहौं।
जान प्यारे प्रान अंग–अंग रुचि रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग दुख भंजिहौं।
कब घनआनंद ढरौंहीं बानि देखें सुधा,
हेत मन–घट–दरकनि सुठि रांजिहौं।

घनानन्द का प्रेम मानसिक कभी नहीं रहा है। उनका प्रेम शरीर से शुरू हो कर मन तक पहुंचता है। किन्तु यह यात्रा इतनी सात्विक और निर्दोष है कि वहां किसी भी प्रकार के विलास और न्यूनता का अवकाश नहीं रह जाता। घनानन्द का प्रेमी अपने भावबोध में विशिष्ट है। उस विशिष्ट प्रेमी की स्थिति ऐसी है कि प्रेम की घनीभूत अवस्था में प्रिया को पाने के लिए उसके मन और आंखों का में होड़ लगी है–

नैन कहै सुनि रे मन, कान दै क्यों इतने गुन मेटि दयौ है।
सुन्दर प्यारे सुजान को मन्दिर बावरे तूं हमहीं ते भयो हैं
लोभी तिन्हैं तनको न दिखावत ऐसो महामद दाकि गयो है।
कीजियै जू घनआनन्द आय कै पाय परौं यह न्याय नयौ है।

प्रेमी के मन और आंखों के बीच झगड़ा यही है कि उसने आंखों ने प्रिया के रूप से परिचय कराया किन्तु मन ने अपने को उस रूप का मन्दिर बना लिया है। अर्थात प्रिय मन–मन्दिर में है किन्तु उसे देखने की लालसा आंखों को है। यहां प्रिय का प्रत्यक्ष दर्शन ही मुख्य लक्ष्य है।

घनानन्द का प्रेम शरीर से आरम्भ होता है। विरह की चरम दशा भी शरीर के स्तर पर ही घटित होती है। किन्तु विरह में प्रेम की स्थिति इतनी संयत और नियंत्रित है कि उसके वर्णन में घनानन्द ने किसी भी प्रकार की रीतिकालीन अतिशयोक्ति का सहारा नहीं लिया है। यही घनानन्द की काव्यात्मक ऊंचाई है। घनानन्द का प्रेम स्वाभाविक है। उनके यहां प्रेम इतना प्रगाढ़ है कि वियोग भी गरिमामय हो गया है। घनानन्द का प्रेम महान है। प्रेम को पाने का सुख अकथनीय है तो प्रेम को नहीं पाने का दुःख अनिर्वचनीय हो जाता है। यहीं आकर घनानन्द का लौकिक प्रेम अलौकिक हो जाता है। इसीलिए घनानन्द अपनी कविता में लौकिक दृष्टि से प्रेम के आदर्श माने जाने वाले मीन (मछली) को अस्वीकार कर देते हैं। मछली को पानी से लगाव होता है किन्तु पानी से अलग होने की स्थिति में वह अपने प्राण त्याग देती है। किन्तु घनानन्द का प्रेमी मृत्यु को भी अस्वीकार कर देता है।

उसके अनुसार विरह में प्राण देकर पीड़ा से मुक्ति पाने वाला कायर है। घनानन्द का आदर्श प्रेमी विरह का दुःख सहता है और जीवित रहता है क्योंकि वह दुःख भी तो प्रेमी से ही सम्बन्धित है–

टिप्पणी

हीन भएं जल मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीरसनेही कों लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़, मीत के पानि परैं कों प्रमानै।
या मन की जु दसा, घनआनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।

घनानन्द का प्रेम मनुष्यता पर अपार विश्वास से उपजा है। मनुष्यता पर यही विश्वास अपनी परिणति में देवत्व की सृष्टि करता है। घनानन्द का प्रेम सांसारिक प्रेम से ईश्वरीय प्रेम की आत्मीय यात्रा है। जो प्रेमी को वासना और भोग के कीचड़ में धंसाता नहीं बल्कि उबारता और उदात्त बनाता है।

भक्ति भावना

दूसरे रीतिकालीन कवियों की तरह घनानन्द ने शृंगार और भक्ति को एक दूसरे में मिलाया नहीं है। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम (भक्ति) तक पहुंचने की जो यात्रा घनानन्द ने अपने जीवन में की है वही यात्रा वे अपनी कविता में भी करते हैं। इस लिहाज से उनके जीवन और उनके सृजन में कोई अन्तर नहीं है। वे कहते भी हैं कि 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, माहि तो मेरे कवित्त बनावत।' घनानन्द ने अपनी कविता में प्रेम और अपनी भक्ति दोनों को पर्याप्त गरिमा प्रदान की है। उनका प्रेम जगत और भक्ति जगत दोनों अलग–अलग और पूर्ण हैं। वे अपने शृंगार भाव को किसी भी प्रकार के पाप बोध से जोड़ कर नहीं देखते। वे एक सहज मनुष्य के नैसर्गिक प्रेम को भी ईश्वरीय प्रेम का दर्जा देते हैं–

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, विचार,
बापुरो हहरि बार ही तें फिर आयौ है।
तेही एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि राधा, जिन्हैं देखें सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनन्द सुजान लागि हेत होत,
ऐसे मथि मन पै सप ठहरायौ है।

अर्थात राधा–कृष्ण जिस प्रेम के समुद्र में लीन रहते हैं, वह इस जगत में नहीं है। उसे जानने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता क्योंकि ज्ञान (विचार) उसके तट से ही लौट आता है। अतः उस दिव्य प्रेम से साक्षात्कार करने का सिर्फ एक रास्ता है कि उस समुद्र की एक बूंद जो समस्त लोकों में फैल कर उफन रही है, उसी का आस्वादन किया जाय। घनानन्द की मान्यता है कि जिस स्त्री–पुरुष के प्रेम में मर्यादा, एकनिष्ठता और सच्चाई हो तो वही उस दिव्य प्रेम को अनुभव सम्पन्न बना जायेगा।

घनानन्द के गुरु का नाम श्री वृन्दावनदेव था। इस तरह घनानन्द का सम्बन्ध निम्बार्क सम्प्रदाय से हुआ। निम्बार्क सम्प्रदाय की सख्य भाव की उपासना में परम्परा रही है कि जो महात्मा साधना के उच्चतर चरणों को पार कर जाता था, तब उसके सिद्ध गुरु उसका कोई और नामकरण करते थे जो उनकी साधना और परम्परा दोनों का बोध कराता रहता था। यह नामकरण सबका नहीं हो पाता था। इस दृष्टि से देखें तो निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार घनानन्द को यह दर्जा मिला था। वहां उन्हें महात्मा का स्थान प्राप्त था। अपने एक ग्रन्थ 'वृषभानुपुर सुषमा वर्णन' में स्वयं घनानन्द ने कहा है कि 'नीको नांव बहुगुनी मेरो। बरसाने ही सुन्दर खेरो।' घनानन्द के भक्ति से सम्बन्धित लगभग 39 ग्रन्थ हैं। जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं– 1. कृपाकंद, वियोगिबेलि,इश्कलता, यमुना–यश, अनुभव चन्द्रिका, रंगबधाई, प्रेम–पद्धति, गोकुलगीत आदि। इससे स्पष्ट होता है कि घनानन्द की भक्ति चेतना भक्ति की दृष्टि से भी बहुत प्रखर और स्पष्ट थी। घनानन्द की भक्ति स्वयं को अपने आराध्य के प्रति सम्पूर्ण समर्पण कर देने में है। जैसे तुलसीदास ने राम से अधिक महत्व रामनाम को दिया है, उसी प्रकार घनानन्द कृष्ण से अधिक महत्व कृष्ण कृपा को देते हुए कहते हैं–

टिप्पणी

हरि हू जेतिक सुभाव ही हेरि लहे,
दानी बड़े पै न मांगे बिनु ढरै दातुरी।
दीनता न आवै तौं लौं बन्धु करि कौन पावै,
सांच सों निकट दूरि भाजैं देखि चातुरी।
गुननि बंधे है निरगुन हू अनंदघन,
मति बीर यहै गति चाहैं धीर जातु री।
आतुर न है री अति चातुर विचार थकि,
और सब ढीले कृपाहि के अति आतुरी।

कृष्ण–कृपा की महिमा को आधार बनाकर घनानन्द ने जो पद लिखे हैं उनका ही संग्रह 'कृपाकंद' है। घनानन्द की भक्ति संबंधी जो पद प्राप्त होते हैं उनमें भक्ति का स्वर उदात्त है। जहां कहीं गोपियों के विरह का भी वर्णन उन्होंने किया है वहां विरह में एक उम्मीद, एक रोशनी उपस्थित रही है। घनानन्द की भक्ति दूसरे रीतिकालीन कवियों की तरह बैठे–ठाले का काम नहीं है। उनकी भक्ति एक अकिंचन भक्त के हृदय की आतुर किन्तु मर्यादित पुकार है जिसमें निहित आतुरता की तुलना सूरदास से तो मर्यादा की तुलना केवल तुलसीदास से की जा सकती है।

3.4.2 रीतिमुक्त कवि के रूप में घनानन्द का मूल्यांकन

रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द का स्थान महत्वपूर्ण है। घनानन्द की कविता इन्द्रियानुभूत नहीं हृदयानुभूत है। उसमें भावों की गति और गहराई दोनों है। सुजान घनानन्द की प्रेमिका भी हैं और काव्य–प्रेरणा भी हैं। इसलिए उनकी कविता का स्वर मुख्यतः आत्मप्रधान और व्यक्तिपरक है। घनानन्द ही नहीं लगभग सभी रीतिमुक्त कवियों का लक्ष्य हृदय के भावावेगों को मुक्त भाव से व्यक्त करना है। रीतिमुक्त कवियों ने अपनी प्रेमानुभूति और भक्ति दोनों की अभिव्यक्ति आत्मपरक शैली में की है।

टिप्पणी

यह सर्वविदित है कि घनानन्द सुजान से प्रेम करते थे। सुजान मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में नर्तकी थी। बादशाह ने दूसरे दरबारियों की शिकायत पर जब घनानन्द को राज्य से बाहर निकाला, तब घनानन्द के आग्रह करने पर भी सुजान उनके साथ नहीं गयीं। इस घटना ने घनानन्द की चेतना को सर्वाधिक प्रभावित किया। घनानन्द वृन्दावन जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। प्रेम पात्र की उस बेरुखी के बाद वे विरक्त हो गए थे।

घनानन्द पूरी उम्र अपनी कविताओं में प्रत्येक विधि से उसी सुजान को आवाज लगाते रहे, जिससे उन्हें अस्वीकार कर दिया था। लेकिन एक प्रेमी मन की मर्यादा यह कि घनानन्द ने कहीं भी सुजान को उस अर्थ में बेवफा नहीं कहा है, जिस अर्थ में कहा जाता है। यदि कहीं उलाहना दिया भी है तो वह उसी प्रकार है जैसे प्रेम के अतिरेक में प्रेमी को दिया जाता है–

क्यों हंसि हेरि हरया हियरा अरू क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे को बोलि सुधासने बैननि चैननि मैन निसैन चढ़ाई।।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनन्द साजति क्यों हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीति की पाटी इतै पै न जानिए कौनें पढाई।।

घनानन्द रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि हैं। एक तरफ जहां उनमें रीतिकालीन काव्य के समस्त लक्षण विद्यमान हैं, वहीं दूसरी ओर अपनी कविता की सहज व्यंजना से वे रीतिकालीन काव्य के दायरे का विस्तार भी करते हैं।

प्रेम की विशिष्ट स्थिति

घनानन्द एकनिष्ठ और समर्पित प्रेमी हैं। सुजान के प्रति उनके मन में लगाव था। सुजान के अस्वीकार कर देने के बाद भी घनानन्द को किसी अन्य का प्रेम और सौन्दर्य आकर्षित नहीं कर पाया। घनानन्द सुजान को एक ऐसे चन्द्रमा की तरह चित्रित करते हैं जिसके प्रति अनेक चकोर अपनी निष्ठा प्रदर्शित करते हैं–

मोहि तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आहि,
कहा कछु चन्द कौं चकोरन की कमी है।

घनानन्द की दृष्टि से देखें तो सुजन उनके प्रति कठोर रहीं हैं। निर्दयी जैसा व्यवहार किया। पर घनानन्द ने एकनिष्ठ भाव से उसी कठोर, निर्दयी सुजान से प्रेम किया है। उनका मन सुजान में ही लगा रहता है। उनका विरही मन हमेशा सुजान को याद करता है और उसे कभी न भूल पाने की बात करता है–

भए अति निठूर मिटाय पहिचानी डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय–हाय है।
तुम तौ निपट निरदई गई भूलि सुधि,
हमैं सूल सेलनि सौं क्यों हू ना भुलाय है।

टिप्पणी

उन्हें फर्क नहीं पड़ता कि उनके प्रेमी का उनके प्रति कैसे भाव है, कैसे विचार रखता है। वे बस अपने प्रेमास्पद के प्रति अपना प्रेम निवेदन करते हैं और अपने भीतर बसे उस प्रेम का रस लेते हैं–

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनन्द घन,
प्रीति रीति विषम सु रोम–रोम रमी है।

रीतिकालीन कवि घनानन्द का प्रेम उदात्त है। वे प्रेम में देना जानते हैं, लेना या पाना उनके प्रेमी को मंजूर नहीं है। इसलिए वे एकनिष्ठ भाव से एक बेवफा सुजान से प्रेम कर सके।

विरहानुभूति की विकसित स्थितियां

रीतिकालीन काव्य मुख्यतः शृंगार और संयोग का काव्य है। किन्तु घनानन्द की कविता अपनी विरहानुभूति के लिए प्रसिद्ध है। सौन्दर्य, आसक्ति, पूर्वराग और मिलन के चित्रों में रस प्राप्त करने वाला घनानन्द का प्रेमी मन विरह के समय और अधिक व्यथित हो जाता है। घनानन्द का विरह वर्णन स्वाभाविक है तथा उसमें मन की प्रमाणिक अन्तर्वृतियों का वर्णन किया गया है। घनानन्द का विरह वर्णन कोरा शब्दविलास या चमत्कार पूर्ण कथन मात्र न होकर प्रेम से अलग होने की टीस की तरह है।

अपने प्रवासी प्रेमी और उनकी बीच की दूरी इतनी अधिक है कि न तो वहां अपनी बात पहुंचाई जा सकती है और न ही वहां की बात इधर आ सकती है–

'बात के देस तें दूरि परे, नियरे सियरे हियरे दुख दाहे।'

प्रिय के दूर चले जाने के बाद उतनी दूर एक तो संदेश भेजना मुश्किल है और भेजना चाहो भी तो अनेक बाधाएं हैं–

कहौं जौं संदेशो ताको बड़ोई, अंदेसो आहि,
न्हानै मन बारे की कहैस्ब को सुनै सु कौन।
निधरक जान अलबेले निखरक ओर,
दुखिया कहैब कहा तहां को उचित हौ न।
परदुख–दल के दलन कौ प्रभंजन हो,
ढरकोंहे देखि के बिवस बकि परी मौन।
इत की भसम दसा लै दिखाय सकत जू,
ललन सुबास सौं मिलाय हू सकत पौन।

यहाँ हवा की आर्द्रता को देखकर प्रेमी का विरही मन इतना कह पाता है कि वह हवा चाहे तो यहां की भस्म को उड़ाकर प्रिया के सामने कर दे, उसे दिखा दे और प्रिय के अंगों से निकली सुगन्ध से उसे मिला दे।

घनानन्द का विरही मन हर समय अपने प्रेमी का इन्तजार करता रहा है। आंखें अपने प्रिय के आने का रास्ता देखती रहती हैं। स्थिति यह है कि रास्ता देखते–देखते आंखे पथरा गयीं हैं। विरही मन को लगने लगा है कि अब आयु सेना के लिए आगे जाने वाले सामान

की तरह चलती जा रही है। वह कल्पना करता है कि अन्त में शरीर को भी जाना होगा। अतः शरीर चला जाय इससे पहले अगर प्रिय आ जाता–

टिप्पणी

मग हेरत दीठि हिराय गई जगतें तुम आवन–औधि बदी।
बरसो कित हू घनआनंद प्यारे बाढति है इत सोच–नदी।
हियरा अति औटि उदेग की आंचनि च्वायत आंसुनि मैन मदी।
कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी।

घनानन्द का विरह वर्णन रीतिकालीन काव्य परंपरा के अनुकूल ही है। साथ ही उस पर फारसी या सूफी प्रभाव भ लक्षित किया जा सकता है। फारसी में प्रेम विरह का वर्णन अत्युक्तिपूर्ण शैली में होता रहा है। उसका प्रभाव घनानन्द में भी देखा जा सकता है। जैसे–

'गहि काढ़े करेजो कलापिन कूकै।'
'कारी कूर कोकिला कहां करेजो किन कोर लै।
'छिदी छतिया अकुलानी–छुरी।'

प्रकृति का सर्वोत्तम चित्रण

रीतिकालीन काव्य में प्रकृति चित्रण भरपूर हुआ है। रीतिकालीन कवियों ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का प्रयोग उद्दीपन के रूप में किया है। संयोग के समय प्रकृति उन्हें प्रेरित करती है, दुलारती है, और वियोग के समय कोयल की कूक, मोर की आवाज, चातक की आवाज विरही मन में टीस उत्पन्न करती है–

कारी कूर कोकिला कहां को बैर काढ़ति री,
कूकि–कूकि अबहिं करेजो किन कोरि लै।
पैड़ें परे पापी ये कलापी निस धौंस ज्यौं ही,
चातक घातक त्यौं ही तुहू कान फोरि लै।

इसी तरह प्रिय के वियोग में व्यथित मन प्रकृति के सामान्य–व्यापार को अपने दुःख से जोड़ कर देखता है। घुमड़ते हुए बादल उसके हृदय को चंचल करते हैं, बिजली की चमक देखकर लगता है कि उसकी जान चली जायेगी और फूलों की सुगन्ध भी उसके वियोग को बढ़ाने वाली हो गयी है।

इस तरह कहा जा सकता है कि घनानन्द भाषा, अर्थ, व्यंजना, और उद्देश्य प्रत्येक दृष्टि से रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि ठहरते हैं। घनानन्द की भाषा ब्रजभाषा है। वे साहित्यिक तथा ठेठ बोलचाल की ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए बोलचाल के कुछ शब्द देखें जा सकते हैं – चाड़–उत्कंठा, बघूरा–बवंडर, तेह–क्रोंध, सल–पता आदि। साथ ही उन्होंने ब्रजभाषा की व्यंजना शक्ति का सर्वाधिक प्रयोग किया है जो ब्रजभाषा पर उनके असाधारण अधिकार से ही संभव हुआ है। अपनी इन विशेषताओं के कारण घनानन्द का हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट स्थान है और उनका हिन्दी कविता की समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान है।

व्याख्या भाग

टिप्पणी

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलन मैं छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लाल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहे मनौ रूप अवै धर च्वै।

शब्दार्थ : झलकै = प्रकाशित होना, दिखना, चमकना। **आनन** = मुख। **गौर** = गोरा। **छके** = रस में लिप्त, भरे हुए, मस्त। **राजत** = शोभा। **काननि** = कानों को छूकर, कानों तक फैले हुए। **छबि** = रूप। **बरषा** = वर्षा। **उर** = हृदय। **कपोल** = गाल। **कलोल** = खेल, हिलना। **कल** = सुन्दर गला। **जलजावलि** = दो लड़ियों वाली मोती की माला। **तरंग** = लहर, आनंद। **दुति** = चमक, रोशनी। **धर** = पृथ्वी, धरती पर।

प्रसंग : नायिका के विशिष्ट सौन्दर्य की प्रशंसा की गयी है। जिसमें मुख का वर्णन, आंखों का वर्णन, सुन्दर देह का वर्णन, देह पर धारण किये गये आभूषणों का वर्णन तथा इन सबके समग्र प्रभाव से निर्मित उसके सम्पूर्ण सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

व्याख्या : प्रिया का अति सुन्दर मुख (अति सुन्दर आनन) गोरे रंग की आभा (प्रकाश) से झलक रहा है। यौवन के रस से भरी हुई, मस्त आँखें जो उसके कानों तक फैली हुई हैं (कानों को छूती हुई) शोभित हो रही हैं। (कानों को छूती हुई आँखो का आशय बड़ी–बड़ी आँखों से है, जो सुन्दरता का पर्याय मानी जाती थीं।) वह (प्रिया) जब ऐसे सुन्दर मुख से हंस कर बोलती है तो ऐसा लगता है कि उसके वक्ष (हृदय) पर सौन्दर्य के उजले फूलों की वर्षा हो रही है। बोलने से जब उसका शरीर हिलता है तब उसकी चंचल लटें (बाल) खेल (कलोल) कर रहीं हैं और उसके गले में पड़ी हुई दो लड़ियों की मोतियों की माला भी हिलने लगती है। इस तरह (शरीर के प्रत्येक अंगो के इस तरह हिलने से) उसके शरीर के अंग–अंग में दुति (आनन्द) की तरंग (लहर) उठ रही है। (अर्थात मुख की हंसी से उठी हुई लहर ने पूरे शरीर को अपने प्रभाव में ले लिया है।) जिसे देखकर ऐसा लग रहा है कि मानों (मनौ) उसके शरीर में भरा हुआ सौन्दर्य (रूप) अभी धरती (धर) पर चू (च्वै) पड़ेगा (परिहै)।

भोर ते साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति।
मोहन–सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।

शब्दार्थ : भोर = सुबह। **साँझ** = शाम। **कानन** = वन। **निहारति** = देखती है। **बावरी** = पगली, विरह में बावली। **नेकु** = नहीं। **न हारति** = थकती नहीं है। **तारनि** = तारे (आकाश के)। **ताकिबो** = देखती है। **तारनि सों** = आंखों से, पुतलियों से। **इकतार** = लगातार, एकटक। **न टारति** = छोड़ती नहीं है। **भावतो** = पसन्द आने वाला, प्रिय। **दीठि** = दिखाई पड़ना। **आंसुनि** = आंसुओं से। **मोहन** = श्रीकृष्ण। **सोहन** = सामने, रूबरू। **जोहन** = देखने की। **आरति** = इच्छा, लालसा।

टिप्पणी

प्रसंग : प्रेम निमग्न नायिका के विरह का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। नायिका सुबह से शाम तक और फिर शाम से सुबह तक केवल अपने प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा करती है। जब कभी वे सामने आते भी हैं तब आंसुओं के कारण उन्हें ठीक से देख नहीं पाती इस कारण से प्रिय को देखने की लालसा हमेशा बनी रहती है।

व्याख्या : सखी, दूती या कवि का कथन है कि वह (विरह में बावली नायिका) सुबह से शाम तक वन की ओर (जिधर उसके प्रिय चले गए हैं) देखते (निहारति) हुए थकती (हारति) नहीं है। अर्थात उधर (वन की ओर, प्रिय के गमन की दिशा की ओर) एकटक देखती रहती है। (सुबह से शाम के बीच यदि श्रीकृष्ण नहीं दिखे तो) वह शाम से सुबह (पूरी रात) तक अपनी आँखों से आकाश के तारों (तारनि) को एकटक (इकतार) देखती रहती है। अर्थात जागते हुए आँखों ही आँखों में पूरी रात काट देती है। यदि कहीं प्रिय (भावतो) आनन्दघन (आनन्द के घन, श्रीकृष्ण) दिखाई (दीठि) भी पड़ते हैं, तब उस अवसर (औसर) पर आँखों से आँसू गिरने (गारति) लगते हैं। (अर्थात प्रिय को देखने, पाने की प्रसन्नता में आँखों से आँसू बहने लगते है।) आँखों से आँसू गिरने के कारण वह (नायिका, प्रिया) प्रिय को देख नहीं पाती। आँखों से आँसू गिरने के साथ–साथ प्रिय को देखने का अवसर नहीं मिल पाता है। इस तरह उसकी आँखों–हृदय में मोहन (श्रीकृष्ण), को सामने (सोहन, रुबरू) देखने की लालसा (उत्कंठा, इच्छा, तमन्ना) बनी (लगी) रहती है। प्रिय (श्रीकृष्ण) को सामने देखकर कर भी नहीं देख पातीं (प्रेम के अधिकता में निकलने वालों आँसुओं के कारण)। और प्रिय (श्रीकृष्ण) को देखने की लालसा (नहीं देख पाने के कारण) बनी की बनी रहती है।

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।
तहाँ साँचे चलें तजि आपनपौ झझकै कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरी आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ ललाहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

शब्दार्थ : सूधो = सीधा, सरल। **सनेह** = प्रेम। **मारग** = मार्ग, रास्ता। **सयानप** = चतुराई। **बाँक** = टेढ़ापन। **तजि** = त्यागकर, छोड़कर। **निसांक** = निःशंक। **एक तें** = प्रिय के प्रेम की रेखा खिंच गयी, उसके अतिरिक्त दूसरी कोई रेखा नहीं खिंच सकती। **पाटी पढ़ना** = ज्ञान प्राप्त करना, ढंग सिखना। **मन** = हृदय, चालीस सेर (अनाज नापने का पैमाना, 01 मन = 40 सेर, 1 सेर = 1.25 किलो) **छटाँक** = 01 सेर का 16वां हिस्सा।

प्रसंग : यहां प्रेम के सच्चे और सीधे मार्ग का वर्णन किया गया है। जिसमें प्रेमी से उलाहने के तौर पर कहा गया है कि प्रेम में चुतराई का कोई स्थान नहीं है। प्रेम में प्रिय से प्रेम करना ही एक मात्र निश्चय होता है, पर आपने जाने कौन सा ज्ञान सीख, लिया है कि मन ले लेते हैं और बदले में कुछ नहीं देते।

व्याख्या : प्रिया प्रिय को प्रेममार्ग की कठिनाई और सरलता को बताते हुए उलाहना देती है कि स्नेह का मार्ग इतना सीधा (सूधो) है कि उसमें किसी प्रकार के सयानेपन (सयानप, सांसारिक व्यवहार–ज्ञान) के टेढ़ेपन (बाँक) के लिए कोई जगह नहीं है। प्रेममार्ग पर ऐसे सच्चे प्रेमी ही चल सकते हैं जिन्होंने अपनेपन (आपनपौ) के बोध को पूरी तरह त्याग (तजि) दिया है (अपने अहंकार से मुक्त हो गये हैं)। जो कपटी हैं, अतः निःशंक नहीं हैं, वे उस

टिप्पणी

(प्रेममार्ग) सीधे रास्ते पर चलते हुए संकोच करते हैं, झिझकते (झझकै) हैं। टेढ़ापन ऐसे लोगों का स्वभाव होता है, इसलिए प्रेम के इस सहज, सीधे मार्ग पर नहीं चल सकते।

प्रेममार्ग की सहजता और विशेषता बताने के बाद प्रिया अब आगे प्रिय के स्वभाव को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे सघन आनन्द प्रदान करने वाले (घनआनंद) और सब कुछ अत्यन्त चतुराई से समझने वाले सुजान प्रिय (तुम सबकुछ जानते समझते हो, फिर भी तुमसे कहना इसलिए आवश्यक है कि तुम जानते कुछ और हो और व्यवहार कुछ और करते हो, अर्थात तुम्हारे जानने में और पालन करने में भिन्नता है।) सुनो, यहाँ (इत) इस प्रेममार्ग में केवल एक अंक है। दूसरा कोई अंक नहीं है। (अर्थात अपने व्यक्तित्व और प्रिय के व्यक्तित्व में कोई भिन्नता की बात नहीं चल सकती।) यहाँ तुम्हारी कोई चालाकी नहीं चल सकती। वह सुजान प्रिय सबका मन लेता है, पर अपना कुछ भी किसी को नहीं देता। प्रिय की इस चतुराई की ओर संकेत करते हुये प्रिया कहती है कि हे लला (खेल में उस्ताद) तुमने यह कौन सी पाटी पढ़ी है (कौन सी चतुराई सीखी है) कि दूसरे का मन लेकर अपना मन छटाँक भर भी नहीं देते।

इसमें चमत्कार 'मन' में निहित श्लेष से उत्पन्न हुआ है। एक अर्थ है कि एक मन (40 सेर) ले लेते हो और छटाँक (एक सेर का सोलहवा हिस्सा) भी नहीं देते। दूसरा अर्थ है कि मन (हृदय) ले लेते हो और छटाँक (छटा {शोभा, रूप}) का अंक (झलक) भी नहीं देते। यहाँ इस कथन का अर्थ यह है कि प्रेम में इस तरह की होशियारी नहीं चल सकती।

3.5 मैथिलीशरण गुप्त : सामान्य परिचय

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक काल के महावीरप्रसाद द्विवेदी युग के विशिष्ट रचनाकार हैं। इन्हें हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य–धारा का अग्रणी कवि माना जाता है। मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. में चिरगाँव, झांसी (उत्तर प्रदेश) में और मृत्यु 1964 ई. में हुई। इनके पिता का नाम सेठ रामचरण और माता का नाम श्रीमती काशीबाई था। महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी में कई गौरव ग्रन्थों की रचना की। लेखन के आरम्भिक दिनों में इनकी रचनाएं 'वैश्योपकारक' में छपती थी। उस समय महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में निकलने वाली 'सरस्वती' हिन्दी की प्रमुख और सर्वमान्य पत्रिका थी। 'सरस्वती' पत्रिका में रचना का प्रकाशित होना, गौरव की बात समझी जाती थी। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'रसिकेन्द्र' नाम से ब्रज भाषा में लिखी हुई अपनी एक कविता 'सरस्वती' में प्रकाशन के लिए भेजी। कविता तो नहीं छपी किन्तु 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का पत्र इन्हें अवश्य प्राप्त हुआ। द्विवेदी जी के ही कहने पर मैथिलीशरण गुप्त ने ब्रज भाषा छोड़ हिन्दी में कविता लेखन प्रारम्भ किया। इसके बाद महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इनकी 'हेमन्त' नामक कविता को आंशिक सुधार के बाद सरस्वती में प्रकाशित किया।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी काव्य–यात्रा और अपने लेखन के लिए महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन को स्वीकार करते हुए लिखा है कि–

करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद।
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।

टिप्पणी

मैथिलीशरण गुप्त के लगभग 40 ग्रन्थ हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

1. जयद्रथ वध – 1910 ई.
2. भारत–भारती – 1912 ई.
3. पंचवटी – 1925 ई.
4. झंकार – 1929 ई.
5. साकेत – 1931 ई.
6. यशोधरा – 1932 ई.
7. द्वापर – 1936 ई.
8. जय भारत – 1952 ई.
9. विष्णुप्रिया – 1957 ई.

इसके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त ने 'प्लासी का युद्ध', 'मेघनाथ वध', 'वृत्र संहार' जैसे महत्वपूर्ण अनूदित ग्रन्थों की भी रचना की है।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना, नैतिक मूल्यों, सामाजिक जागृति, जन–जन का आध्यात्मिक नैतिक उत्थान, सामाजिक समरसता, देश भक्ति की व्यापक भावना, उदात्त मानवीय मूल्यों, समाज के सभी वर्गों के कल्याण की कामना तथा समकालीन राष्ट्रीय आंदोलन की पक्षधरता, सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना, भारतीय इतिहास के स्वर्णकाल से जन–मन को परिचित कराने का कार्य किया है।

मैथिलीशरण गुप्त को 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की गई। 1936 में 'साकेत' के लिए इन्हें हिन्दुस्तानी एकेडमी पुरस्कार और 1938 में मंगलाचरण पारितोषिक प्राप्त हुआ। 1952 में मैथिलीशरण गुप्त राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए और 1954 में इन्हें 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया।

3.5.1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत की श्रेष्ठता

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। इनकी प्रसिद्ध रचना 'भारत भारती' गुलाम भारतवर्ष के युवाओं में जोश का संचार करने वाली कृति थी। यह गुप्तजी की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। प्रकाशन के कुछ ही वर्ष बाद इसकी हजारों प्रतियां बिक गयी थीं। 'भारत की श्रेष्ठता' पाठ 'भारत भारती' से ही लिया गया है।

भू–लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला–स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।

टिप्पणी

शब्दार्थ : **भू** = पृथ्वी, **लोक** = संसार, जगत, **पुण्य** = पवित्र, **लीला–स्थल** = खेलने या अभिनय की जगह, **मनोहर** = मन को मोह लेने वाला, **गिरि** = पर्वत, **उत्कर्ष** = उन्नति, समृद्धि, श्रेष्ठता।

सन्दर्भ : मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। 'भारत भारती' गुप्तजी की सर्वाधिक विख्यात और लोकप्रिय रचना है। प्रस्तुत पंक्तियाँ 'भारत भारती' के 'भारत की श्रेष्ठता' शीर्षक के अंतर्गत संकलित है। द्विवेदीजी गुलाम भारत के दौर में काव्य–रचना की ओर उन्मुख हुए। उनकी कविताओं में गुलामी की पीड़ा तथा उससे मुक्ति की तड़प के साथ–साथ भारत की प्राचीन महानता और उसकी वर्तमान दुर्दशा के बेहद सजीव चित्र मिलते हैं। भारत की श्रेष्ठता के गीत लिखकर गुप्तजी ने भारतीय युवाओं के भीतर राष्ट्रप्रेम की गंभीर भावना का उदय किया। इसी कारण उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से भी नवाजा गया।

प्रसंग : यहाँ मैथिलीशरण गुप्त प्रश्नवाचक शैली में भारत की महानता का बखान कर रहे हैं। भारत की प्राकृतिक सुषमा और उसका अतीत उसे दुनिया के श्रेष्ठतम राष्ट्रों की पंक्ति में ला खड़ा करता है। हर भारतीय को इसी कारण इस महान राष्ट्र में जन्म लेने का अभिमान होता है।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि लोगों से पूछता है कि इस पृथ्वी लोक का गौरव स्थल कहाँ है! यानी इस संसार का कौन वह देश है जिसने अपनी सभ्यता और संस्कृति के द्वारा धरती के सम्मान को बढ़ाया है। दुनिया का इतिहास देखने पर स्पष्ट होता है कि वह देश भारतवर्ष ही है। कवि का अगला प्रश्न है कि संसार की प्रकृति का पवित्र स्थान कहाँ पर है! क्या वह भारत ही नहीं है जिसमें बुद्ध, महावीर स्वामी, गाँधी जैसे महान पुरुष पैदा हुए? जिन्होंने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना कर मनुष्यता को सम्मानित किया। भारतीय पुराणों में भी इस बात का उल्लेख है कि ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना भारतवर्ष में ही की थी। प्राचीन काल में इसे ब्रह्मावर्त प्रदेश कहा जाता था। भारत के भौगोलिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है कि भारत के उत्तरी हिस्से में मन को मोह लेने वाला हिमालय पर्वत फैला हुआ है और इसी देश में गंगा जैसी पवित्र नदी प्रवाहित होती है जिसके जल में कीड़े तक नहीं लगते। ऐसा देश ही दुनिया का गौरव हो सकता है। गुप्तजी अपने पाठकों से अगला प्रश्न पूछते हैं कि दुनिया में कौन ऐसा देश है जो ज्ञान, विज्ञान और सम्पदा के मामले में दुनिया में सबसे आगे है? इस प्रश्न का स्वयं जवाब देते हुए वे कहते हैं कि वह देश ऋषियों की भूमि है, और वह देश कोई और नहीं बल्कि हमारा प्यारा भारतवर्ष है।

विशेष :

1. भारत के तत्कालीन और वर्तमान हालात को देखते हुए यह कहना बहुत कठिन है कि दुनिया का सबसे महान देश भारत है लेकिन यदि हम भारत का प्राचीन इतिहास पढ़ें तो हमें इस बात पर जरा भी संदेह नहीं होगा। प्राचीन काल में हम ज्ञान, विज्ञान, शक्ति और सम्पदा सब में शीर्ष पर थे। यही कारण था कि भारत पर अनेकानेक आक्रमण हुए।

2. दुनिया में हर किसी को अपने देश पर गर्व होता है और वह अपनी जन्मभूमि को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ जगह मानता है। उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने अपनी इन्हीं भावनाओं को व्यक्त किया है।

टिप्पणी

3. हिमालय और गंगा भारत की भौगौलिक श्रेष्ठता के साथ–साथ सांस्कृतिक महानता के भी प्रतीक हैं।

हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है?
भगवान की भव–भूतियों का यह प्रथम भाण्डार है?
विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।

शब्दार्थ : वृद्ध = बूढ़ा, **सिरमौर** = सिर का मुकुट, **पुरातन** = प्राचीन, **भव–भूतियों** = संसार की विभूति, **विधि** = ईश्वर, **नर** = मनुष्य, **सृष्टि** = संसार।

सन्दर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : मैथिलीशरण गुप्त ने इन पंक्तियों में भारत की प्राचीनता और महानता का बखान किया है। अब यह प्रमाणित हो चुका है कि दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता हड़प्पा और सबसे पुराना ग्रंथ ऋग्वेद है। इससे यह भी पता चलता है कि सृष्टि का विकास भारतवर्ष से ही हुआ था।

व्याख्या : कवि इन पंक्तियों में कह रहा है कि भारत दुनिया का सबसे वृद्ध अर्थात प्राचीन राष्ट्र है। वह प्रश्नवाचक शैली में सबसे पूछता है कि क्या इससे प्राचीन राष्ट्र भी इस दुनिया में है। संसार का ज्ञात इतिहास तो इसी बात की पुंष्टि करता है कि दुनिया का सर्वाधिक प्राचीन राष्ट्र भारत ही है। अपनी शानदार सांस्कृतिक विरासत और प्राचीन उपलब्धियों के कारण इसे संसार का मुकुट कहा जाता है। मुकुट मनुष्य के सिर पर शोभित होता है। यह किसी व्यक्ति के गौरव का प्रतीक होता है। भारत दुनिया का मुकुट है। यह संसार के सम्मान का प्रतीक है। ईश्वर ने संसार की सभी विभूतियाँ इसी देश को दी हैं। यहाँ चार मौसम, अनेक नदियाँ, कई पर्वत और विशाल समतल जमीन है जो दुनिया के किसी देश में नहीं है। यही देखकर ईश्वर ने मानवीय सृष्टि का शुभारंभ इसी पवित्र भूमि से किया। कवि यह बात इस आधार पर कह रहा है क्योंकि दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता का अवशेष भारत में ही पाया गया है।

विशेष : कर्नल टॉड नामक एक पुरात्त्ववेता ने अपनी रचना में एक स्थान पर लिखा है कि तमाम अनुसंधानों से यह पता चलता है कि सृष्टि का आरंभ भारत से ही हुआ था।

इंजील और कुरान में भी आदम और हव्वा का अदन की खाड़ी से निकलकर भारतवर्ष में आने का संकेत मिलता है।

सर वाल्टर रेले नामक इतिहासकार ने अपने इतिहासग्रंथ में लिखा है कि जल–प्रलय के बाद भारत की भूमि पर ही पेड़–पौधों और मनुष्यों की उत्पति हुई। भारतीय मिथकों में इससे जुड़ी अनेक घटनाओं का उल्लेख हुआ है।

यह पुण्यभूमि प्रसिद्ध है इसके निवासी 'आर्य' हैं,
विद्या, कला–कौशल्य सबके जो प्रथम आचार्य हैं।
सन्तान उनकी आज यद्यपि हम अधोगति में पड़े,
पर चिह्न उनकी उच्चता के आज भी कुछ हैं खड़े।

टिप्पणी

शब्दार्थ : पुण्यभूमि = पवित्र भूमि, **आर्य** = एक जाति, **अधोगति** = खराब अवस्था।

सन्दर्भ : उपरोक्त।

प्रसंग : इन पंक्तियों में कवि ने भारत के प्राचीन गौरव और उसकी वर्तमान दुरावस्था का चित्र एक साथ खींचा है। ऐसा करके वह गुलाम भारत के लोगों को भारत के प्राचीन गौरव की याद दिलाकर उन्हें वर्तमान की गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

व्याख्या : मैथिलीशरण गुप्त कह रहे हैं कि भारत दुनिया भर में पवित्र भूमि के रूप में विख्यात है और इसके निवासियों को आर्य कहा जाता है। आर्यों ने अपनी योग्यता और महानता की छाप दुनिया भर में छोड़ी है। इन्होंने विद्या, कला और तकनीक के क्षेत्र में अपनी क्षमता का परिचय दिया है और इन क्षेत्रों में एक से एक महान काम किया है। वेदों के रचयिता आर्य थे। संगीत और कला जिस सामवेद से जन्मी उसके लेखक भी आर्य थे। विज्ञान के आदि आचार्य आर्यभट्ट, चिकित्सा विज्ञान के आचार्य चरक और सुश्रुत सभी आर्य थे। लेकिन आज इन आर्य पुत्रों की हालत बुरी है। आज ये अंग्रेजों की गुलामी और अन्याय सहने के लिए अभिशप्त हैं। यह बात दूसरी है कि आर्यों की महानता के कुछ प्रमाण आज भी दुनिया में बिखरे पड़े हैं।

विशेष : अंग्रेजों की प्रशासन नीति का एक बड़ा लक्ष्य भारत की श्रेष्ठता का खंडन था। उनका प्रयास था कि भारत को हर मोर्चे पर नीचा दिखाकर भारतीयों के भीतर हीन भावना पैदा कर दें। मैथिलीशरण गुप्त इन पंक्तियों के माध्यम से उनकी इस रणनीति का प्रतिवाद कर रहे हैं।

3.5.2 मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताएं

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के आधुनिक काल के महत्वपूर्ण कवि हैं। वे व्यापक अर्थों में भारत के राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के गायक हैं। मैथिलीशरण गुप्त का समग्र रचना–कर्म अपने समय की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना से गहरे अर्थों में प्रभावित है और उसी से प्रेरणा भी प्राप्त करता है। उनका लेखन हिन्दी नवजागरण का प्रमुख हिस्सा है। इस रूप में वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महावीरप्रसाद द्विवेदी के स्वाभाविक ही उत्तराधिकारी हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को स्पष्ट रूप से समाज–देश से जोड़ा। इससे साहित्य अपने समकालीन परिवेश से सम्बद्ध हुआ, साहित्य का विस्तार हुआ। समाज के विभिन्न मुद्दे साहित्य के विषय बनने लगे। मैथिलीशरण गुप्त ने सामाजिक विषमता, भेदभाव, आर्थिक विषमता, देश प्रेम, मातृभूमि प्रेम, स्वदेशी के प्रति आग्रह, शिक्षा, स्त्री शिक्षा, स्त्री सम्मान, मानवतावाद, नैतिकता, उच्च मानवीय मूल्य आदि विषयों पर बड़े पैमाने पर लेखन किया है। मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों में समझा जा सकता है–

टिप्पणी

1. जाग्रत इतिहास बोध

मैथिलीशरण गुप्त भारतीयता के कवि थे। भारतीय जन मानस को भारत की दुर्दशा और वास्तविक स्थिति से परिचित कराने तथा उनमें राष्ट्रीयता की भावना को जगाने के लिए मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में भारतीय इतिहास के गौरवशाली स्वरूप का वर्णन किया है। उनका उद्देश्य यह रहा कि भारतीय जन मन अपने देश के इतिहास के स्वर्णकाल से परिचित हो आत्मगौरव की भावना के साथ समकालीन गुलामी के विरुद्ध खड़ा हो सके। इसके लिए गुप्त जी ने इतिहास, पौराणिक आख्यानों और रामायण, महाभारत की कथा लेकर उसका आधुनिक पाठ प्रस्तुत किया है। मैथिलीशरण गुप्त की मान्यता थी कि वर्तमान समय में गुलामी और अज्ञानता से मुक्ति पाने के लिए भारतीय इतिहास के प्राचीन सन्दर्भों से ही प्रेरणा मिल सकती है। इसीलिए वे 'भारत भारती' में कहते हैं कि–

ज्यों ज्यों प्रचुर प्राचीनता की खोज बढ़ती जाएगी।
त्यों त्यों हमारी उच्चता पर ओप चढ़ती जायेगी।

मैथिलीशरण गुप्त अतीत के प्रसंगों को महत्व देते हैं किन्तु वे इस बात के प्रति भी सचेत रहते हैं कि अतीत की चीजों के प्रति लगाव कहीं अंधमोह न बन जाय। इसीलिए वे अतीत की कथा चुनते हैं तो उसकी वर्तमान की आवश्यकता के अनुसार व्याख्या भी करते हैं। इस तरह वे परिवर्तन के पक्षधर के रूप में भी सामने आते हैं–

प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलोक है,
जैसी अवस्था हो, जहां वैसी व्यवस्था ठीक हो।

इसका अर्थ है कि मैथिलीशरण गुप्त इतिहास को एक कागजी दस्तावेज मात्र न मानकर जाग्रत इतिहास बोध की तरह ग्रहण करते हैं।

2. स्त्री अस्तित्व की गरिमापूर्ण स्वीकृति

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय नवजागरण के समय चलने वाले तमाम सुधारवादी आंदोलनो के प्रभाव में पहली बार स्त्रियों की यथार्थ स्थिति की ओर लोगों का ध्यान गया। भारतीय समाज में स्त्रियां उपेक्षित रही हैं। वे कई प्रकार की सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक रूढ़ियों में फंसी रही हैं। जिससे उन्हें एक सम्मानजनक स्थान नहीं मिल सका। बाल विवाह, बेमेल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, दहेज प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों के कारण भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त खराब हो गयी थी। महात्मा गाँधी और दूसरे सामाजिक, राजनीतिक नेताओं ने स्त्रियों के लिए समान अधिकारों और सम्मानजनक जीवन के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया जिसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा। अपने समय में चल रही इन सारी बातों से प्रेरणा लेकर मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में नारी की मुक्ति के लिए मुखर होकर लिखा। उन्होने 'भारत भारती' में स्त्री की शोषित स्थिति पर दुःख व्यक्त करते हुए लिखा है कि–

अनुकूल आद्या शक्ति की सुखदायिनी जो स्फूर्ति है,
सद्धर्म की जो मूर्ति और पवित्रता की पूर्ति है,

टिप्पणी

नर–जाति की जननी तथा शुभ शान्ति की स्रोतस्वति,
हा दैव! नारी की कैसी यहां दुर्गति है।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी व्यापक दृष्टि से साहित्य की अब तक उपेक्षित नायिकाओं पर भी लिखा। जिसका उदाहरण उनका काव्य 'साकेत' है। वे साकेत के माध्यम से रामकथा में एक नया मोड़, रामकथा की एक नई व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। रामकथा में उपेक्षित रहीं लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला को उन्होंने नायिका का दर्जा प्रदान किया। साकेत में लक्ष्मण उर्मिला के त्याग और महत्ता को स्वीकार करते हुए कहते हैं–

अवस–अबला तुम? सकल बल वीरता,
विश्व की गम्भीरता, ध्रुव–धीरता।

मैथिलीशरण गुप्त स्त्री की वास्तविक स्थिति से परिचित थे। वे सम्पूर्ण नारी–जाति की व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।

इसके बावजूद वे नारी की गरिमा को स्वीकारते हुए कहते हैं– 'एक नहीं दो–दो मात्राएं नर से भारी नारी।' उनकी दृष्टि स्पष्ट है। वे स्त्री की हीन दशा के लिए पुरुष को जिम्मेवार मानते हैं। क्योंकि पुरुष ने ही नारी के अधिकारों का दमन किया है–

अधिकारों के दुरुपयोग का,
कौन कहां अधिकारी।
कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या,
अर्द्धांगिनी तुम्हारी।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मे स्त्री के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। कुलवधू, गृहिणी, प्रिया, वीरांगना, विरहिणी, पतिव्रता, मां, बहन, समाज–सेविका सभी रूपों में नारी चित्रित की गयी है। मैथिलीशरण गुप्त स्त्री के प्रत्येक रूप में उसके अस्तित्व की गरिमापूर्ण स्वीकृति के पक्षधर हैं।

3. मानवतावादी दृष्टि

मध्यकाल में साहित्य के केन्द्र में ईश्वर था किन्तु आधुनिक युग में वैज्ञानिक चेतना और तार्किकता के विकास ने आस्थावादी मान्यताओं और अलौकिक विश्वासों को प्रश्नांकित कर दिया। जिसके फलस्वरूप सोच विचार और चिन्तन के केन्द्र में मनुष्य आया। एक नई दृष्टि बनी कि मनुष्य ही श्रेष्ठ है, सबकुछ उसके लिए ही है। मनुष्य स्वयं अपना भाग्य विधाता है। यही मान्यता मानवतावादी दृष्टि का आधार है। मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य इसी मानवतावादी दृष्टि की निर्मिति है। वे 'लीला' नामक काव्य में कहते हैं कि–

अमर जो न कर सके उसे नर कर सकते हैं,
व्रत साधन पर अमर भला कब मर सकते हैं?

टिप्पणी

यह मनुष्य और उसकी सामर्थ्य के प्रति अनन्य विश्वास की पंक्तियां हैं। इसी विश्वास और सामर्थ्य के साथ मनुष्य अपने महानतम संकल्पों को पूरा करता रहा है। वे 'द्वापर' नामक काव्य में मनुष्य की इसी महत्ता को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि–

सच पूछो तो ऐसा अद्‌भुत अपना यह मानव ही,
कभी देव बन जाता है तो और कभी दानव भी।
मै कहता हूं यदि मनुष्य ही बने मनुष्य हमारा,
तो कट जाए देव–दैत्यों का कलह–कलुष यह सारा।

देवता और दानव दोनों स्थितियां मनुष्य के भीतर ही हैं। अर्थात सृजन और विनाश दोनों के प्रति मनुष्य ही जवाबदेह है। मैथिलीशरण गुप्त का विश्वास है कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसके कर्मो पर निर्भर है, उसके जाति, धर्म, लिंग या वर्ण पर नहीं। वे श्रेष्ठ मनुष्यता की कसौटी के निर्धारण में धर्म और जाति की भूमिका को खारिज करते हुए अपने ग्रन्थ 'गुरुकुल' में कहते हैं कि–

हिन्दू हो या मुसलमान हो नीच रहेगा फिर भी नीच,
मनुष्यत्व सबसे ऊपर है मान्य महीमण्डल के बीच।

4. राष्ट्रीयता और सामाजिक परिवर्तन की भावना

मैथिलीशरण गुप्त के लेखन के आरम्भिक दिनों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीयता का उभार और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का स्वर प्रमुखता से प्रसारित हो रहा था। महात्मा गाँधी ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अपनी चेतना से बहुआयामी बना दिया था। उन्होंने आजादी की लड़ाई को समाज सुधार, जन जागरण, आर्थिक आजादी, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का निर्माण, मनुष्य मात्र की समानता, अछूतोद्धार, सत्याग्रह और अहिंसा से जोड़ दिया। गाँधी जी के इन प्रयासों को मैथिलीशरण गुप्त ने साहित्यिक अभिव्यक्ति दी है। इसीलिए गुप्त जी को नवजागरण का वैचारिक प्रतिनिधि माना जाता है।

मैथिलीशरण गुप्त की अनेक रचनाओं में भारत की महिमा का गान उपलब्ध है। 'गुरुकुल' नामक ग्रन्थ में देश के गौरव का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि–

जिसके तीन ओर अर्णव है,
चौथी और हिमालय पीन
ऐसा देश दुर्ग पाकर भी
रह न सके हा! हम स्वाधीन।

देश के प्रति यही लगाव और निष्ठा है जिसके कारण मैथिलीशरण गुप्त ने भारत का शोषण करने वाले अंग्रेजों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए 'लीला' नामक ग्रन्थ में कहा है कि–

पुण्य भूमि पर पाप कभी हम सह न सकेंगे,
पीड़क पापी यहाँ और अब रह न सकेंगे।

'पीड़क पापी रह न सकेंगे' कहना एक कवि की अपने देश के प्रति महान आस्था का उदाहरण है। यह वही आस्था है जिसके तहत कोटि–कोटि जन अंग्रेजी सरकार के शोषण

टिप्पणी

और दमन के विरुद्ध खड़े हो चुके थे। गुप्त जी विचारवान व्यक्ति एवं सचेत नागरिक थे। वे अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे आर्थिक एवं सांस्कृतिक शोषण से परिचित और चिंतित थे। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारत भारती' में अपनी यह चिन्ता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि–

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।

मैथिलीशरण गुप्त जानते थे कि राष्ट्रीय भावना सामाजिक समानता और मर्यादा के बिना अधूरी रहेगी। इसीलिए वे समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, छुआछूत, गैरबराबरी आदि को समाज और राष्ट्र दोनों के लिए हानिकारक मानते थे। उनका विश्वास था कि बिना सामाजिक उत्थान के राष्ट्र का उत्थान असंभव है। अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'अनघ' में वे अछूतोद्धार के सन्दर्भ में कहते हैं–

इसका भी निर्णय हो जाय, नहीं अछूत मनुज क्या हाय!
करें अशुचिता सबकी दूर, उनसे घृणा करें सो क्रूर।
जिनके बल पर खड़ा समाज, रहती है शुचिता की लाज,
उनका त्राण न करना, खेद! है अपना ही मूलोच्छेद।

इसी तरह अछूतों के मंदिरों में प्रवेश को सामाजिक समता ही नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। अपने ग्रन्थ 'सिद्धराज' में वे कहते हैं कि–

मंदिर का द्वार जो खुलेगा सबके लिए,
होगी तभी मेरी वहाँ विश्वंभर भावना।

मैथिलीशरण गुप्त की कविता में राष्ट्रीय भावना और सामाजिक सुधार प्रमुख स्वर के रूप में मौजूद हैं।

5. काव्य भाषा

काव्य भाषा के रूप में मैथिलीशरण गुप्त का सर्वाधिक योगदान खड़ी बोली के उत्कृष्ट स्वरूप का प्रयोग है। महावीरप्रसाद द्विवेदी के शिष्य परम्परा में होने के कारण मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली को अपनाया। उस समय हिन्दी की खड़ी बोली स्वतंत्रता संग्राम की भाषा बन गयी थी। गुप्त जी का मानना था कि राष्ट्र भाषा के अभाव में राष्ट्र प्रेम अधूरा रह जायेगा। वे कविता के लिए हिन्दी को सर्वाधिक उपयुक्त मानते हुए कहते हैं कि 'मेरी अल्पबुद्धि तो यह कहती है कि अब खड़ी बोली में ही कविता होना सर्वथा इष्ट है। जिस हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा बनाने की कोशिश करें उसी का साहित्य कविता से खाली पड़ा रहे यह कैसे दुःख की बात है। कविता साहित्य का प्राण है। जिस भाषा में कविता नहीं, वह भाषा कभी साहित्यवती होने का गर्व नहीं कर सकती और जिस भाषा को साहित्य का गर्व नहीं, वह राष्ट्र भाषा क्या खाक हो सकती है? अतएंव बोलचाल की भाषा में ही कविता होना इष्ट है।'

'बोलचाल की भाषा में ही कविता होना इष्ट है', यह मैथिलीशरण गुप्त की काव्य भाषा के प्रति महत्वपूर्ण उक्ति है। मैथिलीशरण गुप्त की भाषा के माध्यम से सबसे पहले खड़ी बोली का साहित्यिक रूप सामने आया। वे अपनी भाषा मे शब्द चयन, सूक्तियों के प्रयोग,

तत्सम् शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग को लेकर अत्यंत सावधानी बरतते हैं। वे प्रसंग के अनुसार बोलचाल की सहज और सरल भाषा का भी प्रयोग यथास्थान करते थे। जिसके कारण उनके काव्य की सृजनात्मकता और संप्रेषणीयता अत्यधिक बढ़ जाती है।

टिप्पणी

6. काव्य शिल्प

मैथिलीशरण गुप्त ने मुख्यतः छन्दबद्ध रचनाएं की हैं। उन्होनें अधिकांशतः लयात्मक और शास्त्रीय छन्दों का प्रयोग किया है। 'यशोधरा' में चम्पू शैली का भी प्रयोग किया गया है तो वहीं 'सिद्धराज' और 'विष्णुप्रिया' में मुक्त छन्द का भी प्रयोग किया है। 'यशोधरा' में प्रयुक्त रोला छन्द का एक उदाहरण इस प्रकार है –

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात।
पर चोरी चोरी गये यही बड़ा व्याघात।

तो वहीं 'रंग में भंग' से गीतिका छन्द का प्रयोग इस प्रकार है–

लोक शिक्षा के लिए अवतार जिसने था लिया।
निर्विकार निरीह होकर नर सदृश कौतुक किया।

इस तरह कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं में विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के प्रयोग को लेकर उनका उद्देश्य कभी कलावादी नहीं रहा, वे कविता के कथ और विषय पर मुख्य रूप से ध्यान देते थे, छन्द उनके लिए भावों के सम्प्रेषण के माध्यम भर थे। जो भाषा पर उनके अधिकार का उदाहरण है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के एक महत्वपूर्ण रचनाकार हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

3.5.3 मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना

भारतीय नवजागरण और सुधारवादी आंदोलनों ने भारतीय समाज और भारतीय मनीषा को व्यापक बदलाव और विभिन्न आधुनिक प्रवत्तियों के स्वागत के लिए तैयार किया जिसके परिणाम स्वरुप नयें सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक मूल्यों का विकास हुआ। मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य इन सभी नये मूल्यों की अभिव्यक्ति करता रहा है। मैथिलीशरण गुप्त अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रति जनता की अभिरुचियों को प्रखर करने में विश्वास करते थे। उनकी प्रसिद्ध रचना 'भारत भारती' भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय चेतना की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता राजनीतिक नहीं सांस्कृतिक है। गुप्त जी की राष्ट्रीय चेतना को साहित्य के साथ–साथ जन–सामान्य में भी व्यापक स्वीकृति मिली। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं के माध्यम से गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हुए आम जन को सम्बोधित कर उन्हें स्वतंत्रता संग्राम में प्रत्यक्ष भागीदारी के लिए आमंत्रित किया है। उनकी राष्ट्रीयता अपने समय के लगभग सभी प्रमुख वैचारिक सरणियों के प्रभाव में निर्मित हुई है। उनकी कविता में महात्मा गाँधी के विचारों को लक्षित किया जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त की विशिष्ट राष्ट्रीय चेतना के कारण ही महात्मा गाँधी ने उन्हें 1936 में काशी में 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की थी।

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता जाति, धर्म और पंथ–संप्रदाय से ऊपर है। वे स्वयं वैष्णव संस्कारों में पले–बढ़े थे, और उस पर उनको अनन्य विश्वास था। इसके बावजूद वे स्वतंत्रता संग्राम की व्यापक सफलता के कारण भारत भूमि के विभिन्न धर्मों और मतों के महत्व को पूरे मन से स्वीकार करते हैं इसीलिए उन्होंने 'काबा' तथा 'कर्बला' जैसे खण्ड काव्यों की रचना की, तो वहीं सिक्ख पंथ के महान गुरुओं के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करते हुए 'गुरुकुल' जैसे विशिष्ट ग्रन्थ की रचना भी की। सामाजिक समानता और समाज के प्रत्येक वर्ग के उत्थान के लिए 'स्वदेश संगीत' तथा 'सिद्धराज' जैसे ग्रन्थों का सृजन किया। भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा और दिशा के प्रति अपनी अभिनव दृष्टि का परिचय 'साकेत' नामक ग्रन्थ में दिया।

टिप्पणी

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना केवल देश की राजनीतिक आजादी तक सीमित नहीं थी। उनकी राष्ट्रीयता देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विषयों से गहरे अर्थों में सम्बद्ध होने के साथ–साथ मानवतावादी भी थी। वे 'भारत भारती' में भारतवासियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–

शासन किसी परजाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो,
सम्भव नहीं है किन्तु जो सर्वांश में वह इष्ट हो।

मैथिलीशरण गुप्त अपने देश की वर्तमान की हीन दशा से मुक्ति के लिए भारतीय इतिहास और अतीत के प्रेरक प्रसंगों को बार–बार दुहराते हैं। जिससे कि देशवासी अंग्रेजो द्वारा स्थापित हीनतर भारत–छबि से मुक्त होकर अतीत की अपनी श्रेष्ठता से प्रेरणा प्राप्त कर सकें। वे "भारत भारती' में कहते हैं कि–

इस देश को है दिनबन्धु! आप फिर अपनाइए,
भगवान! भारतवर्ष को फिर पुण्यभूमि बनाइए।
वरमंत्र जिसका मुक्ति था, परतंत्र पीड़ित है वही,
फिर वह परम पुरुषार्थ इसमें शीघ्र ही प्रकटाइए।

वे गाँधीजी से प्रभावित थे। जीवन में भी और अपनी रचनाओं में भी। उन्होंने अपनी रचनाओं में गाँधीजी के अहिंसात्मक आंदोलनों, सत्याग्रह आदि के प्रति अपार भरोसा व्यक्त किया है। वे गाँधीवादी उपायों के प्रति आश्वस्त थे–

अस्थिर किया टोप वालों को गाँधी टोपी वालों ने,
शस्त्र बिना संग्राम किया है इन माई के लालों ने।

अपनी प्रसिद्ध रचना 'किसान' में उन्होंने भारतीय किसानो की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया है तो वहीं 'स्वदेश संगीत' में सत्याग्रह की प्रशंसा कर गाँधीवादी विचारों और मूल्यों के प्रति भरोसा व्यक्त किया है –

सत्याग्रह है कवच हमारा कर देखो कोई भी वार,
हार मानकर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेंगे मित्राचार।

वे लोकतंत्र को अब तक की सबसे बड़ी गारन्टी मानते हैं। वे लोकतंत्र को मनुष्यता वे लोकतंत्र को अब तक की सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं। भाई–भतीजावाद, परिवारवाद, ही नहीं समूचे देश के लिए सबसे बड़ी बुराइयों ने लोकतंत्र को सबसे अधिक नुकसान पहुंचाया है– स्वार्थ, भ्रष्टाचार, क्षेत्रवाद जैसी

टिप्पणी

स्वयं श्रेष्ठ को चुन लेने में लोक आज असमर्थ,
आस–पास के स्वार्थों तक ही लोगों के व्यापार।

अपनी इसी राष्ट्रीय चेतना के कारण मैथिलीशरण गुप्त ने समाज के दीन–दुखी, उत्पीड़ित वर्गों के लिए समान अधिकार और स्वतंत्रता की मांग करते हैं। अपनी जिन रचनाओं में उन्होंने पौराणिक कथाओं को लिया है, उनको भी वे सामाजिक समरसता और सबके उद्धार के लिए नये सन्दर्भ प्रदान करते हैं। रामकथा पर आधारित उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साकेत' के राम अपने पौराणिक व्यक्तित्व से मुक्त होकर समाज के पददलित, तिरस्कृत जनों और सामाजिक पदानुक्रम में सबसे निचले स्थान पर रहने वाले दलितों को उनके दुखों से मुक्ति दिलाने की महान भूमिका में उतर आते हैं। स्वयं राम ने अपने अवतार का प्रयोजन स्पष्ट किया है–

मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं,
जो विवश विकल बलहीन दीन शापित हैं।

मैथिलीशरण गुप्त की दृष्टि यथार्थवादी है। वे अपनी ही नहीं सबकी अभिव्यक्ति के समर्थक हैं। उनकी मान्यता है कि सभी को अपनी बात कहने के लिए अवसर मिलना चाहिए किन्तु वे उस अवसर में भी मर्यादा के हिमायती हैं। वे नहीं चाहते कि कहने की स्वतंत्रता का प्रयोग मर्यादाहीन हो जाय। वे स्वतंत्रता के समर्थक हैं अराजकता के नहीं। वे कहते हैं कि–

जितने प्रवाह है बहें अवश्य बहें वे,
निज मर्यादा में किन्तु सदैव रहें वे।

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना कोरी भावुकता नहीं है उसमें समाजवादी तत्व भी विद्यमान है। उनकी मान्यता है कि संसाधनों का वितरण न्यायोचित ढंग से होना चाहिए। फल उसे ही मिलना चाहिए जो उसके निमित्त परिश्रम करता है। परिश्रम कोई और करे और फल कोई और प्राप्त करे यह श्रम का शोषण है। सबको अपने श्रम का उचित महत्व और मूल्य मिलना चाहिए–

जिसका श्रम होगा आय उसी की होगी,
होना ही होगा हमें तुम्हें उद्योगी।

मैथिलीशरण गुप्त एक सर्वसमावेशी राष्ट्र के निर्माण के लिए सभी धर्मों, सभी सम्प्रदायों और सभी संस्कृतियों के लोगों को आपसी कटुता भुलाकर एक साथ समवेत प्रयास करने की बात करते हैं। 'मातृ मंदिर' कविता में वे कहते हैं कि 'जाति, धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहाँ।' वे राष्ट्रीय चेतना को सबके लिए अपरिहार्य मानते हैं। उनके लिए सबसे ऊपर राष्ट्र है। किन्तु उनका राष्ट्र संकुचित दायरे में नहीं बल्कि व्यापक भाव–भूमि पर निर्मित हुआ है इसीलिए वे राष्ट्र प्रेम और विश्व प्रेम में धर्म की भूमिका को सहयोगी मानते हुए कहते हैं कि –

'किन्तु हमारा लक्ष्य, एक अम्बर, भू सागर,
एक नगर–सा बने विश्व, हम उसके नागर।'

मैथिलीशरण गुप्त के लिए राष्ट्रीयता और विश्व–प्रेम एक दूसरे के सहवर्ती हैं। सर्वधर्म समभाव उनकी राष्ट्रीय चेतना का आधार तत्व है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से एक प्रखर और प्रगतिशील राष्ट्र का प्रस्ताव किया है जो समानता की भावना को सबसे जरूरी मानता हो। एक ऐसा राष्ट्र जिसमें सबको अपना सर्वोत्तम विकास करने का अवसर प्राप्त हो सके। मैथिलीशरण गुप्त जो अपेक्षा एक राष्ट्र से करते हैं वैसा ही या कहें कि उससे कुछ अधिक अपेक्षा उस राष्ट्र के निर्माण के लिए वहां के नागरिको से करते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त का सम्पूर्ण जीवन और सम्पूर्ण सृजन भारतीय नवजागरण, हिन्दी नवजागरण, सांस्कृतिक पुनरुत्थान, अतीतगौरव और राष्ट्रीय चेतना की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

3.6 सारांश

मीरा किसी संप्रदाय में दीक्षित नहीं थी और न ही उन्होंने किसी संप्रदाय की स्थापना की थी। उनकी भक्ति संप्रदाय निरपेक्ष भक्ति है। उनकी भक्ति में विभिन्न मतों और संप्रदाय की मान्यताओं का समावेश है। वे सगुण कृष्ण की उपासिका हैं लेकिन उन्हें जोगी कहकर पुकारती हैं। जोगी नाथपंथी होते थे और निर्गुण ईश्वर की आराधना करते थे। मीरा की भक्ति 'माधुर्य भक्ति' थी। वे कृष्ण को पति मानकर उनकी आराधना करती थीं। स्त्री होने के कारण उनकी भक्ति का यह प्रारूप बहुत स्वाभाविक लगता है। पति कृष्ण से मिलन की उत्कट आकांक्षा हो या उनके वियोग में तड़पना हो सबकुछ विश्वसनीय प्रतीत होता है।

बिहारी रीतिकाल के सर्वप्रिय कवि होने के साथ–साथ प्रतिनिधि कवि भी हैं। बिहारी की यह लोकप्रियता और काव्यगत प्रतिनिधित्व उनकी काव्यगत क्षमताओं और उनकी विशिष्ट प्रतिभा के कारण है। बिहारी का एक मात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है, जिस पर अब तक लगभग पचास से अधिक टीकाएँ लिखी गयी हैं। बिहारी की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण है उनके काव्य में कला और भाव का बहुत ही सुन्दर और संतुलित समन्वय। कहीं भी भाव और कला एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते बल्कि एक दूसरे के सहयोगी बन कर आते हैं। भाव और कला का ऐसा सुन्दर सम्बन्ध हिन्दी साहित्य में तुलसीदास के अलावा अन्यत्र दुर्लभ है। दो पंक्तियों के दोहे में भाव का इतना सर्वोत्तम स्वरूप प्रस्तुत कर देना बिहारी की कलात्मक सफलता है। इसलिए कहा गया है कि बिहारी के दोहे नावक यानी शिकारी के बाणों की तरह हैं जोकि आकार में छोटे होते हुए भी लक्ष्य को गहराई से बोध देते हैं।

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं घाव करे गंभीर।।

घनानन्द रीतिकाल के सर्वाधिक व्यवस्थित कवि हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में घनानन्द की काव्य–प्रतिभा, काव्य–विवेक और काव्य–निष्ठा की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए कहा है कि "प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. घनानंद की काव्यगत विशेषताओं के आधार पर किस विद्वान ने इन्हें साक्षात रसमूर्ति कहा है?
   (i) रामचन्द्र शुक्ल
   (ii) राम कुमार वर्मा
   (iii) हजारी प्रसाद द्विवेदी
   (iv) महावीर प्रसाद द्विवेदी
6. मुहम्मद शाह के राज्य से बाहर निकाल दिए जाने के बाद घनानंद ने किस संप्रदाय में दीक्षा ली?
7. मैथिलीशरण गुप्त का जन्म कब हुआ?
   (i) 1882
   (ii) 1884
   (iii) 1886
   (iv) 1888
8. मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रकवि की उपाधि किसने प्रदान की थी?
   (i) महावीर प्रसाद द्विवेदी
   (ii) हजारी प्रसाद द्विवेदी
   (iii) महात्मा गांधी
   (iv) डॉ राजेन्द्र प्रसाद

इकाई 4 व्याकरण

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 लिंग
4.3 कारक
4.4 वचन
4.5 काल
4.6 वाक्य–शुद्धि
4.7 शब्द–अर्थ संबंध
4.8 विलोम शब्द
4.9 पर्यायवाची शब्द
4.10 मुहावरा
4.11 लोकोक्तिया (कहावतें)
4.11.1 मुहावरा और कहावत (लोकोक्ति) की तुलना
4.12 सारांश
4.13 मुख्य शब्दावली
4.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

भाषा–संबंधी नियमों की व्यवस्थित पद्धति का ज्ञान कराने वाले शास्त्र को व्याकरण कहते हैं। इन्हीं नियमों के आधार पर हम किसी भाषा के शुद्ध और अशुद्ध रूप को निर्धारित करते हैं। व्याकरण वह विद्या है, जिसके द्वारा किसी भाषा का शुद्ध बोलना या लिखना जाना जाता है। व्याकरण भाषा की व्यवस्था को बनाए रखने का काम करता है। प्रत्येक भाषा के अपने नियम होते हैं और वे उस भाषा को शुद्ध बोलना और लिखना सिखाते हैं।

हिंदी व्याकरण हिंदी भाषा को शुद्ध रूप से लिखने और बोलने संबंधी नियमों का बोध कराने वाला शास्त्र है। यह हिंदी भाषा के अध्ययन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें हिंदी के सभी स्वरूपों का चार खण्डों के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। वर्ण विचार के अंतर्गत वर्ण और ध्वनि पर विचार किया जाता है, शब्द विचार के अंतर्गत शब्द के विविध पक्षों से संबंधित नियमों पर विचार किया जाता है, वाक्य विचार के अंतर्गत वाक्य संबंधी विभिन्न स्थितियों एवं छंद विचार में साहित्यिक रचनाओं के शिल्पगत पक्षों पर विचार किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई में लिंग, कारक, वचन, काल, वाक्य शुद्धि, शब्द अर्थ संबंध, विलोम एवं पर्यायवाची शब्दों पर विस्तृत विवेचन किया गया है। दिए गए उदाहरणों से विषय को समझने में आसानी होगी। मुहावरों व लोकोक्तियों के अध्ययन से आप अपनी बात को सरलता, सहजता और रोचकता से स्पष्ट कर पाएंगे।

टिप्पणी

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिंदी भाषा में लिंग विधान को समझ पाएंगे;
- भाषा में कारक की महत्ता को जान पाएंगे;
- वचन का सटीक प्रयोग कर पाएंगे;
- काल को परिभाषित कर पाएंगे;
- अशुद्ध शब्दों तथा वाक्यों को शुद्ध कर पाएंगे;
- शब्दों के विलोम शब्द ज्ञात कर पाएंगे;
- पयार्यवाची शब्दों से परिचित हो पाएंगे;
- मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग कर अपनी भाषा को सरस व रोचक बना पाएंगे।

4.2 लिंग

लिंग संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ होता है 'चिह्न'। शब्द की जाति को लिंग कहते हैं। लिंग के कारण संज्ञा, विशेषण और क्रिया के रूप में परिवर्तन होता है।

संज्ञा के जिस रूप से वस्तु की पुरुष व स्त्री जाति का बोध होता है उसे व्याकरण में लिंग कहते हैं। हिन्दी में दो लिंग होते हैं– पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। संस्कृत, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में जड़ वस्तुओं के लिए नपुंसकलिंग नामक एक और लिंग की व्यवस्था है लेकिन हिन्दी में उसे स्वीकार नहीं किया गया है।

पुल्लिंग : जिस संज्ञा से (यथार्थ व कल्पित) पुरुषत्व का बोध होता है, उसे पुल्लिंग कहते हैं। जैसे– लड़का, घोड़ा, बैल, नगर आदि। इन उदाहरणों में 'लड़का' और 'घोड़ा' वास्तव में पुरुषत्व को धारण करते हैं लेकिन 'नगर' की विशाल संरचना के आधार पर उसमें पुरुषत्व का आरोपण किया गया है।

स्त्रीलिंग : जिस संज्ञा से (यथार्थ व कल्पित) स्त्रीत्व का बोध होता है उसे स्त्रीलिंग कहते हैं। जैसे लड़की, घोड़ी, गाय, लता आदि। इन उदाहरणों में 'लड़की' और 'घोड़ी' स्त्रीत्व को धारण करती हैं लेकिन 'लता' की नाजुक संरचना के आधार पर उसमें स्त्रीत्व की कल्पना की गयी है।

लिंग–निर्णय

हिन्दी में लिंग का पूर्ण निर्णय मुश्किल कार्य है। इसका कोई निश्चित और स्थायी नियम नहीं है। आम तौर पर हिन्दी में लिंग का निर्णय दो प्रकार से किया जाता है– 1. शब्द के अर्थ के आधार पर 2. उसके रूप के आधार पर।

टिप्पणी

बहुधा प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के आधार पर और अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग रूप के आधार पर तय होता है। शेष शब्दों के लिंग के निर्णय का कोई निश्चित नियम नहीं है यह केवल उसके व्यवहार के आधार पर निश्चित होता है।

प्राणिवाचक शब्दों के लिंग के निर्णय के सामान्य नियम

जिन प्राणिवाचक संज्ञाओं से जोड़े का ज्ञान होता है, उनमें पुरुष बोधक संज्ञाएँ पुल्लिंग और स्त्रीबोधक संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं। जैसे पुरुष, घोड़ा, बैल, मोर, शेर इत्यादि पुल्लिंग हैं। और स्त्री, घोड़ी, गाय, मोरनी, शेरनी इत्यादि स्त्रीलिंग हैं।

कई मनुष्येतर प्राणिवाचक संज्ञाओं से दोनों जातियों का बोध होता है पर व्यवहार के अनुसार वे हमेशा पुल्लिंग या स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे–

पु.– पक्षी, चीता, भेड़िया, खटमल, केंचुआ इत्यादि।

स्त्री.– कोयल, बटेर, गिलहरी, जोंक, तितली, चील इत्यादि।

प्राणियों के समुदायकवाचक नाम का लिंग–निर्णय उनके व्यवहार के अनुसार होता है। जैसे– समूह, संघ, दल, मंडल आदि व्यवहार के स्तर पर पुल्लिंग के रूप में प्रयुक्त होते हैं और भीड़, प्रजा, सरकार, फौज आदि स्त्रीलिंग के रूप में।

अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग–निर्णय

हिन्दी में अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग व्यवहार के आधार पर निर्धारित होता है इसलिए इसको जानना कठिन होता है। अर्थ और रूप दोनों ही साधनों से इन शब्दों का लिंग जानना कठिन है। उदाहरण के लिए एक ही अर्थ के कई अलग–अलग शब्द अलग–अलग लिंग के हैं। जैसे– नेत्र पुल्लिंग है तो आँख स्त्रीलिंग है। एक ही अंत के कई शब्द अलग–अलग लिंग के होते हैं। जैसे– आलू पुल्लिंग है तो बालू स्त्रीलिंग। लेखकों और उसकी रचनाओं के आधार पर भी शब्दों के लिंग मे परिवर्तन हो जाता है।

निम्न अप्राणिवाचक शब्द अर्थ के अनुसार पुल्लिंग हैं :

1. शरीर के अवययों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे– मुंह, कान, हाथ, पाँव इत्यादि।

   अपवाद– आँख, नाक, जीभ, खाल, नस इत्यादि।
2. धातुओं के नाम जैसे– सोना, पीतल, लोहा, टीन, काँसा इत्यादि।

   अपवाद– चाँदी, मिट्टी, इत्यादि।
3. रत्नों के नाम जैसे– हीरा, मोती, पन्ना मूँगा इत्यादि।

   अपवाद– मणि, चुन्नी इत्यादि
4. पेड़ों के नाम जैसे– पीपल, शीशम, अशोक, सागौन इत्यादि।

   अपवाद– नीम, जामुन, कचनार इत्यादि
5. अनाजों के नाम जैसे– गेहूँ, चावल, मटर, चना, तिल इत्यादि।

   अपवाद– मक्का, मूँग, अरहर इत्यादि

टिप्पणी

6. द्रव पदार्थों के नाम जैसे– पानी, शर्बत, तेल इत्यादि।

   अपवाद– छाछ, स्याही, मसि इत्यादि

7. ग्रहों के नाम जैसे– सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध इत्यादि।

   अपवाद– पृथ्वी।

निम्न अप्राणिवाचक शब्द अर्थ के अनुसार स्त्रीलिंग हैं :

1. नदियों के नाम जैसे– गंगा, यमुना, नर्मदा इत्यादि।

   अपवाद– सोन, सिंधु, ब्रह्मपुत्र इत्यादि।

2. तिथियों के नाम जैसे– दूज, तीज, चौथ इत्यादि।

3. भोजनों के नाम जैसे– पूरी, खीर, रोटी, खिचड़ी इत्यादि।

   अपवाद– भात, रायता, हलुआ इत्यादि।

संज्ञा के आधार पर लिंग–निर्णय : हिन्दी में संज्ञा के आधार पर भी लिंग का निर्णय होता है। लेकिन इन नियमों के भी बहुत अधिक अपवाद होते हैं। हिन्दी भाषा में संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी के शब्द भी होते हैं जिनके लिए अलग–अलग नियम होते हैं। नीचे संज्ञा के आधार पर पुल्लिंग और स्त्रीलिंग का निर्णय करने के कुछ नियम दिये जा रहे हैं :

पुल्लिंग : निम्नलिखित शब्द पुल्लिंग होते हैं :

1. जिन भाववाचक संज्ञाओं के अन्त में न, अव, पन, वा, पा होता है। जैसे– शान, बहाव, लड़कपन, चढ़ावा, बुढ़ापा।

2. कुछ संज्ञाओं को छोड़ शेष आकारान्त संज्ञाएँ। जैसे– कपड़ा, आटा, चमड़ा इत्यादि।

3. कृदंतों की 'आन' अंत वाली संज्ञाएँ। जैसे– लगान, पान, उठान इत्यादि।

4. 'त्र' और 'न' अंत वाली संस्कृत भाषा की संज्ञाएँ जैसे– क्षेत्र, पात्र, नेत्र, पालन, दमन, नयन इत्यादि।

5. संस्कृत भाषा की जिन संज्ञाओं के अंत में 'ज' और 'त' प्रत्यय लगा हो। जैसे– जलज, सरोज, गणित, फलित आदि।

6. संस्कृत भाषा की जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में त्य, त्व, व, र्य होता है। जैसे– नृत्य, बहुत्व, गौरव, माधुर्य इत्यादि।

7. संस्कृत भाषा के जिन शब्दों के अंत में 'ख', 'आर', 'आय' या 'आस' हो। जैसे– नख, सुख, विस्तार, अध्याय, विलास, हास इत्यादि।

   अपवाद– 'आय' (स्त्रीलिंग)

8. उर्दू भाषा के जिन शब्दों के अंत में 'आब', 'आर' या 'आन' हो। जैसे– गुलाब, हिसाब, बाजार, इनकार, मकान, समान इत्यादि।

   अपवाद– शराब, मिहराब, किताब, दुकान, सरकार, तकरार आदि शब्द स्त्रीलिंग हैं।

टिप्पणी

स्त्रीलिंग : निम्नलिखित शब्द स्त्रीलिंग होते हैं :

1. ईकारान्त संज्ञाएँ। जैसे– नदी, चिट्ठी, टोपी इत्यादि।

   अपवाद– पानी, दही, घी, मोती, मही इत्यादि।

2. याकारान्त संज्ञाएँ। जैसे– खटिया, डिबिया इत्यादि।

3. जिन संज्ञाओं के अंत में 'त', 'ऊ', 'स', 'ख' और अनुस्वार हो। जैसे– रात, बात, छत, बालू, दारू, झाड़ू, प्यास, मिठास, रास, बाँस, साँस, ईख, भूख, राख, कोख, सरसों, खड़ाऊँ इत्यादि।

   अपवाद– भात, खेत, सूत, दाँत, आँसू, आलू, निकास, रास, रूख, गेहूँ इत्यादि शब्द पुल्लिंग हैं।

4. कृदंत की वे संज्ञाएँ जिनके अंत में 'न' और 'अ' हो। जैसे– रहन, सूजन, पहचान, उलझन, लूट, मार, समझ, दौड़, चमक, पुकार छाप इत्यादि।

5. जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में 'ट', 'वट' और 'हट' होता है। जैसे– सजावट, बनावट, चिकनाहट, आहट इत्यादि।

6. संस्कृत भाषा के जिन शब्दों के अंत में 'आ', 'ना', 'इ' 'ति' और 'नि' हो। जैसे– दया, माया, कृपा, शोभा, सभा, प्रार्थना, प्रस्तावना, रचना, घटना, निधि, राशि, अग्नि, रुचि, गति, मति, जाति, रीति, हानि, ग्लानि इत्यादि।

7. संस्कृत भाषा की जिन संज्ञाओं के अंत में 'उ', और 'इमा' प्रत्यय लगा हो। जैसे– वायु, मृत्यु धातु, महिमा, गरिमा इत्यादि।

8. उर्दू के जिन शब्दों के अंत में 'श', 'त', 'आ' और 'ह' हो। जैसे– कोशिश, लाश, कीमत, दस्तखत, दवा, दुनिया, राह, सलाह इत्यादि।

9. संस्कृत भाषा की 'ता' प्रत्ययांत और उर्दू भाषा की ईकारान्त भाववाचक संज्ञाएँ। जैसे– नम्रता, लघुता, सुन्दरता, जड़ता, गरमी, गरीबी, बीमारी, तैयारी, चालाकी।

लिंग निर्णय की समस्या : हिन्दी में किसी शब्द का लिंग–निर्णय एक कठिन चुनौती है। हिन्दी बोलने के क्रम में अहिन्दी भाषी लोगों को सर्वाधिक समस्या सही लिंग के चयन में ही आती है। इस वजह से वे कई बार अपमानजनक परिस्थितियों में फँस जाते हैं और फिर हिन्दी बोलने से कतराने लगते हैं। अरुणाचल जैसे राज्य के लोगों ने इसका एक सरल लेकिन व्याकरण–विरुद्ध समाधान यह निकाला है कि 'जाता है' और 'जाती है' जैसे प्रयोगों की जगह वह स्त्री–पुरुष दोनों के लिए 'जायेगा' क्रिया का प्रयोग करते हैं। आम अरुणाचली व्यक्ति के द्वारा इस तरह का किया जाने वाला प्रयोग गलत नहीं कहा जायेगा लेकिन यदि आप हिन्दी के विद्यार्थी हैं तो आपसे इतनी उम्मीद की जायेगी कि आप शुद्ध हिन्दी बोलें।

लिंग–निर्णय में अहिन्दी–भाषियों को ही नहीं हिन्दी–भाषियों को भी कठिनाई आती है। बहुत पढ़े लिखे लोग भी 'दही' और 'हाथी' जैसे शब्दों का स्त्रीलिंग के रूप में प्रयोग करते हैं। इसी तरह 'लालच' और 'झूठ' जैसे शब्दों को भी स्त्रीलिंग समझा जाता है।

जबकि ये शब्द पुल्लिंग हैं। इस तरह की मुश्किलों से तंग आकर कुछ लोगों ने प्रस्ताव किया कि क्रियाओं और विशेषणों पर से लिंग का बन्धन हटा दिया जाए, पर यह प्रस्ताव हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल नहीं है।

टिप्पणी

लिंग–सम्बन्धी अशुद्धियों के कारण

स्थानीय प्रभाव : हिन्दी भाषा भारत के किसी भी एक प्रांत की भाषा नहीं है। इसका निर्माण भले ही दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली 'खड़ी बोली' के आधार पर हुआ हो लेकिन इसका विकास भारत की विभिन्न भाषाओं के मेल से हुआ है। संस्कृत और उर्दू का तो हिन्दी पर बहुत ज्यादा प्रभाव है।

लिंग–निर्णय के संबंध में कुछ रोचक तथ्य

हिन्दी की मातृभाषा संस्कृत है। हिन्दी–व्याकरण के अधिकांश नियम संस्कृत भाषा से ग्रहण किये गये हैं। लेकिन लिंग–निर्णय के संबंध में यह जानना जरूरी है कि संस्कृत के बहुत सारे शब्दों का लिंग हिन्दी भाषा में आकर बदल जाता है। उनमें से कुछ शब्दों का विवरण निम्न है :

संस्कृत के वे शब्द जो संस्कृत में तो पुल्लिंग हैं लेकिन हिन्दी में स्त्रीलिंग हो जाते हैं, जैसे : अग्नि, आत्मा, देह, पवन, राशि, शपथ।

संस्कृत के वे शब्द जो संस्कृत में तो स्त्रीलिंग हैं लेकिन हिन्दी में पुल्लिंग हो जाते हैं, जैसे : तारा, देवता

हिन्दी व्याकरण का साधारण नियम है कि संस्कृत के नपुंसकलिंग शब्द हिन्दी में पुल्लिंग हो जाते हैं, परंतु कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो हिन्दी में आकर स्त्रीलिंग हो जाते हैं, जैसे : पुस्तक, वस्तु, आयु।

4.3 कारक

संज्ञा (या सर्वनाम) के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है उस रूप को कारक कहते हैं। जैसे– तारो ने नदी पर पुल बँधवा दिया है। उपर्युक्त वाक्य में 'तारो ने', 'नदी पर' संज्ञाओं के रूपांतर हैं जिनके द्वारा इन संज्ञाओं का संबंध 'बँधवा दिया' क्रिया के साथ सूचित होता है। इसमें 'नदी पर' 'नदी' संज्ञा का रूपांतर है और इस रूपांतर की वजह से 'नदी' का संबंध पुल से बनता है। इसलिए 'नदी पर' संज्ञा का कारक कहलायेगा।

किसी कारक को सूचित करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय लगता है उसे विभक्ति कहा जाता है। ऊपर के वाक्य में 'तारो ने' और 'नदी पर' कारकों को सूचित करने के लिए 'ने' और 'पर' प्रत्यय लगे हैं अतः यहाँ 'ने' और 'पर' विभक्ति हैं।

हिन्दी में यह धारणा आम है कि 'कारक' और 'विभक्ति' में कोई अंतर नहीं है। इसे समानार्थी शब्द माना जाता है, ऐसा अंग्रेजी व्याकरण के प्रभाव से हुआ है। लेकिन संस्कृत की तरह हिन्दी में भी कारक और विभक्ति अलग–अलग हैं।

कारक के भेद : हिन्दी में कारकों की कुल संख्या आठ मानी गयी है। इन कारकों के बोध के लिए प्रयुक्त होने वाले चिह्नों को 'विभक्ति' या 'परसर्ग' कहा जाता है। इनका विवरण निम्न प्रकार से है :

टिप्पणी

कारक	विभक्तियाँ
कर्त्ता कारक (Nominative Case)	ने
कर्म कारक (Accusative Case)	को
करण कारक (Instrumental Case)	से
सम्प्रदान कारक (Dative Case)	को, के लिए
अपादान कारक (Ablative Case)	से
सम्बन्ध कारक (Genitive Case)	का, के, की
अधिकरण कारक (Locative Case)	में, पर
संबोधन कारक (Vocative Case)	हे, अजी, अहो, अरे

हिन्दी में विभक्तियों के प्रयोग के नियम

1. हिन्दी भाषा में विभक्तियों का अस्तित्व स्वतंत्र होता है। इनका कोई अर्थ नहीं होता। वाक्य में प्रयुक्त होने पर इनका रूप भी नहीं बदलता है इसलिए इन्हें 'अव्यय' भी कहा जाता है। इनकी भूमिका केवल शब्दों के बीच के सम्बन्ध को प्रकट करना है, जैसे– ने, का, पर आदि।
2. विभक्तियाँ प्रायः संज्ञा या सर्वनामों के साथ आती हैं। जैसे– नौकर ने दरवाजा बंद किया।
3. संज्ञा और सर्वनाम से विभक्तियों का जुड़ाव दो प्रकार से होता है– विश्लिष्ट और संश्लिष्ट। जो विभक्तियाँ संज्ञा के साथ आती हैं वे विश्लिष्ट होती हैं। अर्थात वे संज्ञा से अलग रहती हैं, जैसे– 'राम ने', 'ताई को'। लेकिन जो विभक्तियाँ सर्वनाम के साथ आती हैं वे उसके साथ संश्लिष्ट हो जाती हैं, अर्थात वे सर्वनाम के साथ जुड़ जाती हैं, जैसे 'तुमने'। यहाँ 'तुम' सर्वनाम है और उसके साथ 'ने' विभक्ति लगी है। यहाँ 'तुम' और 'ने' संश्लिष्ट होकर 'तुमने' रूप बन गया।

हिन्दी के कारक

कर्त्ता कारक : 'कर्त्ता' का अर्थ है करनेवाला। जो कोई भी क्रिया करता है वह कर्त्ता है। जैसे– राम खाना खाता है। इस वाक्य में खाना खाने की क्रिया 'राम' करता है, इसलिए राम 'कर्त्ता' है। वाक्य में जो शब्द काम करने वाले के अर्थ में आता है, उसे कर्त्ता कहते हैं। और उसे सूचित करने वाले संज्ञा के रूप को कर्त्ता कारक कहते हैं। उदाहरण के लिए 'राम सोता है', 'कृष्ण ने बाँसुरी बजायी' वाक्य में 'राम' और 'कृष्ण' कर्त्ता कारक हैं।

टिप्पणी

कर्त्ता कारक के 'ने' चिह्न के प्रयोग का नियम

1. कर्त्ता कारक की 'ने' विभक्ति कई वाक्यों में नहीं आती। 'राम खाता है' वाक्य में 'ने' विभक्ति नहीं आयी है। 'राम ने किताब खरीदी' वाक्य में 'राम' कर्त्ता के साथ 'ने' विभक्ति का प्रत्यक्ष प्रयोग हुआ है।
2. कर्तृवाच्य में लाना, बकना, भूलना आदि कुछ सकर्मक क्रियाओं को छोड़कर अन्य सकर्मक क्रियाओं के सामान्य, आसन्न, पूर्ण तथा संदिग्ध भूत में कर्त्ता के साथ 'ने' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे–

   सामान्य भूत– राम ने किताब पढ़ी।

   आसन्न भूत– राम ने किताब पढ़ी है।

   पूर्ण भूत– राम ने किताब पढ़ी थी।

   संदिग्ध भूत– राम ने पुस्तक पढ़ी होगी।
3. जब संयुक्त क्रिया के दोनों खण्ड सकर्मक हों, तो अपूर्णभूत को छोड़ शेष सभी भूतकालों में कर्त्ता के आगे 'ने' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे– राम ने खा लिया।
4. सामान्यतः अकर्मक क्रिया में 'ने' विभक्ति नहीं लगती लेकिन छींकना, खाँसना, थूकना, नहाना जैसी अकर्मक क्रियाओं में ने चिह्न का प्रयोग होता है। ऐसी क्रियाओं के बाद कर्म नहीं आता। जैसे– उसने छींका, राम ने खाँसा, श्याम ने थूका।
5. जब अकर्मक क्रिया सकर्मक बन जाए तब 'ने' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे– वनश्री ने चढ़ाई चढ़ी।
6. संयुक्त क्रिया का अंतिम खंड यदि सकर्मक हो तो 'ने' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे– उसने पैसा खो दिया।
7. प्रेरणार्थक क्रियाओं के साथ, अपूर्णभूत को छोड़ शेष सभी भूतकालों में 'ने' का प्रयोग होता है। जैसे– मैंने उसे दौड़ाया।

कर्म कारक : जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है उसे सूचित करने वाले संज्ञा के रूप को कर्म कारक कहते हैं। जैसे– 'संजय ने मोहन को दौड़ाया।' इस वाक्य में कर्त्ता 'राम' के 'दौड़ाने' की क्रिया का फल 'मोहन' पर पड़ता है इसलिए यहाँ 'मोहन' कर्म है। 'मोहन' नामक कर्म का संबंध क्रिया से 'को' चिह्न द्वारा स्थापित होता है, अतः यहाँ 'मोहन को' में कर्म कारक है और इस कारक को चिह्नित करने वाली विभक्ति 'को' है। कर्म कारक की विभक्ति 'को' वाक्यों में अक्सर लुप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में कर्म कारक की संज्ञा का रूप दोनों वचनों में कर्त्ता कारक के ही समान होता है। ऊपर हमने देखा है कि 'को' विभक्ति सम्प्रदान कारक की भी है। इस कारण इस विभक्ति के प्रयोग को लेकर बहुत अधिक भ्रम है।

कर्म कारक के 'को' चिह्न के प्रयोग का नियम

1. सकर्मक क्रिया का फल जिस पर पड़ता है, वह कर्म है और उसके बाद 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे– माता ने बच्चे को सुलाया।

टिप्पणी

2. अधिकारसूचक तथा व्यापारसूचक कर्तृवाचक कर्म के साथ 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे– सुनील को बुलाओ। उसको किताब लाने दो।
3. समय की सूचना देने में 'को' चिह्न का प्रयोग होता है, जैसे– चार बजने को हैं।
4. 'मारना' क्रिया का अर्थ जब केवल 'पीटना' हो तब 'को' विभक्ति लगती है और जब उसका अर्थ 'शिकार करना' हो तब विभक्ति नहीं लगती है। जैसे– शीला ने संजय को पीटा। शिकारी ने हिरण मारा।
5. छलना, रुकना, होना, चाहिए, पढ़ना, मिलना आदि क्रियाओं के साथ 'को' चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे– मुझको पढ़ना चाहिए।
6. यदि विशेषण संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हों तो कर्म में 'को' अवश्य लगता है। जैसे– बालकों को प्यार करो।

करण कारक : 'करण' का अर्थ होता है 'साधन'। संज्ञा के जिस रूप से क्रिया के साधन का बोध होता है उसे करण कारक कहते हैं। जैसे– ओकेन ने हाथ से फूल तोड़ा। इस वाक्य में संज्ञा 'ओकेन' द्वारा फूल तोड़ने की क्रिया 'हाथ से' होती है अतः 'हाथ से' करण कारक है। करण कारक की विभक्ति 'से' है। अपादान कारक का विभक्ति चिह्न भी 'से' ही है, लेकिन 'अपादान' का अर्थ होता है 'अलगाव की प्राप्ति'। अतः अपादान कारक की विभक्ति 'से' वहाँ लगती है जहाँ अलगाव का संकेत मिलता हो जबकि इसके विपरीत करण कारक की विभक्ति वहाँ लगती है जहाँ साधनभूत लगाव हो। 'पेड़ से पत्ते गिरते हैं।' में 'से' विभक्ति अपादान कारक की है क्योंकि यहाँ पेड़ से पत्ते का अलगाव हो रहा है।

करण कारक के 'से' चिह्न के प्रयोग के नियम

1. जहाँ भी 'से' विभक्ति साधन के अर्थ की ओर संकेत करती है, वहाँ करण कारक की 'से' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे– कमल ने पेंसिल से चित्र बनाया।
2. कर्मवाच्य और भाववाच्य में कर्त्ता के साथ 'से' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे– उससे चला नहीं जाता।
3. प्रेरित कर्त्ता, क्रिया करने की पद्धति और गौण कर्म में 'से' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे– वह नौकर से काम करवाता है। धीरज से काम लो। शिक्षक छात्रों से किताब पढ़वाते हैं।
4. वस्तु–स्थिति का ज्ञान कराने के लिए क्रियार्थक संज्ञाओं में 'से' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे– छूने से बर्फ ठंडी मालूम पड़ती है।
5. दिशावाचक शब्दों के योग और निर्धारण तथा पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में इस विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे– मोहन दक्षिण से आया है। संजय का घर शहर का सबसे बड़ा भवन है। पुल से देखो।
6. समय और स्थान की दूरी संकेतित करने एवं प्रेम, प्रयोजन आदि का भाव बताने के लिए इस विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे– दिल्ली कलकत्ता से पंद्रह सौ किलोमीटर की दूरी पर है। मुझे सरोज से प्रेम है।

टिप्पणी

सम्प्रदान कारक : जिसके लिए कुछ किया जाए या जिसको कुछ दिया जाए, इसका बोध करानेवाले शब्द के रूप को सम्प्रदान कारक कहते हैं। इसकी विभक्ति 'को' है। जैसे– राजा ने गरीब को दान दिया। इस वाक्य में राजा गरीब को दान दे रहा है और इस क्रिया का बोध 'को' विभक्ति से हो रहा है अतः यहाँ सम्प्रदान कारक है।

सम्प्रदान कारक के 'को' चिह्न के प्रयोग के नियम

1. कर्म और सम्प्रदान दोनों कारको में 'को' विभक्ति का ही प्रयोग होता है लेकिन दोनों के अर्थ में अंतर है। सम्प्रदान का 'को' अव्यय के स्थान पर या उसके अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि कर्म के 'को' का अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे- संजय मोहन को रुपये देता है। इस वाक्य में 'को' सम्प्रदान कारक की विभक्ति है क्योंकि यहाँ 'को' अव्यय है।
2. जिसे कुछ दिया जाता है या जिसके लिए कोई काम किया जाता है वहाँ 'को' विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे– गुरु शिष्य को ज्ञान देता है।

अपादान कारक

संज्ञा के जिस रूप से किसी वस्तु के अलग होने का भाव प्रकट होता है उसे अपादान कारक कहते हैं। इसकी विभक्ति 'से' है। जैसे– गंगा हिमालय से निकलती है। इस वाक्य में गंगा के हिमालय से अलग होने का भाव प्रकट होता है। करण कारक के प्रसंग में अपादान और करण कारक की 'से' विभक्ति के अंतर पर सोदाहरण विचार किया गया है।

सम्बन्ध कारक : संज्ञा के जिस रूप से उसका किसी अन्य वस्तु से सम्बन्ध प्रकट होता हो उसे सम्बन्ध कारक कहते हैं। इसकी विभक्ति 'का', 'के' और 'की' है। जैसे– राजा का महल, संजय के कान, श्याम की कलम। सम्बन्ध कारक अन्य कारकों से इस मामले में भिन्न है कि जहाँ अन्य कारकों का सम्बन्ध मुख्य रूप से क्रिया के साथ और साधारण रूप से अन्य संज्ञाओं के साथ होता है वहीं सम्बन्ध कारक मुख्य रूप से संज्ञा के साथ ही जुड़ा होता है। यही कारण है कि सम्बन्ध कारक का लिंग और वचन संबंधी संज्ञा के अनुसार होता है और उसकी विभक्ति का रूप उस अनुसार बदलता रहता है। जैसे– राम का घर, राम के गाँव, राम की किताब।

सम्बन्ध कारक का विभक्ति चिह्न 'का' है लेकिन वचन और लिंग के अनुसार इसकी विकृति 'के' और 'की' के रूप में हो जाती है। इस कारक से अधिकार–कर्तृत्व, कार्य–कारण, मोल–भाव इत्यादि का बोध होता है। सम्बन्ध कारक की 'का–के–की' विभक्ति का कुछ मुहावरेदार प्रयोग भी होता है। जैसे– कान का कच्चा, महीने के महीने, होली की होली।

अधिकरण कारक : संज्ञा का वह रूप जिससे क्रिया के आधार का बोध होता है अधिकरण कारक कहलाता है। 'में' और 'पर' अधिकरण कारक के दो प्रधान चिह्न हैं। जैसे– सिंह जंगल में रहता है। सड़क पर जमुना चल रही है। इन वाक्यों में सिंह के जंगल में रहने की क्रिया 'में' से और जमुना के सड़क पर चलने की क्रिया 'पर' विभक्ति से प्रकट हो रही है इसलिए यहाँ अधिकरण कारक है। कभी–कभी अधिकरण में 'को' चिह्न भी रहता है।

टिप्पणी

जैसे– वह आधी रात को घर आया। कभी–कभी अधिकरण कारक की विभक्तियों का लोप भी हो जाता है। जैसे– भिखारी दरवाजे–दरवाजे घूम रहे हैं।

आधार, समय, दूरी एवं अवधि के अर्थ में अधिकरण कारक के 'में' और 'पर' चिह्नों का प्रयोग होता है। जैसे– टेबल पर पुस्तक है। वह पाँच दिनों में आयेगा। एक मील पर सरिता का घर है।

सम्बोधन कारक : संज्ञा के जिस रूप से किसी के पुकारने, संकेत करने या सचेत करने का भाव पाया जाता है उसे सम्बोधन कारक कहते हैं। इसकी विभक्तियाँ 'हे', 'अजी', 'अहो' और 'अरे' है। जैसे– हे भगवान! मेरी रक्षा कीजिए। अजी, वहाँ न जाइये। अहो, तुम्हें क्या हो गया। अरे, तुम यह क्या कर रहे हो।

4.4 वचन

सामान्य हिन्दी में 'वचन' का अर्थ होता है 'बोली', परंतु व्याकरण में वचन का अर्थ है 'संख्या'। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के जिस रूप से संख्या का बोध होता है उसे वचन कहते हैं। जैसे– 'लड़का आता है' और 'लड़के आते हैं' वाक्यों में पहले वाक्य से स्पष्ट है कि कोई एक ही लड़का आता है जबकि दूसरे वाक्य से पता चलता है कि कई लड़के आ रहे हैं। इनमें से पहले वाक्य में एकवचन का प्रयोग हुआ है जबकि दूसरे वाक्य में बहुवचन का। इन वाक्यों में 'लड़का' संज्ञा और 'आना' क्रिया के द्वारा लड़कों की संख्या का बोध भी हो जाता है।

हिन्दी में दो वचन होते हैं– एकवचन और बहुवचन।

एकवचन (Singular Number)– संज्ञा के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध होता है, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे– नदी, गदहा, कपड़ा आदि।

बहुवचन (Plural Number)– संज्ञा के जिस रूप से एक से अधिक वस्तुओं का बोध होता है उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे– नदियाँ, गदहे, कपड़े आदि।

वचन के रूपान्तर

वचन के कारण संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के रूपों में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन मूलतः संज्ञाओं पर आधारित होता है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि वचन में संज्ञा शब्दों का रूपान्तर होता है।

वाक्य में संज्ञा का प्रयोग दो तरह से होता है– विभक्तिसहित और विभक्तिरहित। अर्थात वाक्य में कभी संज्ञा के साथ विभक्ति का प्रयोग होता है और कभी प्रयोग नहीं होता है। जैसे 'बालक खेलते हैं' वाक्य में 'बालक' संज्ञा के साथ किसी भी विभक्ति का प्रयोग नहीं हुआ है अतः यह विभक्तिरहित संज्ञा है। जबकि 'बालक ने किताब फाड़ी' वाक्य में 'बालक' संज्ञा के साथ 'ने' विभक्ति का प्रयोग हुआ अतः यहाँ 'बालक' संज्ञा विभक्तिसहित है। हिन्दी में एकवचन से बहुवचन में रूपांतर के नियम संज्ञा में विभक्ति के प्रयोग के आधार पर ही निर्धारित होते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि व्याकरण में कोई भी नियम विज्ञान की तरह निर्विवाद नहीं होता। व्याकरण में हर नियम का अपवाद भी होता है।

विभक्तिरहित संज्ञाओं के बहुवचन बनाने के नियमः

टिप्पणी

1. हिन्दी आकारान्त पुल्लिंग शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए उसके अंतिम 'आ' अक्षर के स्थान पर 'ए' लगा देते हैं। जैसे– लड़का–लड़के, पहिया–पहिये, बच्चा–बच्चे।

   अपवाद– साला, भानजा, बेटा, भतीजा आदि शब्दों को छोड़कर शेष सम्बन्धवाचक, उपमानवाचक और प्रतिष्ठावाचक आकारान्त शब्दों का रूप दोनों वचनों में एक ही रहता है। जैसे काका–काका, दादा–दादा, लाला–लाला, शर्मा–शर्मा।

2. पुल्लिंग आकारांत के सिवा शेष मात्राओं से अन्त होने वाले शब्दों के रूप दोनों वचनों में समान रहते हैं। जैसे–

   अकारान्त– बालक–बालक, घर–घर।

   इकारान्त– घड़ी–घड़ी, कवि–कवि।

   ईकारान्त– भाई–भाई, सिपाही–सिपाही।

   उकारान्त– साधु–साधु, गुरु–गुरु।

   ऊकारान्त– उल्लू–उल्लू, भालू–भालू।

   एकारान्त– दूबे–दूबे।

   ओकारान्त– रासो–रासो।

   औकारान्त– जौ–जौ।

3. अकारान्त और आकारान्त स्त्रीलिंग एकवचन संज्ञा–शब्दों के अन्त में 'एँ' लगाने से बहुवचन बनता है। जैसे गाय–गायें, बहन–बहनें, कामना–कामनाएँ, लता–लताएँ।
4. इकारान्त या ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अंतिम 'ई' को ह्रस्व करके उसमें 'याँ' जोड़ने अर्थात अन्तिम 'इ' या 'ई' को 'इयाँ' कर देने से बहुवचन बन जाता है। जैसे तिथि–तिथियाँ, विधि–विधियाँ, नदी–नदियाँ, परी–परियाँ।
5. 'इया' अंतवाली स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अंतिम 'या' पर चन्द्रबिन्दु लगा देने से बहुवचन रूप बन जाता है। जैसे– चिड़िया– चिड़ियाँ, गुड़िया– गुड़ियाँ।
6. अ–आ–इ–ई के अलावा अन्य मात्राओं से अन्त होने वाली स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त में 'एँ' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। अन्तिम स्वर 'ऊ' होने पर उसको ह्रस्व 'उ' बनाकर उसमें 'एँ' जोड़ देते हैं। जैसे– वस्तु–वस्तुएँ, बहू–बहुएँ।
7. संज्ञा के पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग रूपों में बहुवचन का बोध प्रायः 'गण', 'वर्ग', 'जन', 'लोग' आदि लगाकर कराया जाता है। जैसे– छात्र–छात्रगण, अधिकारी–अधिकारीवर्ग, वृद्ध–वृद्धजन, आप–आपलोग।

विभक्तिसहित संज्ञाओं के बहुवचन बनाने के नियम

1. आकारान्त एवं उकारान्त संस्कृत शब्दों तथा ऊकारांत और औकारांत हिन्दी शब्दों के अंत में 'ओं' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे– माता–माताओं, गुरु–गुरुओं, वधू–वधुओं, गौ–गौओं।

2. हिन्दी के आकारान्त एवं हिन्दी–संस्कृत किसी भी भाषा के अकारांत और एकारांत शब्दों के अंतिम आ, अ, ए के स्थान पर 'ओं' रखकर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे– बालक–बालकों, दूबे–दूबों।
3. सभी इकारांत तथा ईकारांत संज्ञाओं के अंत में 'यों' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। ईकारांत शब्दों के अंतिम 'ई' को 'इ' बनाकर उसके अंत में 'यों' जोड़ा जाता है, जैसे– निधि–निधियों, धनी–धनियों।

टिप्पणी

4.5 काल

काल 'क्रिया' का वह रूपांतर है, जिसमें उसके कार्य करने का समय और उसकी पूर्णता अथवा अपूर्णता का बोध होता है।

काल के भेद

काल तीन प्रकार के होते हैं– 1. वर्तमान काल, 2. भूतकाल, और 3. भविष्यकाल।

वर्तमान काल

वर्तमान काल क्रिया व्यापार का वह रूप है, जिसमें क्रिया की निरंतरता का बोध होता है। जैसे– राम जाता है। यहाँ 'जाने' का कार्यव्यापार अभी जारी है, पूरा नहीं हुआ।

अवस्था की दृष्टि से वर्तमान काल के पाँच भेद हैं– 1. सामान्य वर्तमान, 2. तात्कालिक वर्तमान, 3. संदिग्ध वर्तमान, 4. संभाव्य वर्तमान और 5. पूर्ण वर्तमान।

1. **सामान्य वर्तमान**– जब किसी क्रिया के वर्तमान समय में केवल होना पाया जाए, वह 'सामान्य वर्तमान' कहलाता है। जैसे– राम जाता है। यहाँ वाक्य जाता है में जाने की क्रिया के वर्तमान काल में होने का बोध तो होता है, लेकिन वर्तमान की किसी अवस्था विशेष की जानकारी नहीं मिल पाती।
2. **तात्कालिक वर्तमान**– जब किसी क्रिया के वर्तमान समय में चलने की निरंतरता का भान हो, 'तात्कालिक वर्तमान' कहलाता है। जैसे– राम पुस्तक पढ़ रहा है। यहाँ 'पढ़ रहा है' से ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति पुस्तक पढ़ रहा है, उसके पढ़ने की क्रिया अभी जारी है।
3. **संदिग्ध वर्तमान**– वर्तमान काल का वह रूप जिसमें क्रिया व्यापार के वर्तमान काल में होने में संदेह हो परन्तु घटना वर्तमान की ही हो, संदिग्ध वर्तमान कहलाता है। जैसे– राम आता होगा। यहाँ 'आना' क्रिया (की पूर्णता) में संदेह बना हुआ है।
4. **संभाव्य वर्तमान**– वर्तमान काल के जिस रूप से क्रिया व्यापार के पूर्ण हो जाने की संभावना रही हो, संभाव्य वर्तमान कहलाता है। जैसे– राम खेला हो। यहाँ 'खेलने' की क्रिया के पूरे हो जाने की संभावना है।

5. **पूर्ण वर्तमान**– वर्तमान काल के जिस रूप से क्रिया व्यापार के पूर्ण सिद्धि का बोध हो, पूर्ण वर्तमान कहलाता है। जैसे– राम ने पुस्तक पढ़ी है। यहाँ व्यक्ति के पुस्तक पढ़ने की क्रिया पूरी हो चुकी है।

टिप्पणी

भूतकाल

जिससे क्रिया व्यापार की समाप्ति का बोध हो, उसे भूतकाल कहते हैं। जैसे– राम गया था। यहाँ 'जाने' की क्रिया के पूर्ण रूप से संपन्न हो जाने की सूचना मिलती है।

भूतकाल के छः भेद हैं– 1. सामान्य भूत, 2. आसन्न भूत, 3. पूर्ण भूत, 4. अपूर्ण भूत 5. संदिग्ध भूत और 6. हेतुहेतुमद्‌भूत।

1. **सामान्य भूत**– जब किसी क्रिया व्यापार का भूतकाल में होना पाया जाए, लेकिन इस क्रिया से भूतकाल की क्रिया की अवस्था विशेष की जानकारी प्राप्त न हो, सामान्य भूत कहलाता है। जैसे– राम गया। यहाँ 'गया' (क्रिया व्यापार) के 'भूतकाल' में संपन्न होने की केवल सामान्य अवस्था का बोध होता है। क्रिया व्यापार के पूर्ण–अपूर्ण की कोई विशेष सूचना नहीं मिलती है।
2. **आसन्न भूत**– जिसमें क्रिया के कुछ समय पूर्व ही समाप्त होने की सूचना का बोध हो, आसन्न भूत कहलाता है। जैसे– राम ने खाना खाया है। यहाँ 'खाना खाने' की क्रिया कुछ समय पूर्व ही समाप्त हुई है।
3. **पूर्ण भूत**– जिसमें क्रिया की समाप्ति के समय का पूरा स्पष्ट बोध हो, पूर्ण भूत कहलाता है। जैसे– राम ने खाना खाया था। यहाँ व्यक्ति के 'खाना खाने' की क्रिया बहुत पहले समाप्त हो चुकी है।
4. **अपूर्ण भूत**– जिसमें क्रिया व्यापार का प्रारंभ भूतकाल में हुआ हो, लेकिन पूर्णता का कोई बोध न हो, अपूर्ण भूत कहलाता है। जैसे– राम जा रहा था।
5 **संदिग्ध भूत**– भूतकाल का वह रूप जिसमें क्रिया व्यापार के भूतकाल में होने में संदेह हो परन्तु हो भूतकाल का ही, संदिग्ध भूत कहलाता है। जैसे– राम आया होगा। यहाँ 'आना' क्रिया (की पूर्णता) में संदेह बना हुआ है।
6. **हेतुहेतुमद् भूत**– भूतकाल का वह रूप जिसमें क्रिया व्यापार भूतकाल में होने वाली थी, परन्तु न हो सकी। जैसे– राम आता तो मैं जाता।

भविष्य काल

जिस काल में क्रिया के 'आने वाले समय' (वर्तमान के बाद) में घटित होने का बोध हो, भविष्य काल कहते हैं। जैसे– राम जाएगा। यहाँ 'जाएगा' से ज्ञात होता है कि जाने की क्रिया भविष्य में संपन्न होगी।

भविष्य काल के तीन भेद हैं–

1. सामान्य भविष्य, 2. सम्भाव्य भविष्य और 3. हेतुहेतुमद् भविष्य।

1. **सामान्य भविष्य**– जब किसी क्रिया व्यापार का भविष्य काल में होना पाया जाए, लेकिन इस क्रिया से भविष्य काल की क्रिया के अवस्था विशेष की जानकारी प्राप्त न हो, सामान्य भविष्य कहलाता है। जैसे– राम जाएगा। यहाँ 'जाएगा' (क्रिया व्यापार) के 'भविष्य' में संपन्न होने की केवल सामान्य अवस्था का बोध होता है। क्रिया व्यापार के पूर्ण–अपूर्ण की कोई विशेष सूचना नहीं मिलती है।

टिप्पणी

2. **सम्भाव्य भविष्य**– भविष्य काल के जिस रूप से क्रिया व्यापार के पूर्ण हो जाने की संभावना रही हो, संभाव्य भविष्य कहलाता है। जैसे– संभव है, राम ने खाना खाया होगा। यहाँ 'खाने' की क्रिया के पूरे हो जाने की संभावना है।
3. **हेतुहेतुमद् भविष्य**– भविष्य काल का ऐसा रूप, जिसमें क्रिया का होना किसी कारण होने पर निर्भर हो, 'हेतुहेतुमद् भविष्य' कहलाता है। जैसे– राम आएगा तो मैं जाऊंगा।

4.6 वाक्य–शुद्धि

किसी शब्द को लिखने में प्रयुक्त वर्णों के क्रम को वर्तनी या अक्षरी कहते हैं। अंग्रेजी में वर्तनी को Spelling तथा उर्दू में 'हिज्जे' कहते हैं। किसी भाषा की समस्त ध्वनियों को सही ढंग से उच्चारित करने हेतु वर्तनी की एकरूपता स्थापित की जाती है। जिस भाषा की वर्तनी में अपनी भाषा के साथ अन्य भाषाओं की ध्वनियों को ग्रहण करने की जितनी अधिक शक्ति होगी, उस भाषा की वर्तनी उतनी ही समर्थ होगी। अतः वर्तनी का सीधा सम्बन्ध भाषागत ध्वनियों के उच्चारण से है।

वर्तनी एवं वाक्य शुद्धीकरण

शुद्ध वर्तनी लिखने के प्रमुख नियम निम्न हैं–

- हिन्दी में विभक्ति चिह्न सर्वनामों के अलावा शेष सभी शब्दों से अलग लिखे जाते हैं, जैसे–
  - मोहन ने पुत्र को कहा।
  - श्याम को रुपये दे दो।

  परन्तु सर्वनाम के साथ विभक्ति चिह्न हो तो उसे सर्वनाम में मिलाकर लिखा जाना चाहिए, जैसे– हमने, उसने, मुझसे, आपको, उसको, तुमसे, हमको, किससे, किसको, किसने, किसलिए आदि।
- सर्वनाम के साथ दो विभक्ति चिह्न होने पर पहला विभक्ति चिह्न सर्वनाम में मिलाकर लिखा जाएगा एवं दूसरा अलग लिखा जाएगा, जैसे–

  आपके लिए, उसके लिए, इनमें से, आपमें से, हममें से आदि।

  सर्वनाम और उसकी विभक्ति के बीच 'ही' अथवा 'तक' आदि अव्यय हों तो विभक्ति सर्वनाम से अलग लिखी जायेगी, जैसे–

  आप ही के लिए, आप तक को, मुझ तक को, उस ही के लिए।
- संयुक्त क्रियाओं में सभी अंगभूत क्रियाओं को अलग–अलग लिखा जाना चाहिए, जैसे– जाया करता है, पढ़ा करता है, जा सकते हो, खा सकते हो, आदि।

टिप्पणी

- पूर्वकालिक प्रत्यय 'कर' को क्रिया से मिलाकर लिखा जाता है, जैसे– सोकर, उठकर, गाकर, धोकर, मिलाकर, अपनाकर, खाकर, पीकर, आदि।
- द्वन्द्व समास में पदों के बीच योजन चिह्न (–) हाइफन लगाया जाना चाहिए, जैसे– माता–पिता, राधा–कृष्ण, शिव–पार्वती, बाप–बेटा, रात–दिन आदि।
- 'तक', 'साथ' आदि अव्ययों को पृथक लिखा जाना चाहिए, जैसे– मेरे साथ, हमारे साथ, यहाँ तक, अब तक आदि।
- 'जैसा' तथा 'सा' आदि सारूप्य वाचकों के पहले योजक चिह्न (–) का प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसे– चाकू–सा, तीखा–सा, आप–सा, प्यारा–सा, कन्हैया–सा आदि।
- जब वर्णमाला के किसी वर्ग के पंचम अक्षर के बाद उसी वर्ग के प्रथम चारों वर्णों में से कोई वर्ण हो तो पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार (ं) का प्रयोग होना चाहिए। जैसे–कंकर, गंगा, चंचल, ठंड, नंदन, संपन्न, अंत, संपादक आदि। परंतु जब नासिक्य व्यंजन (वर्ग का पंचम वर्ण) उसी वर्ग के प्रथम चार वर्णों के अलावा अन्य किसी वर्ण के पहले आता है तो उसके साथ उस पंचम वर्ण का आधा रूप ही लिखा जाना चाहिए। जैसे– पन्ना, सम्राट, पुण्य, अन्य, सन्मार्ग, रम्य, जन्म, अन्वय, अन्वेषण, गन्ना, निम्न, सम्मान आदि परन्तु घन्टा, ठन्डा, हिण्दी आदि लिखना अशुद्ध है।
- अ, ऊ एवं आ मात्रा वाले वर्णों के साथ अनुनासिक चिह्न (ँ) को इसी चन्द्रबिन्दु (ँ) के रूप में लिखा जाना चाहिए, जैसे– आँख, हँस, जाँच, काँच, अँगना, साँस, ढाँचा, ताँत, दायाँ, बायाँ, ऊँट, हूँ, जूँ आदि। परन्तु अन्य मात्राओं के साथ अनुनासिक चिह्न को अनुस्वार (ं) के रूप में लिखा जाता है, जैसे– मैंने, नहीं, ढेंचा, खींचना, दायें, बायें, सिंचाई, ईंट आदि।
- संस्कृत मूल के तत्सम शब्दों की वर्तनी में संस्कृत वाला रूप ही रखा जाना चाहिए, परन्तु कुछ शब्दों के नीचे हलन्त (्) लगाने का प्रचलन हिन्दी में समाप्त हो चुका है। अतः उनके नीचे हलन्त न लगाया जाये, जैसे– महान, जगत, विद्वान आदि। परन्तु संधि या छन्द को समझाने हेतु नीचे हलन्त लगाया जाएगा।
- अंग्रेजी से हिन्दी में आये जिन शब्दों में आधे 'ओ' (आ एवं ओ के बीच की ध्वनि 'ऑ') की ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके ऊपर अर्द्ध चन्द्रबिन्दु लगानी चाहिए, जैसे– बॉल, कॉलेज, डॉक्टर, कॉफी, हॉल, हॉस्पिटल आदि।
- संस्कृत भाषा के ऐसे शब्दों, जिनके आगे विसर्ग (:) लगता है, यदि हिन्दी में वे तत्सम रूप में प्रयुक्त किये जाएँ तो उनमें विसर्ग लगाना चाहिए, जैसे– दुःख, स्वान्तः, फलतः, प्रातः, अतः, मूलतः, प्रायः आदि। परन्तु दुखद, अतएव आदि में विसर्ग का लोप हो गया है।
- विसर्ग के पश्चात् श, ष, या स आये तो या तो विसर्ग को यथावत लिखा जाता है या उसके स्थान पर अगला वर्ण अपना रूप ग्रहण कर लेता है। जैसे–

– दुः + शासन = दुःशासन या दुश्शासन

– निः + सन्देह = निःसन्देह या निस्सन्देह ।

- वर्तनी संबंधी अशुद्धियाँ एवं उनमें सुधार :

उच्चारण दोष अथवा शब्द रचना और संधि के नियमों की जानकारी की अपर्याप्तता के कारण सामान्यतः वर्तनी अशुद्धि हो जाती है।

वर्तनी की अशुद्धियों के प्रमुख कारण निम्न हैं–

- उच्चारण दोषः कई क्षेत्रों व भाषाओं में, स–श, व–ब, न–ण आदि वर्णों में अर्थभेद नहीं किया जाता तथा इनके स्थान पर एक ही वर्ण स, ब या न बोला जाता है जबकि हिन्दी में इन वर्णों की अलग–अलग अर्थ–भेदक ध्वनियाँ हैं। अतः उच्चारण दोष के कारण इनके लेखन में अशुद्धि हो जाती है। जैसे–

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
कोसिस	–	कोशिश
सीदा	–	सीधा
सबी	–	सभी
सोर	–	शोर
अराम	–	आराम
पाणी	–	पानी
बबाल	–	बवाल
पाठसाला	–	पाठशाला
शब	–	शव
निपुन	–	निपुण
प्रान	–	प्राण
बचन	–	वचन
ब्यवहार	–	व्यवहार
रामायन	–	रामायण
गुन	–	गुण

- जहाँ 'श' एवं 'स' एक साथ प्रयुक्त होते हैं वहाँ 'श' पहले आयेगा एवं 'स' उसके बाद। जैसे– शासन, प्रशंसा, नृशंस, शासक ।

इसी प्रकार 'श' एवं 'ष' एक साथ आने पर पहले 'श' आयेगा फिर 'ष', जैसे– शोषण, शीर्षक, विशेष, शेष, वेशभूषा, विशेषण आदि।

- 'स्' के स्थान पर पूरा 'स' लिखने पर या 'स्' के पहले किसी अक्षर का मेल करने पर अशुद्धि हो जाती है, जैसे– इस्त्री (शुद्ध होगा– स्त्री), अस्नान (शुद्ध होगा– स्नान), परसपर अशुद्ध है जबकि शुद्ध है परस्पर।

टिप्पणी

- **अक्षर रचना की जानकारी का अभाव :** देवनागरी लिपि में संयुक्त व्यंजनों में दो व्यंजन मिलाकर लिखे जाते हैं, परन्तु इनके लिखने में त्रुटि हो जाती है, जैसे–

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
आर्शीवाद	–	आशीर्वाद
निमार्ण	–	निर्माण
पुर्नस्थापना	–	पुनर्स्थापना

बहुधा 'र्' के प्रयोग में अशुद्धि होती है। जब 'र्' (रेफ) किसी अक्षर के ऊपर लगा हो तो वह उस अक्षर से पहले पढ़ा जाएगा। यदि हम सही उच्चारण करेंगे तो अशुद्धि का ज्ञान हो जाता है। आशीर्वाद में 'र्', 'वा' से पहले बोला जायेगा– आशीर् वाद। इसी प्रकार निर्माण में 'र्' का उच्चारण 'मा' से पहले होता है, अतः 'र्' मा के ऊपर आयेगा।

- जिन शब्दों में व्यंजन के साथ स्वर, 'र्' एवं आनुनासिक का मेल हो उनमें उस अक्षर को लिखने की विधि है–

अक्षर स्वर र् अनुस्वार (ं)।

जैसे– त् ए र् अनुस्वार = शर्तें

म् ओ र् अनुस्वार = कर्मों।

इसी प्रकार औरों, धर्मों, पराक्रमों आदि को लिखा जाता है।

- कोई, भाई, मिठाई, कई, ताई आदि शब्दों को कोयी, भायी, मिठायी, तायी आदि लिखना अशुद्ध है। इसी प्रकार अनुयायी, स्थायी, वाजपेयी शब्दों को अनुयाई, स्थाई, वाजपेई आदि रूप में लिखना भी अशुद्ध होता है।
- सम् उपसर्ग के बाद य, र, ल, व, श, स, ह आदि ध्वनि हो तो 'म्' को हमेशा अनुस्वार (ं) के रूप में लिखते हैं, जैसे– संयम, संवाद, संलग्न, संसर्ग, संहार, संरचना, संरक्षण आदि। इन्हें सम्शय, सम्हार, सम्वाद, सम्रचना, सम्लग्न, सम्रक्षण आदि रूप में लिखना सदैव अशुद्ध होता है।
- आनुनासिक शब्दों में यदि 'अ' या 'आ' या 'ऊ' की मात्रा वाले वर्णों में आनुनासिक ध्वनि (ँ) आती है तो उसे हमेशा (ँ) के रूप में ही लिखा जाना चाहिए। जैसे– दाँत, पूँछ, ऊँट, हूँ, पाँच, हाँ, चाँद, हँसी, ढाँचा आदि परन्तु जब वर्ण के साथ अन्य मात्रा हो तो (ँ) के स्थान पर अनुस्वार (ं) का प्रयोग किया जाता है, जैसे– फेंक, नहीं, खींचना, गोंद आदि।
- विराम चिह्नों का प्रयोग न होने पर भी अशुद्धि हो जाती है और अर्थ का अनर्थ हो जाता है। जैसे–

  – रोको, मत जाने दो।

  – रोको मत, जाने दो।

इन दोनों वाक्यों में अल्प विराम के स्थान परिवर्तन से अर्थ बिल्कुल उल्टा हो गया है।

- 'ष' वर्ण केवल षट् (छह) से बने कुछ शब्दों, यथा– षट्कोण, षड़यंत्र आदि के प्रारंभ में ही आता है। अन्य शब्दों के शुरू में 'श' लिखा जाता है। जैसे– शोषण, शासन, शेषनाग आदि।
- संयुक्ताक्षरों में 'ट्' वर्ग से पूर्व में हमेशा 'ष' का प्रयोग किया जाता है, चाहे मूल शब्द 'श' से बना हो, जैसे– सृष्टि, षष्ट, नष्ट, कष्ट, अष्ट, ओष्ठ, कृष्ण, विष्णु आदि।
- 'क्श' का प्रयोग सामान्यतः नक्शा, रिक्शा, नक्श आदि शब्दों में ही किया जाता है, शेष सभी शब्दों में 'क्ष' का प्रयोग किया जाता है। जैसे– रक्षा, कक्षा, क्षमता, सक्षम, शिक्षा, दक्ष आदि।
- 'ज्ञ' ध्वनि के उच्चारण हेतु 'ग्य' लिखित रूप में निम्न शब्दों में ही प्रयुक्त होता है– ग्यारह, योग्य, अयोग्य, भाग्य, रोग से बने शब्द जैसे–आरोग्य आदि में। इनके अलावा अन्य शब्दों में 'ज्ञ' का प्रयोग करना सही होता है, जैसे– ज्ञान, अज्ञात, यज्ञ, विशेषज्ञ, विज्ञान, वैज्ञानिक आदि।
- हिन्दी भाषा सीखने के चार मुख्य सोपान हैं– सुनना, बोलना, पढ़ना व लिखना। हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी है जिसकी प्रधान विशेषता है कि जैसे बोली जाती है वैसे ही लिखी जाती है। अतः शब्द को लिखने से पहले उसकी स्वर–ध्वनि को समझकर लिखना समीचीन होगा। यदि 'ए' की ध्वनि आ रही है तो उसकी मात्रा का प्रयोग करें। यदि 'उ' की ध्वनि आ रही है तो 'उ' की मात्रा का प्रयोग करें।

हिन्दी में अशुद्धियों के विविध प्रकार

शब्द–संरचना तथा वाक्य प्रयोग में वर्तनीगत अशुद्धियों के कारण भाषा दोषपूर्ण हो जाती है। प्रमुख अशुद्धियाँ निम्नलिखित हैं–

1. भाषा (अक्षर या मात्रा) सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
बृटिश	–	ब्रिटिश
त्रगुण	–	त्रिगुण
रिषी	–	ऋषि
बृह्मा	–	ब्रह्मा
बन्ध	–	बँध
पैत्रिक	–	पैतृक
जाग्रती	–	जागृति
स्त्रीयाँ	–	स्त्रियाँ
स्रष्टि	–	सृष्टि
अती	–	अति

टिप्पणी

तैय्यार	–	तैयार
आवश्यकीय	–	आवश्यक
उपरोक्त	–	उपर्युक्त
श्रोत	–	स्रोत
जाइये	–	जाइए
लाइये	–	लाइए
लिये	–	लिए
अनुगृह	–	अनुग्रह
अकाश	–	आकाश
असीस	–	आशीष
देहिक	–	दैहिक
कवियत्रि	–	कवयित्री
द्रष्टि	–	दृष्टि
घनिष्ट	–	घनिष्ठ
व्यवहारिक	–	व्यावहारिक
रात्री	–	रात्रि
प्राप्ती	–	प्राप्ति
सामर्थ	–	सामर्थ्य
एकत्रित	–	एकत्र
ईर्षा	–	ईर्ष्या
पुन्य	–	पुण्य
कृतघ्नी	–	कृतघ्न
बनिता	–	वनिता
निरिक्षण	–	निरीक्षण
पती	–	पति
आक्रष्ट	–	आकृष्ट
सामिल	–	शामिल
मष्तिस्क	–	मस्तिष्क
निसार	–	निःसार
सन्मान	–	सम्मान
हिन्दु	–	हिन्दू

टिप्पणी

गुरू	–	गुरु
दान्त	–	दाँत
चहिए	–	चाहिए
प्रथक	–	पृथक
परिक्षा	–	परीक्षा
षोडषी	–	षोडशी
परीवार	–	परिवार
परीचय	–	परिचय
सौन्दर्यता	–	सौन्दर्य
अज्ञानता	–	अज्ञान
गरीमा	–	गरिमा
समाधी	–	समाधि
बूड़ा	–	बूढ़ा
ऐक्यता	–	एक्य, एकता
पूज्यनीय	–	पूजनीय
पत्नि	–	पत्नी
अतीशय	–	अतिशय
संसारिक	–	सांसारिक
शताब्दि	–	शताब्दी
नीरोग	–	निरोग
दूकान	–	दुकान
दम्पति	–	दम्पती
अन्तर्चेतना	–	अन्तश्चेतना

2. लिंग सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

हिन्दी में लिंग सम्बन्धी अशुद्धियाँ प्रायः दिखाई देती हैं। इस दृष्टि से निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(1) विशेषण शब्दों का लिंग सदैव विशेष्य के समान होता है।

(2) दिनों, महीनों, ग्रहों, पहाड़ों, आदि के नाम पुल्लिंग में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु तिथियों, भाषाओं और नदियों के नाम स्त्रीलिंग में प्रयोग किये जाते हैं।

(3) प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार तथा अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग व्यवहार के अनुसार होता है।

(4) अनेक तत्सम शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं।

टिप्पणी

उदाहरण–

- दही बड़ी अच्छी है। (बड़ा अच्छा)
- आपने बड़ी अनुग्रह की। (बड़ा, किया)
- मेरा कमीज उतार लाओ। (मेरी)
- लड़के और लड़कियाँ चिल्ला रहे हैं। (रही)
- कटोरे में दही जम गई। (गया)
- मेरा ससुराल जयपुर में है। (मेरी)
- महादेवी विदुषी कवि हैं। (कवयित्री)
- आत्मा अमर होता है। (होती)
- उसने एक हाथी जाती हुई देखी। (जाता हुआ देखा)
- मन की मैल काटती है। (का, काटता)
- हाथी का सूंड केले के समान होता है। (की, होती)
- सीताजी वन को गए। (गयीं)
- विद्वान स्त्री (विदुषी स्त्री)
- गुणवान महिला (गुणवती महिला)
- माघ की महीना (माघ का महीना)
- मूर्तिमान् करुणा (मूर्तिमयी करुणा)
- आग का लपट (आग की लपट)
- मेरा शपथ (मेरी शपथ)
- गंगा का धारा (गंगा की धारा)
- चन्द्रमा की मण्डल (चन्द्रमा का मण्डल)।

3. समास सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

दो या दो से अधिक पदों का समास करने पर प्रत्ययों का उचित प्रयोग न करने से जो शब्द बनता है, उसमें कभी–कभी अशुद्धि रह जाती है। जैसे–

अशुद्ध		**शुद्ध**
दिवारात्रि	–	दिवारात्र
निरपराधी	–	निरपराध
ऋषीजन	–	ऋषिजन
प्रणीमात्र	–	प्राणिमात्र
स्वामीभक्त	–	स्वामिभक्त
पिताभक्ति	–	पितृभक्ति

टिप्पणी

महाराजा	–	महाराज
भ्राताजन	–	भ्रातृजन
दुरावस्था	–	दुरवस्था
स्वामीहित	–	स्वामिहित
नवरात्रा	–	नवरात्र

4. संधि सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
उपरोक्त	–	उपर्युक्त
सदोपदेश	–	सदुपदेश
वयवृद्ध	–	वयोवृद्ध
सदेव	–	सदैव
अत्याधिक	–	अत्यधिक
सन्मुख	–	सम्मुख
उधृत	–	उद्धृत
मनहर	–	मनोहर
अधतल	–	अधस्तल
आर्शीवाद	–	आशीर्वाद
दुरावस्था	–	दुरवस्था

5. विशेष्य–विशेषण सम्बन्धी अशुद्धियाँ:

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
पूज्यनीय व्यक्ति	–	पूजनीय व्यक्ति
लाचारवश	–	लाचारीवश
महान् कृपा	–	महती कृपा
गोपन कथा	–	गोपनीय कथा
विद्वान् नारी	–	विदुषी नारी
मान्यनीय मन्त्रीजी	–	माननीय मन्त्रीजी
सन्तोष–चित्त	–	सन्तुष्ट–चित्त
सुखमय शान्ति	–	सुखमयी शान्ति
सुन्दर वनिताएँ	–	सुन्दरी वनिताएँ
महान् कार्य	–	महत्कार्य

टिप्पणी

6. प्रत्यय–उपसर्ग सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
सौन्दर्यता	–	सौन्दर्य
लाघवता	–	लाघव
गौरवता	–	गौरव
चातुर्यता	–	चातुर्य
ऐक्यता	–	ऐक्य
सामर्थ्यता	–	सामर्थ्य
सौजन्यता	–	सौजन्य
औदार्यता	–	औदार्य
मनुष्यत्वता	–	मनुष्यत्व
अभिष्ट	–	अभीष्ट
बेफिजूल	–	फिजूल
मिठासता	–	मिठास
अज्ञानता	–	अज्ञान
भूगौलिक	–	भौगोलिक
इतिहासिक	–	ऐतिहासिक
निरस	–	नीरस

7. वचन सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

1. हिन्दी में बहुत–से शब्दों का प्रयोग सदैव बहुवचन में होता है, ऐसे शब्द हैं– हस्ताक्षर, प्राण, दर्शन, आँसू, होश आदि।
2. वाक्य में 'या', 'अथवा' का प्रयोग करने पर क्रिया एकवचन होती है। लेकिन 'और', 'एवं', 'तथा' का प्रयोग करने पर क्रिया बहुवचन होती है।
3. आदरसूचक शब्दों का प्रयोग सदैव बहुवचन में होता है।

उदाहरणार्थ–

1. दो चादर खरीद लाया। (चादरें)
2. एक चटाइयाँ बिछा दो। (चटाई)
3. मेरा प्राण संकट में है। (मेरे, हैं)
4. आज मैंने महात्मा का दर्शन किया। (के, किये)
5. आज मेरा मामा आये। (मेरे)
6. फूल की माला गूँथो। (फूलों)

7. यह हस्ताक्षर किसका है? (ये, किसके, हैं)
8. विनोद, रमेश और रहीम पढ़ रहा है। (रहे हैं)

अन्य उदाहरण :

अशुद्ध	–	**शुद्ध**
स्त्रीयाँ	–	स्त्रियाँ
मातायों	–	माताओं
नारिओं	–	नारियों
अनेकों	–	अनेक
बहुतों	–	बहुत
मुनिओं	–	मुनियों
सबों	–	सब
विद्यार्थीयों	–	विद्यार्थियों
बन्धुएँ	–	बन्धुओं
दादों	–	दादाओं
सभीओं	–	सभी
नदीओं	–	नदियों

8. कारक सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अ. – राम घर नहीं है।
शु. – राम घर पर नहीं है।
अ. – अपने घर साफ रखो।
शु. – अपने घर को साफ रखो।
अ. – उसको काम को करने दो।
शु. – उसे काम करने दो।
अ. – आठ बजने को पन्द्रह मिनट हैं।
शु. – आठ बजने में पन्द्रह मिनट हैं।
अ. – मुझे अपने काम को करना है।
शु. – मुझे अपना काम करना है।
अ. – यहाँ बहुत से लोग रहते हैं।
शु. – यहाँ बहुत लोग रहते हैं।

टिप्पणी

टिप्पणी

9. शब्द–क्रम सम्बन्धी अशुद्धियाँ :

अ. – वह पुस्तक है पढ़ता।

शु. – वह पुस्तक पढ़ता है।

अ. – आजाद हुआ था यह देश सन् 1947 में।

शु. – यह देश सन् 1947 में आजाद हुआ था।

अ. – 'पृथ्वीराज रासो' रचना चन्द्रवरदाई की है।

शु. – चन्द्रवरदाई की रचना 'पृथ्वीराज रासो' है।

10. वाक्य–रचना सम्बन्धी अशुद्धियाँ एवं सुधार :

1. वाक्य–रचना में कभी विशेषण का विशेष्य के अनुसार उचित लिंग एवं वचन में प्रयोग न करने से या गलत कारक–चिह्न का प्रयोग करने से अशुद्धि रह जाती है।
2. उचित विराम–चिह्न का प्रयोग न करने से अथवा शब्दों को उचित क्रम में न रखने पर भी अशुद्धियाँ रह जाती हैं।
3. अनर्थक शब्दों का अथवा एक अर्थ के लिए दो शब्दों का और व्यर्थ के अव्यय शब्दों का प्रयोग करने से भी अशुद्धि रह जाती है।

उदाहरणार्थ :

(अ.– अशुद्ध, शु. – शुद्ध)

अ. – सीता राम की स्त्री थी।

शु. – सीता राम की पत्नी थी।

अ. – मंत्रीजी को एक फूलों की माला पहनाई।

शु. – मंत्रीजी को फूलों की एक माला पहनाई।

अ. – महादेवी वर्मा श्रेष्ठ कवि थीं।

शु. – महादेवी वर्मा श्रेष्ठ कवयित्री थीं।

अ. – शत्रु मैदान से दौड़ खड़ा हुआ था।

शु. – शत्रु मैदान से भाग खड़ा हुआ।

अ. – मेरे भाई को मैंने रुपये दिए।

शु. – अपने भाई को मैंने रुपये दिये।

अ. – यह किताब बड़ी छोटी है।

शु. – यह किताब बहुत छोटी है।

अ. – उपरोक्त बात पर मनन कीजिए।

शु. – उपर्युक्त बात पर मनन करिये।

अ. – सभी छात्रों में रमेश चतुरतर है।

शु. – सभी छात्रों में रमेश चतुरतम है।

टिप्पणी

अ. – मेरा सिर चक्कर काटता है।

शु. – मेरा सिर चकरा रहा है।

अ. – शायद आज सुरेश जरूर आयेगा।

शु. – शायद आज सुरेश आयेगा।

अ. – कृपया हमारे घर पधारने की कृपा करें।

शु. – हमारे घर पधारने की कृपा करें।

अ. – उसके पास अमूल्य अँगूठी है।

शु. – उसके पास बहुमूल्य अँगूठी है।

अ. – गाँव में कुत्ते रात भर चिल्लाते हैं।

शु. – गाँव में कुत्ते रात भर भौंकते हैं।

अ. – पेड़ों पर कोयल बोल रही है।

शु. – पेड़ पर कोयल कूक रही है।

अ. – वह प्रातःकाल के समय घूमने जाता है।

शु. – वह प्रातःकाल घूमने जाता है।

अ. – जज ने हत्यारे को मृत्यु दण्ड की सजा दी।

शु. – जज ने हत्यारे को मृत्यु दण्ड दिया।

अ. – वह विख्यात डाकू था।

शु. – वह कुख्यात डाकू था।

अ. – वह निरपराधी था।

शु. – वह निरपराध था।

अ. – आप चाहो तो काम बन जायेगा।

शु. – आप चाहें तो काम बन जायेगा।

अ. – माँ–बच्चा दोनों बीमार पड़ गयीं।

शु. – माँ–बच्चा दोनों बीमार पड़ गए।

अ. – बेटी पराये घर का धन होता है।

शु. – बेटी पराये घर का धन होती है।

अ. – भक्तियुग का काल स्वर्णयुग माना जाता है।

शु. – भक्ति–काल स्वर्ण युग माना गया है।

अ. – बचपन से मैं हिन्दी बोली हूँ।

शु. – बचपन से मैं हिन्दी बोलती हूँ।

अ. – वह मुझे देखा तो घबरा गया।

टिप्पणी

शु. – उसने मुझे देखा तो घबरा गया।

अ. – अस्तबल में घोड़ा चिंघाड़ रहा है।

शु. – अस्तबल में घोड़ा हिनहिना रहा है।

अ. – पिंजरे में शेर बोल रहा है।

शु. – पिंजरे में शेर दहाड़ रहा है।

अ. – जंगल में हाथी दहाड़ रहा है।

शु. – जंगल में हाथी चिंघाड़ रहा है।

अ. – कृपया यह पुस्तक मेरे को दीजिए।

शु. – यह पुस्तक मुझे दीजिए।

अ. – बाजार में एक दिन का अवकाश उपेक्षित है।

शु. – बाजार में एक दिन का अवकाश अपेक्षित है।

अ. – छात्र ने कक्षा में पुस्तक को पढ़ा।

शु. – छात्र ने कक्षा में पुस्तक पढ़ी।

अ. – आपसे सदा अनुग्रहित रहा हूँ।

शु. – आपसे सदा अनुगृहीत हूँ।

अ. – घर में केवल मात्र एक चारपाई है।

शु. – घर में एक चारपाई है।

अ. – माली ने एक फूलों की माला बनाई।

शु. – माली ने फूलों की एक माला बनाई।

अ. – वह चित्र सुन्दरतापूर्ण है।

शु. – वह चित्र सुन्दर है।

अ. – कुत्ता एक स्वामी भक्त जानवर है।

शु. – कुत्ता स्वामिभक्त पशु है।

अ. – शायद आज आँधी अवश्य आयेगी।

शु. – शायद आज आँधी आये।

अ. – दिनेश सायंकाल के समय घूमने जाता है।

शु. – दिनेश सायंकाल घूमने जाता है।

अ. – यह विषय बड़ा छोटा है।

शु. – यह विषय बहुत छोटा है।

अ. – अनेकों विद्यार्थी खेल रहे हैं।

शु. – अनेक विद्यार्थी खेल रहे हैं।

टिप्पणी

अ. – वह चलता–चलता थक गया।

शु. – वह चलते–चलते थक गया।

अ. – मैंने हस्ताक्षर कर दिया है।

शु. – मैंने हस्ताक्षर कर दिये हैं।

अ. – लता मधुर गायक है।

शु. – लता मधुर गायिका है।

अ. – महात्माओं के सदोपदेश सुनने योग्य होते हैं।

शु. – महात्माओं के सदुपदेश सुनने योग्य होते हैं।

अ. – उसने न्यायाधीश को निवेदन किया।

शु. – उसने न्यायाधीश से निवेदन किया।

अ. – हम ऐसा ही हूँ।

शु. – मैं ऐसा ही हूँ।

अ. – पेड़ों पर पक्षी बैठा है।

शु. – पेड़ पर पक्षी बैठा है। या पेड़ों पर पक्षी बैठे हैं।

अ. – हम हमारी कक्षा में गए।

शु. – हम अपनी कक्षा में गए।

अ. – आप खाये कि नहीं?।

शु. – आपने खाया कि नहीं?।

अ. – वह गया।

शु. – वह चला गया।

अ. – हम चाय अभी–अभी पिया है।

शु. – हमने चाय अभी–अभी पी है।

अ. – इसका अन्तःकरण अच्छा है।

शु. – इसका अन्तःकरण शुद्ध है।

अ. – शेर को देखते ही उसका होश उड़ गया।

शु. – शेर को देखते ही उसके होश उड़ गये।

अ. – वह साहित्यिक पुरुष है।

शु. – वह साहित्यकार है।

अ. – रामायण सभी हिन्दू मानते हैं।

शु. – रामायण सभी हिन्दुओं को मान्य है।

अ. – आज ठण्डी बर्फ मँगवानी चाहिए।

शु. – आज बर्फ मँगवानी चाहिए।

अ. – मैच को देखने चलो।

शु. – मैच देखने चलो।

अ. – मेरा पिताजी आया है।

शु. – मेरे पिताजी आये हैं।

सामान्यतः अशुद्धि किए जाने वाले प्रमुख शब्द :

अशुद्ध		शुद्ध
अतिथी	–	अतिथि
अतिश्योक्ति	–	अतिशयोक्ति
अमावश्या	–	अमावस्या
अनुगृह	–	अनुग्रह
अन्तर्ध्यान	–	अन्तर्धान
अन्ताक्षरी	–	अन्त्याक्षरी
अनूजा	–	अनुजा
अन्धेरा	–	अँधेरा
अनेकों	–	अनेक
अनाधिकार	–	अनधिकार
अधिशाषी	–	अधिशासी
अन्तरगत	–	अन्तर्गत
अलोकिक	–	अलौकिक
अगम	–	अगम्य
अहार	–	आहार
अजीविका	–	आजीविका
अहिल्या	–	अहल्या
अपरान्ह	–	अपराह्ण
अत्याधिक	–	अत्यधिक
अभिशापित	–	अभिशप्त
अंतेष्टि	–	अंत्येष्टि
अकस्मात	–	अकस्मात्
अर्थात	–	अर्थात्
अनूपम	–	अनुपम

टिप्पणी

अंतर्रात्मा	–	अंतरात्मा
अन्विती	–	अन्विति
अध्यावसाय	–	अध्यवसाय
आभ्यंतर	–	अभ्यंतर
अन्वीष्ट	–	अन्विष्ट
आखर	–	अक्षर
आवाहन	–	आह्वान
आयू	–	आयु
आदेस	–	आदेश
अभ्यारण्य	–	अभयारण्य
अनुग्रहीत	–	अनुगृहीत
अहोरात्रि	–	अहोरात्र
अक्षुण्य	–	अक्षुण्ण
अनुसूया	–	अनुसूर्या
अक्षोहिणी	–	अक्षौहिणी
अँकुर	–	अंकुर
आहूति	–	आहुति
आधीन	–	अधीन
आशिर्वाद	–	आशीर्वाद
आद्र	–	आर्द्र
आरोग	–	आरोग्य
आक्रषक	–	आकर्षक
इष्ठ	–	इष्ट
इर्षया	–	ईर्ष्या
इस्कूल	–	स्कूल
इतिहासिक	–	ऐतिहासिक
इक्षा	–	ईक्षा
इप्सित	–	ईप्सित
इकठ्ठा	–	इकट्ठा
इन्दू	–	इन्दु
ईमारत	–	इमारत

टिप्पणी

ऐच्छिक	–	ऐच्छिक
उज्वल	–	उज्ज्वल
उतरदाई	–	उत्तरदायी
उतरोत्तर	–	उत्तरोत्तर
उध्यान	–	उद्यान
उपरोक्त	–	उपर्युक्त
उपवाश	–	उपवास
उदहारण	–	उदाहरण
उलंघन	–	उल्लंघन
उपलक्ष	–	उपलक्ष्य
उन्नतिशाली	–	उन्नतिशील
उच्छवास	–	उच्छ्वास
उज्जयनी	–	उज्जयिनी
उदीप्त	–	उद्दीप्त
ऊधम	–	उद्यम
उछिष्ट	–	उच्छिष्ट
ऊषा	–	उषा
ऊखली	–	ओखली
उष्मा	–	ऊष्मा
उर्मि	–	ऊर्मि
उरु	–	उरू
उहापोह	–	ऊहापोह
ऊंचाई	–	ऊँचाई
ऊख	–	ईख
रिधि	–	ऋद्धि
एक्य	–	ऐक्य
एतरेय	–	ऐतरेय
एकत्रित	–	एकत्र
एश्वर्य	–	ऐश्वर्य
ओषध	–	औषध
ओचित्य	–	औचित्य

टिप्पणी

औधोगिक	–	औद्योगिक
कनिष्ट	–	कनिष्ठ
कलिन्दी	–	कालिन्दी
करूणा	–	करुणा
कविन्द्र	–	कवीन्द्र
कवियत्री	–	कवयित्री
कलीदास	–	कालिदास
कार्रवाई	–	कार्यवाही
केन्द्रिय	–	केन्द्रीय
कैलास	–	कैलाश
किरन	–	किरण
किर्या	–	क्रिया
किँचित	–	किंचित्
कीर्ती	–	कीर्ति
कुआ	–	कुँआ
कुटम्ब	–	कुटुम्ब
कुतुहल	–	कौतूहल
कुशाण	–	कुषाण
कुरूति	–	कुरीति
कुसूर	–	कसूर
केकयी	–	कैकेयी
कोतुक	–	कौतुक
कोमुदी	–	कौमुदी
कोशल्या	–	कौशल्या
कोशल	–	कौशल
क्रति	–	कृति
क्रतार्थ	–	कृतार्थ
क्रतज्ञ	–	कृतज्ञ
कृत्घन	–	कृतघ्न
क्रत्रिम	–	कृत्रिम
खेतीहर	–	खेतिहर

टिप्पणी

गरिष्ट	–	गरिष्ठ
गणमान्य	–	गण्यमान्य
गत्यार्थ	–	गत्यर्थ
गुरू	–	गुरु
गूंगा	–	गूँगा
गोप्यनीय	–	गोपनीय
गूंज	–	गूँज
गौरवता	–	गौरव
गृहणी	–	गृहिणी
ग्रसित	–	ग्रस्त
गृहता	–	ग्रहीता
गीतांजली	–	गीतांजलि
गत्यावरोध	–	गत्यवरोध
गृहस्थि	–	गृहस्थी
गर्भिनी	–	गर्भिणी
घन्टा	–	घण्टा, घंटा
घबड़ाना	–	घबराना
चन्चल	–	चंचल, चञ्चल
चातुर्यता	–	चातुर्य, चतुराई
चाहरदीवारी	–	चहारदीवारी, चारदीवारी
चेत्र	–	चैत्र
तदानुकूल	–	तदनुकूल
तत्त्वाधान	–	तत्त्वावधान
तनखा	–	तनख्वाह
तरिका	–	तरीका
तखत	–	तख्त
तड़िज्योति	–	तड़िज्ज्योति
तिलांजली	–	तिलांजलि
तीर्थकंर	–	तीर्थंकर
त्रसित	–	त्रस्त
तत्व	–	तत्त्व

टिप्पणी

दंपति	–	दंपती
दारिद्रयता	–	दारिद्रय, दरिद्रता
दुख	–	दुःख
दृष्टा	–	द्रष्टा
देहिक	–	दैहिक
दोगुना	–	दुगुना
धनाड्य	–	धनाढ्य
धुरंदर	–	धुरंधर
धैर्यता	–	धैर्य
ध्रष्ट	–	धृष्ट
झौंका	–	झोंका
तदन्तर	–	तदनन्तर
जरुरत	–	जरूरत
दयालू	–	दयालु
धुम्र	–	धूम्र
दुरुह	–	दुरूह
धोका	–	धोखा
नैसृगिक	–	नैसर्गिक
नाइका	–	नायिका
नर्क	–	नरक
संगृह	–	संग्रह
गोतम	–	गौतम
झुंपड़ी	–	झोंपड़ी
तस्तरी	–	तश्तरी
छुद्र	–	क्षुद्र
छमा, समा	–	क्षमा
तोल	–	तौल
जजर्र	–	जर्जर
जागृत	–	जाग्रत
श्रृगाल	–	शृगाल
श्रृंगार	–	शृंगार

टिप्पणी

गिध — गिद्ध
चाहिये — चाहिए
तदोपरान्त — तदुपरान्त
क्षुदा — क्षुधा
चिन्ह — चिह्न
तिथी — तिथि
तैय्यार — तैयार
धेनू — धेनु
नटिनी — नटनी
बन्धू — बन्धु
द्वन्द — द्वन्द्व
निरोग — नीरोग
निश्कलंक — निष्कलंक
निरव — नीरव
नैपथ्य — नेपथ्य
परिस्थिती — परिस्थिति
परलोकिक — पारलौकिक
नीतीज्ञ — नीतिज्ञ
नृसंस — नृशंस
न्यायधीश — न्यायाधीश
परसुंराम — परशुराम
बढ़ाई — बड़ाई
प्रहलाद — प्रह्लाद
बुद्धवार — बुधवार
पुन्य — पुण्य
बृज — ब्रज
पिपिलिका — पिपीलिका
बैदेही — वैदेही
पुर्नविवाह — पुनर्विवाह
भीमसैन — भीमसेन
मच्छिका — मक्षिका

लखनउ — लखनऊ
मुहुर्त — मुहूर्त
निरसता — नीरसता
बुड़ा — बूढ़ा
परमेस्वर — परमेश्वर
बहुब्रीह — बहुब्रीहि
नेत्रत्व — नेतृत्व
भीत्ति — भित्ति
प्रथक — पृथक
मंत्रि — मन्त्री
पर्गल्भ — प्रगल्भ
ब्रहमान्ड — ब्रह्माण्ड
महात्म्य — माहात्म्य
ब्राम्हण — ब्राह्मण
मैथलीशरण — मैथिलीशरण
बरात — बारात
व्यावहार — व्यवहार
भेरव — भैरव
भगीरथी — भागीरथी
भेषज — भैषज
मंत्रीमंडल — मन्त्रिमण्डल
मध्यस्त — मध्यस्थ
यसोदा — यशोदा
विरहणी — विरहिणी
यायाबर — यायावर
मृत्यूलोक — मृत्युलोक
राज्यभिषेक — राज्याभिषेक
युधिष्ठर — युधिष्ठिर
रितीकाल — रीतिकाल
यौवनावस्था — युवावस्था
रचियता — रचयिता

टिप्पणी

टिप्पणी

लघूत्तर	–	लघुत्तर
रोहीताश्व	–	रोहिताश्व
वनोषध	–	वनौषध
वधु	–	वधू
व्याभिचारी	–	व्यभिचारी
सूश्रुषा	–	शुश्रूषा
सौजन्यता	–	सौजन्य
संक्षिप्तिकरण	–	संक्षिप्तीकरण
संसदसदस्य	–	संसत्सदस्य
सतगुण	–	सद्गुण
सम्मती	–	सम्मति
संघठन	–	संगठन
संतती	–	संतति
समिक्षा	–	समीक्षा
सौंदर्यता	–	सौंदर्य / सुन्दरता
सौहार्द्र	–	सौहार्द
सहश्र	–	सहस्र
संगृह	–	संग्रह
संसारिक	–	सांसारिक
सत्मार्ग	–	सन्मार्ग
सदृश्य	–	सदृश
सदोपदेश	–	सदुपदेश
समरथ	–	समर्थ
स्वस्थ्य	–	स्वास्थ्य / स्वस्थ
स्वास्तिक	–	स्वस्तिक
समबंध	–	संबंध
सन्यासी	–	संन्यासी
सरोजनी	–	सरोजिनी
संपति	–	संपत्ति
समुंदर	–	समुद्र
साधू	–	साधु

समाधी	–	समाधि
सुहागन	–	सुहागिन
सप्ताहिक	–	साप्ताहिक
सानंदपूर्वक	–	आनंदपूर्वक, सानंद
समाजिक	–	सामाजिक
स्त्राव	–	स्राव
स्त्रोत	–	स्रोत
सारथी	–	सारथि
सुई	–	सूई
सुसुप्ति	–	सुषुप्ति
नयी	–	नई
नही	–	नहीं
निरुत्साहित	–	निरुत्साह
निस्वार्थ	–	निःस्वार्थ
निराभिमान	–	निरभिमान
निरानुनासिक	–	निरनुनासिक
निरूत्तर	–	निरुत्तर
नींबू	–	नीबू
न्यौछावर	–	न्योछावर
नबाब	–	नवाब
निहारिका	–	नीहारिका
निशंग	–	निषंग
नुपुर	–	नूपुर
परिणित	–	परिणति, परिणीत
परिप्रेक्ष	–	परिप्रेक्ष्य
पश्चात्ताप	–	पश्चाताप
परिषद	–	परिषद्
पुनरवलोकन	–	पुनरावलोकन
पुनरोक्ति	–	पुनरुक्ति
पुनरोत्थान	–	पुनरुत्थान
पितावत्	–	पितृवत

टिप्पणी

टिप्पणी

पक्षि	—	पक्षी
पूर्वान्ह	—	पूर्वाह्न
पुज्य	—	पूज्य
पूज्यनीय	—	पूजनीय
प्रगती	—	प्रगति
प्रज्वलित	—	प्रज्ज्वलित
प्रकृती	—	प्रकृति
प्रतीलिपि	—	प्रतिलिपि
प्रतिछाया	—	प्रतिच्छाया
प्रमाणिक	—	प्रामाणिक
प्रसंगिक	—	प्रासंगिक
प्रदर्शिनी	—	प्रदर्शनी
प्रियदर्शनी	—	प्रियदर्शिनी
प्रत्योपकार	—	प्रत्युपकार
प्रविष्ठ	—	प्रविष्ट
पृष्ट	—	पृष्ठ
प्रगट	—	प्रकट
प्राणीविज्ञान	—	प्राणिविज्ञान
पातंजली	—	पतंजलि
पौरुषत्व	—	पौरुष
पौर्वात्य	—	पौरस्त्य
बजार	—	बाजार
वाल्मीक	—	वाल्मीकि
बेइमान	—	बेईमान
ब्रहस्पति	—	बृहस्पति
भरतरी	—	भर्तृहरि
भर्तसना	—	भर्त्सना
भागवान	—	भाग्यवान
भानू	—	भानु
भारवी	—	भारवि
भाषाई	—	भाषायी

टिप्पणी

भिज्ञ	—	अभिज्ञ
भैय्या	—	भैया
मनुषत्व	—	मनुष्यत्व
मरीचका	—	मरीचिका
महत्व	—	महत्त्व
मँहगाई	—	मंहगाई
महत्त्वाकांक्षा	—	महत्वाकांक्षा
मालुम	—	मालूम
मान्यनीय	—	माननीय
मुकंद	—	मुकुंद
मुनी	—	मुनि
मुहल्ला	—	मोहल्ला
माताहीन	—	मातृहीन
मूलतयः	—	मूलतः
मोहर	—	मुहर
योगीराज	—	योगिराज
यशगान	—	यशोगान
रविन्द्र	—	रवीन्द्र
रागनी	—	रागिनी
रुठना	—	रूठना
रोहीत	—	रोहित
लोकिक	—	लौकिक
वस्तुयें	—	वस्तुएं
वाँछनीय	—	वांछनीय
वित्तेषणा	—	वित्तैष्णा
व्रतांत	—	वृतांत
वापिस	—	वापस
वासुकी	—	वासुकि
विधार्थी	—	विद्यार्थी
विदेशिक	—	वैदेशिक
विधी	—	विधि

टिप्पणी

वांगमय	–	वाङ्मय
वरीष्ठ	–	वरिष्ठ
विस्वास	–	विश्वास
विषेश	–	विशेष
विछिन्न	–	विच्छिन्न
विशिष्ठ	–	विशिष्ट
वशिष्ट	–	वशिष्ठ, वसिष्ठ
वैश्या	–	वेश्या
वेषभूषा	–	वेशभूषा
व्यंग	–	व्यंग्य
व्यवहरित	–	व्यवहृत
शारीरीक	–	शारीरिक
विसराम	–	विश्राम
शांती	–	शांति
शारांस	–	सारांश
शाषकीय	–	शासकीय
श्रोत	–	स्रोत
श्राप	–	शाप
शाबास	–	शाबाश
शर्बत	–	शरबत
शंशय	–	संशय
सिरीष	–	शिरीष
शक्तिशील	–	शक्तिशाली
शार्दुल	–	शार्दूल
शौचनीय	–	शोचनीय
शुरूआत	–	शुरुआत
शुरु	–	शुरू
श्राद	–	श्राद्ध
श्रृंग	–	शृंग
श्रृंखला	–	शृंखला
श्रृद्धा	–	श्रद्धा

टिप्पणी

शुद्धी	–	शुद्धि
श्रीमति	–	श्रीमती
षटानन	–	षडानन
सरीता	–	सरिता
सन्सार	–	संसार
संश्लिष्ठ	–	संश्लिष्ट
हरितिमा	–	हरीतिमा
ह्दय	–	हृदय
हिरन	–	हरिण
हितेषी	–	हितैषी
हिंदु	–	हिंदू
ऋषिकेश	–	हृषिकेश
हेतू	–	हेतु।

4.7 शब्द–अर्थ संबंध

भाषा का समस्त कार्य व्यापार शब्द के माध्यम से चलता है। शब्द भाषा की सबसे सार्थक इकाई होती है। शब्द के बिना भाषा का निर्माण संभव ही नहीं है। वर्णों के मेल से शब्द बनते हैं। शब्द की उत्पत्ति समाज द्वारा होती है। विभिन्न शब्दों के मेल और उसमें उपसर्ग एवं प्रत्ययों के योग के द्वारा भी नये शब्द बनाये जाते हैं। कामता प्रसाद गुरु ने शब्द की परिभाषा इन शब्दों में दी है : 'एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।'

'काम' एक शब्द है जिसका निर्माण 'का' और 'म' अक्षरों के मेल से हुआ है। 'काम' शब्द से कार्य करने का सार्थक अर्थ निकल रहा है इसलिए इसे शब्द कहेंगे। कई बार ऐसा भी होता है कि दो अक्षरों का मेल तो हो लेकिन उससे कोई अर्थ ही न निकले। उदाहरण के लिए 'प', 'थ' और 'म' अक्षरों के मेल से 'पथम' शब्द बना लेकिन हिन्दी भाषा में इसका कोई अर्थ नहीं है तो इसे शब्द नहीं मान सकते। मतलब यह कि शब्द की सार्थकता तभी है जब उससे कोई अर्थ निकले। अर्थ के बिना शब्द का अस्तित्व ही नहीं है।

शब्द और अर्थ के संबंध पर प्राचीन काल से ही विचार हो रहा है। शब्द मूलतः एक ध्वन्यात्मक संकेत होता है जो किसी वस्तु, भाव या विचार को प्रकट करता है। शब्द जिस वस्तु, भाव या विचार को प्रकट करता है वही उसका अर्थ होता है। अर्थात् शब्द के द्वारा जो प्रतीति होती है, उसे अर्थ कहते हैं। शब्द और अर्थ के संबंध के विषय में निम्न बातें कही जा सकती हैं–

टिप्पणी

1. शब्द और अर्थ का संबंध अटूट होता है। अर्थ के अभाव में शब्द की कोई महत्ता नहीं है। शब्द अमूर्त अर्थ का मूर्त रूप होता है। शब्द यदि शरीर है तो अर्थ उसकी आत्मा है।
2. किसी शब्द से अर्थ की उत्पत्ति इन्द्रियों के माध्यम से होती है। जैसे हम 'घोड़ा' शब्द का उच्चारण करते हैं तो उससे एक विशेष पशु का बोध होता है। इस पशु को हमने अपनी आँखों से देखा होता है या किसी अन्य व्यक्ति या स्त्रोत द्वारा उसका विवरण सुना होता है। 'घोड़ा' शब्द का उच्चारण होते ही हमारी चेतना में उस पशु का बिम्ब बन जाता है और हम उसका अर्थ ग्रहण कर लेते हैं।
3. शब्द से अर्थ की प्रतीति दो प्रकार से होती है– आत्मप्रत्यक्ष और परप्रत्यक्ष। जिस वस्तु को हमने स्वयं देखा है और उसके लिए निर्धारित शब्द के उच्चारण से जिस अर्थ की प्रतीति होती है उसे आत्मप्रत्यक्ष कहते हैं। जिस शब्द के अर्थ की प्रतीति के लिए हमें दूसरों के ज्ञान पर निर्भर होना पड़ता है उसे परप्रत्यक्ष कहते हैं। जैसे हम कभी अमेरिका नहीं गये लेकिन टेलीविजन के द्वारा हमने उसे देखा है। तो 'अमेरिका' कहने से जिस अर्थ की प्रतीति होती है उसे परप्रत्यक्ष कहेंगे।
4. शब्द और अर्थ के बीच का संबंध स्थायी नहीं बल्कि यादृच्छिक होता है। 'गाय' कहने से एक खास किस्म के चौपाया जानवर का बोध होता है। 'गाय' से एक खास जानवर का बोध होना हमारी इच्छा पर निर्भर करता है। यदि कल से हम तय कर लें कि 'गाय' शब्द का अर्थ रेल होगा तो आगे से वही मतलब निकलेगा। मतलब यह कि शब्द के साथ अर्थ का स्थायी संबंध नहीं होता यह बदलता रहता है। प्राचीन समय में 'असुर' शब्द का अर्थ देवता था लेकिन आज इस शब्द का अर्थ राक्षस है।
5. शब्द में जितना अर्थ होता है जरुरी नहीं है कि उससे उतना ही अर्थ निकले। कई बार ऐसा होता है कि एक ही शब्द से कई अर्थ निकलते हैं। वाक्य में प्रयोग के अनुसार शब्द के अर्थ का विस्तार होता है। उदाहरण के लिए 'गदहा' शब्द एक जानवर के लिए प्रयुक्त होता है लेकिन जब हम किसी को कहते हैं कि 'तुम गदहा हो' तब हमारा मतलब किसी व्यक्ति को जानवर कहना नहीं होता है। इसका अर्थ है कि 'तुम मूर्ख हो'।
6. किसी एक वस्तु की प्रतीति के लिए एक ही शब्द नहीं होता। एक वस्तु के लिए कई पर्यायवाची शब्द हो सकते हैं। उदाहरण के लिए 'पानी' को 'जल' भी कहते हैं।

4.8 विलोम शब्द

ऊपर हमने शब्द और अर्थ के बीच के संबंध का विस्तृत अध्ययन किया। हम जानते हैं कि शब्द और उसके अर्थ का निर्माण समाज के बीच होता है। समाज में किसी वस्तु, भाव या विचार के मूल रूप के साथ–साथ उसका विपरीत रूप भी होता है। जैसे यदि 'सुख' है तो उसके साथ 'दुख' भी है। यदि 'मीठा' है तो उसके साथ 'तीखा' भी है। 'विलोम' शब्द का अर्थ है 'उल्टा' या 'विपरीत'। किसी शब्द से प्रकट होने वाले अर्थ का विपरीत अर्थ प्रकट

टिप्पणी

करने वाले शब्द को 'विलोम शब्द' कहते हैं। जैसे 'जन्म' शब्द का विलोम शब्द 'मृत्यु' होगा। यहाँ यह भी ध्यान रखने की बात है कि दो विलोम शब्द एक–दूसरे का विलोम होते हैं। जैसे यदि 'जन्म' का विलोम शब्द 'मृत्यु' है तो 'मृत्यु' शब्द का विलोम शब्द 'जन्म' होगा।

विलोम शब्दों के निर्धारण के दौरान यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि संज्ञा शब्द का विलोम संज्ञा शब्द ही होगा विशेषण शब्द नहीं। जैसे 'आग' शब्द का विलोम 'पानी' होगा। अब 'आग' शब्द से जलने का भाव प्रकट हो रहा है तो उसका विलोम 'शीतलता' नहीं हो सकता। इसी प्रकार विशेषण शब्दों का विलोम विशेषण ही होगा संज्ञा नहीं।

हिन्दी भाषा के कुछ प्रमुख शब्दों के विलोम नीचे दिये जा रहे हैं :

शब्द	विलोम शब्द
आरंभ	अंत
आलोक	अंधकार
आयात	निर्यात
इष्ट	अनिष्ट
इच्छा	अनिच्छा
ईश्वर	अनीश्वर
उन्नति	अवनति
उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण
उपकार	अपकार
उत्कृष्ट	निकृष्ट
उतार	चढ़ाव
उचित	अनुचित
अभ्यंतर	बाह्य
उपयोगी	अनुपयोगी
उत्तर	प्रश्न, दक्षिण
एकत्र	सर्वत्र
एकांगी	सर्वांगी
एक	अनेक
ऐच्छिक	अनिवार्य
कठोर	मुलायम
मान	अपमान
आशा	निराशा
आवश्यक	अनावश्यक

टिप्पणी

आकाश	पाताल
आदि	अंत
आय	व्यय
आकर्षण	विकर्षण
आज्ञा	अवज्ञा
आस्तिक	नास्तिक
आदान	प्रदान
आदर	निरादर
आग	पानी
अनुरक्ति	विरक्ति
अनुराग	विराग
अमीर	गरीब
अर्थ	अनर्थ
अस्त	उदय
अनुकूल	प्रतिकूल
अपेक्षा	उपेक्षा

4.9 पर्यायवाची शब्द

शब्द और अर्थ के संबंध पर विचार करने के दौरान हमने जाना कि इनके बीच का संबंध स्थायी न होकर यादृच्छिक होता है। यदि शब्द और अर्थ के बीच का संबंध स्थायी होता तो किसी एक वस्तु, भाव या विचार के लिए एक ही शब्द होता। चूँकि यह रिश्ता मानव मन की सामूहिक चेतना पर निर्भर करता है इसलिए किसी एक वस्तु या विचार के लिए कई शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे 'कपड़ा' को हम 'वस्त्र' भी कहते हैं और 'अम्बर' भी। यहाँ 'कपड़ा', 'वस्त्र' और 'अम्बर' समान अर्थ प्रकट करते हैं अतः इन्हें पर्यायवाची शब्द कहेंगे। 'पर्याय' का तात्पर्य है समान अर्थ वाला। जिन शब्दों के अर्थ में समानता हो उन्हें पर्यायवाची शब्द कहते हैं।

जो भाषा जितनी प्राचीन और समृद्ध होती है उसमें उतने ही ज्यादा पर्यायवाची शब्द होते हैं। ये शब्द किसी भी भाषा के सौन्दर्य को बढ़ाने में काफी मददगार होते हैं। यदि हम किसी भाव के लिए बार–बार एक ही शब्द का प्रयोग करें तो पाठक को बोरियत होगी। पर्यायवाची शब्दों के द्वारा हमें अलग–अलग शब्दों के प्रयोग का विकल्प उपलब्ध होता है जिससे हमारी अभिव्यक्ति निखरती है। किसी भाषा पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए हमें अधिक–से–अधिक पर्यायवाची शब्दों की जानकारी रखनी चाहिए।

पर्यायवाची शब्दों के संबंध में यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि प्रत्येक पर्यायवाची शब्द बिल्कुल समान अर्थ की अभिव्यंजना नहीं करते। प्रत्येक शब्द का निश्चित अर्थ होता

टिप्पणी

है जो किसी अन्य शब्द द्वारा प्रकट करना कठिन है। 'कमल' शब्द का पर्यायवाची शब्द है 'जलज' और 'पंकज'। अब यहाँ जल में पैदा होने वाली हर वस्तु को 'जलज' और 'पंक' अर्थात 'कीचड़' में जनमने वाली प्रत्येक वस्तु को 'पंकज' कहा जाता है। 'कमल' एक खास फूल को कहते हैं। चूँकि यह 'जल' और 'पंक' में पैदा होता है इसलिए इसे 'जलज' और 'पंकज' भी कहते हैं। तात्पर्य यह कि पर्यायवाची शब्दों के अर्थ लगभग समान होते हैं लेकिन उनके सूक्ष्म अर्थ भिन्न–भिन्न भी हो सकते हैं।

जिन शब्दों के अर्थ में समानता होती है, उन्हें समानार्थक या पर्यायवाची शब्द कहते है। हिन्दी भाषा में एक शब्द के समान अर्थ वाले कई शब्द हमें मिल जाते है, जैसे –

पहाड़ – पर्वत, अचल, भूधर।

ये शब्द पर्यायवाची कहलाते है। इन शब्दों के अर्थ में समानता होती है, लेकिन प्रत्येक शब्द की अपनी विशेषता होती है। पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करते हुए विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। कुछ पर्यायवाची शब्द यहाँ दिए जा रहे हैं –

अंधकार – तिमिर, अँधेरा, तम।
आग – अग्नि, अनल, पावक, दहन, ज्वलन, धूमकेतु।
अच्छा – उचित, शोभन, उपयुक्त, शुभ, सौम्य।
अजेय – अजित, अपराजित, अपराजेय।
अतिथि – पाहुन, आगंतुक, अभ्यागत, मेहमान।
अनुचर – नौकर, दास, सेवक, परिचारक।
अनुपम – अनूठा, अनोखा, अपूर्व, निराला, अभूतपूर्व।
अन्य – पृथक, और, भिन्न, दूसरा।
अनाज – अन्न, धान्य।
अरण्य – विपिन, वन, कानन, कान्तार, जंगल।
आभूषण – विभूषण, भूषण, गहना, अलंकार।
आज्ञा – हुक्म, आदेश, निर्देश।
अमृत – सुधा, अमिय, पीयूष, सोम, अमी।
असुर – दैत्य, दानव, राक्षस, निशाचर, रजनीचर, दनुज।
अश्व – वाजि, घोड़ा, घोटक, हय, तुरंग।
आम – रसाल, आम्र, अमृतफल।
अंहकार – गर्व, अभिमान, दर्प, मद, घमंड।
आँख – लोचन, नयन, नेत्र, चक्षु, दृग, विलोचन, दृष्टि।
आकाश – नभ, गगन, अम्बर, व्योम, अनन्त, आसमान।
आनंद – हर्ष, सुख, आमोद, मोद, प्रमोद, उल्लास।
आश्रम – कुटी, विहार, मठ, संघ, अखाड़ा।

टिप्पणी

आंसू – नेत्रजल, नयनजल, चक्षुजल, अश्रु।
इंद्र – देवराज, सुरेन्द्र, सुरपति, अमरेश, देवेन्द्र, सुरराज, सुरेश।
इन्द्राणी – इंद्रवधु, शची।
ईश्वर – भगवान, परमेश्वर, जगदीश्वर, विधाता।
इच्छा – अभिलाषा, चाह, कामना, लालसा, मनोरथ, आकांक्षा।
उन्नति – प्रगति, विकास, उत्कर्ष, अभ्युदय, उत्थान, वृद्धि।
उत्साह – आवेग, जोश, उमंग।
उद्यान – बाग, कुसुमाकर, वाटिका, उपवन, बगीचा।
ओंठ – ओष्ठ, अधर, होंठ।
कमल – पद्म, पंकज, नीरज, सरोज, जलज।
कल – सुन्दर, अगला दिन, बीता हुआ दिन, मशीन, कोमल, सुहावना।
कपड़ा – चीर, पट, वसन, अम्बर, वस्त्र।
कनक – गेंहू का आटा, स्वर्ण, धतूरा, सोना।
कृषक – हलवाहा, किसान, कृषिजीवी, खेतिहर।
कान – श्रवण, श्रुतिपट, कर्ण, श्रवणेंद्रिय।
कोमल – नाजुक, नरम, मृदु, सुकुमार, मुलायम।
कोष – भंडार, खजाना, निधि।
कोयल – वनप्रिय, पिक, कोकिल, काक्पाली, वसंतदूत।
किरण – मरीचि, कर, अंशु, रश्मि, मयूख।
किनारा – कगार, कूल, तट, तीर।
कृपा – प्रसाद, दया, अनुग्रह।
खल – अधम, दुर्जन, दुष्ट, कुटिल, नीच।
गाय – गौ, धेनु, सुरभि।
गधा – गर्दभ, खर, धूसर, शीतलावाहन।
चरण – पद, पग, पाँव, पैर।
चातक – सारन, मेघजीवन, पपीहा, स्वातीभक्त।
किताब – पोथी, ग्रन्थ, पुस्तक।
कपड़ा – चीर, वसन, पट, वस्त्र, अम्बर, परिधान।
कामदेव – मन्मथ, मनोज, काम, मार, कंदर्प, अनंग, मनसिज, रतिनाथ, मीनकेतु।
कुबेर – किन्नरपति, किन्नरनरेश, यक्षराज, धनाधिप, धनराज, धनेश।
कृष्ण – राधापति, घनश्याम, वासुदेव, माधव, मोहन, केशव, गोविन्द, गिरधारी।
कल्पवृक्ष – कल्पतरु, देवतरु, कल्पद्रुम, देववृक्ष।

टिप्पणी

गंगा – देवनदी, मंदाकिनी, भागीरथी, जाह्नवी देवपगा।
गणेश – गजानन, गौरीनंदन, गणपति, गणनायक, शंकरसुवन, लम्बोदर, महाकाय।
क्रोध – रोष, कोप, अमर्ष, कोह।
गज – हाथी, हस्ती, मतंग, कुंजर, करी।
गुरु – शिक्षक, बड़ा, भारी, वृहस्पति।
ग्रीष्म – ताप, घाम, निदाघ, गर्मी।
गृह – घर, सदन, गेह, भवन, धाम, निकेतन, निवास।
चंद्रमा – चन्द्र, शशि, हिमकर, राकेश, रजनीश, निशानाथ, सोम, मयंक, सारंग, सुधाकर, कलानिधि।
चतुर – चालाक, कुशल, पटु, नागर, दक्ष, प्रवीण।
जल – वारि, नीर, तोय, अम्बु, उदक, पानी, जीवन, पय।
जहाज – पोत, जलयान।
जमुना – सूर्यसुता, कृष्णा, अर्कजा, रवितनया, कालिंदी।
जीभ – रसना, जिह्वा, गिरा, रसज्ञा।
झंडा – फरहरा, ध्वज, पताका, निशान।
झरना – प्रताप, उत्स, निर्झर, सोता, श्रोत।
झूठ – असत्य, मिथ्या, मृषा, अनृत।
तन – काया, तनु, शरीर, देह, कलेवर।
तरु – विटप, पादप, पेड़, द्रुम, वृक्ष।
तात – परम, प्यारा, पूज्य, पिता।
तालाब – सरोवर, जलाशय, सर, पुष्कर, पोखरा।
तलवार – असि, करवाल, कृपाण, खड़ग, चंद्रहास।
तीर – वाण, सर, नाराच, विहंग।
तोता – सुग्गा, शुक, सुआ, कीर, दाड़िमप्रिय।
दरिद्रं – निर्धन, गरीब, रंक, कंगाल, दीन।
दिन – दिवस, दिवा, वार।
दुःख – पीड़ा, कष्ट, व्यथा, वेदना, संताप, शोक, खेद, पीर, क्लेश।
दूध – दुग्ध, क्षीर, पय।
दर्पण – शीशा, आरसी, आईना, मुकुर।
दांत – दन्त, दशन, रद।
दुर्गा – चंडिका, भवानी, कुमारी, कल्याणी, महागौरी, कालिका, शिवा।
देवता – सुर, देव, अमर, वसु, आदि।

टिप्पणी

धनुष – धनुही, धनु, सारंग, चाप, शरासन।
धन – दौलत, संपत्ति, सम्पदा, वित्त।
धरती – पृथ्वी, भू, भूमि, धरणी, वसुंधरा, अचला, मही, रत्नवती, रत्नगर्भा।
ध्वनि – स्वर, आवाज, आहट।
नदी – सरिता, तटिनी, सरि, तरंगिणी।
नया – नूतन, नव, नवीन, नव्य।
नरक – यमलोक, यमालय, कुम्भीपाक।
नित्य – सदा, सर्वदा, सतत, निरंतर।
निरादर – अपमान, उपेक्षा, अवहेलना, तिरस्कार, अवज्ञा।
नाव – नौका, बेड़ा, तरिणी, जलयान, जलवाहन।
पवन – वायु, हवा, समीर, वात, मारुत, अनिल, पवमान।
पहाड़ – पर्वत, गिरि, अचल, नग, भूधर, महीधर।
पक्षी – खग, चिड़िया, गगनचर, पखेरू, विहंग, नभचर।
पानी – जल, नीर, वारि, सलिल, अंबु।
पार्वती – उमा, गिरिजा, गौरी, शिवा, भवानी, अम्बिका।
पति – स्वामी, प्राणाधार, प्राणप्रिय, प्राणेश, आर्यपुत्र।
पत्नी – गृहिणी, वधू, वनिता, दारा, जोरू, वामांगिनी।
पुत्र – बेटा, आत्मज, वत्स, तनुज, तनय, नंदन।
पुत्री – बेटी, आत्मजा, तनुजा, सुता, तनया।
पुष्प – फूल, सुमन, कुसुम, मंजरी, प्रसून।
बादल – मेघ, घन, जलधर, जलद, वारिद, नीरद, सारंग।
बालू – रेत, बालुका, सैकत।
बन्दर – वानर, कपि, कपीश, हरि।
बिजली – घनप्रिया, चपला, दामिनी, तडित, विद्युत।
ब्रह्मा – विधि, विधाता, प्रजापति, निर्माता, धाता, चतुरानन, प्रजापति।
विष – जहर, हलाहल, गरल, कालकूट।
वृक्ष – पेड़, पादप, विटप, तरु, द्रुम।
विष्णु – नारायण, दामोदर, पीताम्बर, चक्रपाणि।
भौंरा – भ्रमण, भँवरा, भृंग, मिलिंद, मधुप।
महेश – महादेव, नीलकंठ, चंद्रशेखर, गंगाधर, रुद्र, शिव, विश्वनाथ।
मनुष्य – आदमी, नर, मानव, मानुष, मनुज।
मदिरा – शराब, हाला, आसव, मधु, मद्य।

टिप्पणी

मोर – केकी, कलापी, नीलकंठ, नर्तकप्रिय, मयूर।
मधु – शहद, रसा, कुसुमासव।
मृग – हिरण, सारंग, कृष्णसार।
मछली – मीन, मत्स्य, जलजीवन, शफरी।
मूर्ख – गँवार, अल्पमति, अज्ञानी, अनपढ़, जड़।
मृत्यु – देहांत, मौत, अंत, स्वर्गवास, मरण।
मोक्ष – मुक्ति, परधाम, निर्वाण, परमपद, अपवर्ग।
यमराज – धर्मराज, यम, अन्तक, सूर्यपुत्र, दंडधर।
रात – रात्रि, रैन, रजनी, निशा, यामिनी, तमी, निशि, यामा।
राजा – नृप, भूप, भूपाल, नरेश, महीपति, अवनीपति।
लक्ष्मी – कमला, पद्मा, रमा, हरिप्रिया, श्री, इंदिरा।
विवाह – शादी, गठबंधन, परिणय, ब्याह, पाणिग्रहण।
समूह – गण, झुण्ड, संघ, वृन्द, समुदाय।
वायु – पवन, अनिल, समीर, हवा, वात।
वस्त्र – कपडा, वसन, अम्बर, परिधान, पट।
साँप – सर्प, नाग, विषधर, उरग, भुजंग।
शिव – भोलेनाथ, शम्भू, त्रिलोचन, महादेव, नीलकंठ, शंकर।
सूर्य – रवि, सूरज, दिनकर, प्रभाकर, आदित्य, भास्कर, दिवाकर।
संसार – जग, विश्व, जगत, लोक, दुनिया।
शरीर – देह, तनु, काया, कलेवर, अंग, गात।
सोना – स्वर्ण, कंचन, कनक, हेम, सुवर्ण।
स्त्री – अबला, नारी, महिला, रमणी, दारा, कान्ता।
सिंह – केसरी, शेर, महावीर, नाहर, सारंग, मृगराज।
सेना – वाहिनी, कटक, चनु।
समुद्र – सागर, पयोधि, उदधि, पारावार, नदीश, जलधि।
हनुमान – महावीर, पवनसुत, रामदूत, मारुति, कपीश, बजरंगबली।
हर्ष – आनंद, प्रसन्नता, प्रमोद, खुशी, आमोद।
हाथी – गज, हस्ती, नाग, मतंग, कुंजर।
शत्रु – रिपु, दुश्मन, अमित्र, वैरी।
हिमालय – हिमगिरी, हिमाचल, गिरिराज, पर्वतराज, नगेश।
हृदय – छाती, वक्ष, वक्षस्थल, हिय, उर।

4.10 मुहावरा

टिप्पणी

ऐसा वाक्यांश अथवा पदबंध, जो अपने शाब्दिक अर्थ के बदले किसी विलक्षण अथवा लाक्षणिक अर्थ की प्रतीति कराये, 'मुहावरा' कहलाता है। जैसे– 'एक आँख से देखना' का शाब्दिक अर्थ दोनों आँखों से न देखकर किसी एक आँख से देखने की क्रिया से है लेकिन लाक्षणिक अर्थ में यह सबको समान रूप से देखने के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। मुहावरों का प्रयोग वाक्य में लालित्य पैदा करने के लिए किया जाता है। दैनिक जीवन में प्रचलित वाक्यों के साथ मुहावरे के प्रयोग से वाक्य को प्रभावी ढंग से संप्रेषित किया जाता है। मुहावरे का प्रयोग करने से पूर्व उनका सटीक अर्थ जान लेना चाहिए अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।

मुहावरा मूलतः अरबी भाषा के 'मुहावररू' का हिन्दी में प्रचलित नाम है। उर्दू में इसे 'मुहाविरा' कहा जाता है। हिन्दी में यह वाच्यार्थ के बदले 'विलक्षण अर्थ देने वाले वाक्यांश' के रूप में प्रचलित है।

हिन्दी के कुछ प्रचलित मुहावरे, उनके अर्थ तथा वाक्य में प्रयोग

नीचे कुछ दैनिक जीवन में प्रचलित मुहावरे उनके अर्थ, वाक्य में प्रयोग सहित दिए जा रहे हैं, ताकि पाठक सुस्पष्ट अर्थ समझ सकें।

अंक भरना (स्नेह से गले लगाना)– यात्रा से लौटते ही माँ ने अपने बेटे को अंक भर लिया।

अंगार उगलना (अत्यधिक क्रोध में बुरा–भला कहना)– छोटी–सी बात पर चिढ़कर मुखिया जी अंगार उगलने लगते हैं।

अंगूर खट्टे होना (प्राप्त न कर सकने पर वस्तु को बेकार बताना)– 'सेना की नौकरी में जान का खतरा बराबर बना रहता है, अच्छा हुआ जो मेरा सिलेक्शन नहीं हुआ।' रमेश की बात सुनकर महेश ने कहा, ठीक है भाई ! अंगूर ही खट्टे हैं।

अन्धे की लकड़ी / लाठी (एकमात्र सहारा)– बेटे की सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई, अब तो बेटी ही उस अन्धे की लकड़ी है।

अन्धे के हाथ बटेर लगना (बिना प्रयास ही बड़ी वस्तु पा लेना)– महेश को लाटरी मिलना, अँधे के हाथ बटेर लगना है।

अक्ल पर पत्थर पड़ना (समझ न रहना)– तुम्हारे अक्ल पर पत्थर पड़ गया है क्या ! दामाद के सामने जो–सो बके जा रहे हो।

अपना उल्लू सीधा करना (अपना मतलब निकालना)– कई बीमा कंपनियाँ अपना उल्लू सीधा करते ही कंपनी बन्द कर देते हैं।

अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मारना (अपना अहित करना)– सरकारी नौकरी छोड़ बनिये की नौकरी करना अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मारना है।

अब–तब करना (टाल देना)– बकाया पैसा माँगने पर वह अब–तब करना शुरू कर देता है।

टिप्पणी

आँख का तारा (बहुत प्यारा)– उसकी माँ के लिए छोटा बेटा ही आँख का तारा है।

आसमान टूट पड़ना (अचानक विपत्ति आ पड़ना)– सड़क हादसे में माँ–बाप की मृत्यु हो गई, बेचारे पर आसमान टूट पड़ा।

ईंट से ईंट बजाना (विनाश करना)– भारतीय सेना किसी भी शत्रु देश की ईंट से ईंट बजाने में दक्ष है।

ईद का चाँद होना (बहुत दिनों बाद दिखना)– तुम आजकल कहाँ रहते हो कि ईद का चाँद हो गए हो।

उगल देना (रहस्य उजागर कर देना)– पुलिस की मार से चोर सारी बात उगल देते हैं।

कमर कसना (तैयार हो जाना)– मैट्रिक उत्तीर्ण करने के लिए उसने कमर कस ली और पढ़ाई में जुट गया है।

कीचड़ उछालना (बुराई करना)– दूसरों पर कीचड़ उछालने में उसे बड़ा मजा आता है।

खिचड़ी पकाना (भीतर–भीतर षड़यंत्र रचना)– मेरे पड़ोसी मुझे घर से बाहर भगा देने के लिए अक्सर खिचड़ी पकाते रहते हैं।

खून–पसीना एक करना (कठिन परिश्रम करना)– अच्छी पैदावार के लिए किसान खेत में खून–पसीना एक कर देता है।

गागर में सागर भरना (थोड़े में बहुत कुछ कह जाना)– बिहारी ने अपने दोहों में गागर में सागर भर दिया है।

गुदड़ी के लाल होना (गरीबी में भी गुणवान् पैदा होना)– अब्दुल कलाम आजाद सचमुच गुदड़ी के लाल थे।

घर फूँक तमाशा देखना (अपनी हानि कर मौज मनाना)– तुम्हारी तरह मुझे घर फूँक तमाशा देखने का शौक नहीं है।

घोड़े बेचकर सोना (निश्चिंत रहना)– कल से परीक्षा शुरू होने वाली है और यह महाशय घोड़े बेचकर सो रहे हैं।

चार दिन की चाँदनी (थोड़े दिनों के लिए सुख)– पुलिया का ठेका मिलने पर कैसे इतराएँ, बस चार दिन की चाँदनी है।

चूना लगाना (धोखा देना)– वह लोगों को बड़ी आसानी से चूना लगा जाता है।

छठी का दूध याद आना (संकट में पिछले सुख की याद आना)– महिनों से वेतन न मिलने पर अब छठी का दूध याद आ रहा है।

छाती पर साँप लोटना (ईर्ष्या करना)– पड़ोसी की तरक्की देखकर मिश्रा जी की छाती पर साँप लोटने लगते हैं।

जमीन आसमान एक करना (सव उपाय करना)– बेटे ने बाप को कैंसर से बचाने के लिए जमीन आसमान एक कर दिया।

जी चुराना (काम करने से कतराना)– पढ़ाई से जी चुराओगे तब बाद में तुम्हें पछताना पड़ेगा।

टाँग अड़ाना (अड़चन पैदा करना)– उसे हर काम में टाँग अड़ाने की आदत है, पिकनिक में नहीं ले जायेंगे।

टिप्पणी

टेढ़ी उँगली से घी निकालना (होशियारी से काम साधना)– सारी योग्यताओं के बावजूद जब नौकरी नहीं मिल सकी, तब विधायक से फोन पर बात करवा टेढ़ी उँगली से घी निकालने का काम किया।

टेढ़ी खीर (कठिन काम)– गर्मी की दुपहरी में साइकिल से सफर करना टेढ़ी खीर है।

ठोकर खाना (दुःख झेलना)– ठोकर खाने पर आदमी सुधर जाता है।

डंके की चोट पर कहना (स्पष्ट घोषणा करना)– मैं डंके की चोट पर कहता हूँ कि तुम्हारा दोस्त शराबी है।

डूबते को तिनके का सहारा (विपत्ति में थोड़ा सहयोग बेहद लाभकारी सिद्ध होना)– बेरोजगारी में चपरासी की नौकरी ने मुझे डूबते को तिनके का सहारा दे दिया।

ढिंढोरा पीटना (प्रचारित करना)– अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा ने ओसामा की मृत्यु का ढिंढोरा पिटवा दिया।

तिल का ताड़ करना (छोटी बात को बढ़ा–चढ़ाकर कहना)– मीडिया ने उस अभिनेत्री के सर्दी–जुकाम सी मामूली बीमारी को तिल का ताड़ बनाते हुए स्वाइन फ्लू होना बताया।

तूती बोलना (प्रभाव जमना)– योग्य व्यक्ति की सर्वत्र तूती बोलती है।

दाल में काला होना (संदेहास्पद बात)– जरूर दाल में कुछ काला है, अन्यथा वह सीधे मुँह मुझसे कभी बात नहीं करती।

दुम दबाकर भाग जाना (डर कर भागना)– पुलिस की गाड़ी देखते ही मुहल्ले से सारे जुआरी दुम दबाकर भाग गये।

धुन सवार होना (किसी बात के पीछे पड़ना)– उसे इंजीनियरिंग की पढ़ाई का धुन सवार है।

नाक रगड़ना (दीनतापूर्वक विनती करना)– मजदूर के लाख नाक रगड़ने के बावजूद मैनेजर ने उसे आलसी प्रवृत्ति के कारण दुबारा नौकरी पर नहीं रखा।

नौ–दो ग्यारह होना (भाग जाना)– गणित की कक्षा शुरू होते ही कुछ लड़के कक्षा से नौ–दो ग्यारह हो गये।

पीठ दिखाना (युद्धक्षेत्र से भाग जाना)– कारगिल में पाकिस्तानी सेना को भारतीय नौजवानों ने अन्त में पीठ दिखाने पर विवश कर दिया।

पेट में चूहे दौड़ना (अत्यधिक भूख लगना)– दिनभर काम करते–करते पेट में चूहे दौड़ने लगे हैं।

फूला न समाना (बहुत प्रसन्न होना)– जमीन मुकदमे में जीत की खबर सुनकर किसान फूला न समाया।

बाग बाग होना (अत्यधिक प्रसन्न होना)– खेत में गेहूँ की अच्छी पैदावार देखकर किसान बाग बाग हो उठा।

बीड़ा उठाना (उत्तरदायित्व लेना)– भूकंप प्रभावित नेपाल के पुनरुद्धार का बीड़ा भारत ने उठाया।

भंडा फूटना (गुप्त बात उजागर होना)– सीबीआई की छापेमारी से नेताजी के काले कर्मों का भंडा फूट पड़ा।

भाड़ झोंकना (बेकार में समय बर्बाद करना)– सिविल सर्विस की तैयारी के लिए कड़ी मेहनत चाहिए, भाड़ झोंकने पर पछताना पड़ेगा।

मुँह पर थूकना (अपमानित करना)– उनका पूरा परिवार धूर्त है। उनकी भलाई की बात करो तब भी मुँह पर थूक देते हैं।

मुँह मोड़ना (त्याग देना)– नौकरी से इस्तीफा देते ही परिवार वालों ने भी महेश से मुँह मोड़ लिया।

रफा–दफा करना (समाप्त करना)– रिश्वत लेने के बाद पुलिस ने हत्या का प्रकरण रफा–दफा कर दिया।

रास्ते पर लाना (सुधारना)– भारत की गिरती अर्थव्यवस्था को रास्ते पर लाने में भ्रष्टाचार सबसे बड़ा बाधक है।

लकीर का फकीर होना (पुरानी मान्यताओं पर विश्वास करना)– भूत–प्रेत के मामले में आज भी कई लकीर के फकीर हैं।

लेने के देने पड़ना (लाभ के बदले हानि पहुँचना)– बड़ी रकम है। तुम खुद जाकर बैंक में जमा कर दो। नौकर के भरोसे कहीं लेने के देने न पड़ जाए।

सब्ज–बाग दिखाना (लालच देकर बहकाना)– नेताओं के चुनावी घोषणा–पत्र में हमेशा आम जन के लिए विकास का सब्ज–बाग दिखाया जाता है।

साँप को दूध पिलाना (दुष्ट का उपकार करना)– प्रकाश को मुखिया बनाना साँप को दूध पिलाना है।

सिक्का जमना (प्रभाव जमना)– गजल गायन के क्षेत्र में जगजीत सिंह का सिक्का आज पर्यंत जमा हुआ है।

हथियार डाल देना (हार मान जाना)– बमवर्षक विमान देखकर आतंकवादी ने हथियार डाल दिये।

हाथ मलना (पश्चाताप करना)– दहेज की माँग पर लड़की ने शादी से मना कर दिया तब वर पक्ष हाथ मलता रह गया।

4.11 लोकोक्तियाँ (कहावतें)

अर्थ एवं परिभाषा– 'कहावत' उस पद विन्यास को कहते हैं, जिसमें जीवनानुभव की कोई सारगर्भित बात संक्षेप में सरस, सुन्दर प्रभावी ढंग से चमत्कारिक शैली में कही जाती है। संस्कृत में कहावत को 'सूचित' और अंग्रेजी में 'Proverb' तथा उर्दू में इसे 'मसल' कहा जाता है। कहावत को 'लोकोक्ति' भी कहा जाता है।

टिप्पणी

लोकोक्ति के पीछे कोई एक कहानी अथवा घटना जुड़ी होती है। वही कहानी अथवा घटना कालांतर में जब लोगों की जुबान पर प्रचलित हो जाती है, तब 'लोकोक्ति' कहलाती है।

टिप्पणी

4.11.1 मुहावरा और कहावत (लोकोक्ति) की तुलना

समानता

- दोनों ही भाषा में चमत्कार पैदा कर उसे सरस और बेहद प्रभावी बनाते हैं।
- दोनों ही अपने सामान्य अर्थ से अधिक विलक्षण अर्थ को प्रस्तुत करते हैं।
- दोनों ही गम्भीर एवं जीवनानुभव की उपज हैं।
- दोनों ही प्रयोग के बाद अपनी सार्थकता सिद्ध करते हैं।
- समानार्थी या पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से दोनों ही अपनी अर्थवत्ता खो देते हैं।

अन्तर

मुहावरा	कहावत
• मुहावरा वाक्यांश होता है।	• कहावत में पूरा वाक्य होता है।
• मुहावरे का प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता है।	• कहावत स्वतंत्र रूप में भी प्रयोग की जाती है।
• मुहावरों से उद्देश्य एवं विधेय का पूरा स्पष्ट पता नहीं लगाया जा सकता है, अतः आशय स्पष्ट करने के लिए वाक्य में प्रयोग आवश्यक है।	• कहावत में उद्देश्य और विधेय स्पष्ट होता है, अतः वाक्य–प्रयोग के बिना ही आशय स्पष्ट हो जाता है।
• मुहावरा परिणाम से संबंधित नहीं होता।	• कहावत परिणाम पर आधारित होती है।
• मुहावरे का कार्य भाव सौंदर्य बढ़ाकर वाक्य में चमत्कार पैदा करना है।	• कहावत कथन के समर्थन में अथवा उसके विरोध में खण्डन प्रस्तुत करती है।
• मुहावरा काल, वचन और पुरुष के अनुरूप परिवर्तित होता है।	• कहावत का स्वरूप यथावत रहता है।
• मुहावरे को अर्थ स्पष्ट करने के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है।	• कहावत के लिए माध्यम की जरूरत नहीं होती।
• मुहावरों के अन्त में प्रायः 'ना' प्रत्यय आता है।	• कहावत में ऐसा नहीं है।

नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण कहावतें उनके अर्थ एवं प्रयोग सहित दी जा रही हैं, ताकि उनका अर्थ सुस्पष्ट हो सके–

अन्धों में काना राजा (निरक्षर लोगों के बीच कम पढ़ा लिखा व्यक्ति)– मेरे कस्बे में बिजली सुधारने के लिए कोई कर्मी नहीं है। एक मुकेश ही अन्धों में काना राजा है। इसलिए मुकेश ही सब कुछ है।

अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत (समय निकल जाने पर पछतावा महसूस होना)– दुकान में तुम सुरक्षा को लेकर कभी चिंतित नहीं रहे। अब चोरी हो जाने के बाद सुरक्षाकर्मी तैनात करने का क्या प्रयोजन? अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।

टिप्पणी

आगे नाथ न पीछे पगहा (उत्तरदायित्व अथवा बंधन से रहित व्यक्ति)– मेरे घर में माँ अकेली है। वह मेरे लिए चिंतित रहती है इसलिए धार्मिक अनुष्ठान हो अथवा पार्टी। सब तुम्हें मुबारक हो। मैं घर जा रहा हूँ। तुम्हारे आगे नाथ न पीछे पगहा बस मौज है।

आम के आम गुठलियों के दाम (हर तरह से लाभ)– उसने पढ़ाई के दौरान पुरानी साईकिल आधे दाम में खरीद कर पढ़ाई के बाद फिर उसी आधे दाम में बेच दी। अर्थात आम के आम गुठलियों के दाम।

इधर कुआँ उधर खाई (दोनों ओर मुसीबत)– घर में बहू बीमार है और बिटिया के ससुराल वाले दहेज के लोभ से बेटी को मायके भेजने की तैयारी कर रहे हैं। मेरे लिए इधर कुआँ उधर खाई जैसा हो गया है।

ऊँट के मुँह में जीरा (अत्यल्प)– सौ सीट की सवारी गाड़ी में केवल पाँच यात्रियों का सफर करना ऊँट के मुँह में जीरा के समान है।

एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है (एक बुरा व्यक्ति पूरे समाज को बदनाम कर देता है)– रमेश आदतन अपराधी है। अब उसने घर में अवैध शराब बेचकर शान्तिप्रिय मोहल्ले को शराबियों का अड्डा बना दिया है। ठीक ही कहा गया है, एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है।

ओछे की प्रीति बालू की भीति (नीच व्यक्ति की मित्रता अस्थायी होती है)– उसने मित्रता के नाम पर मुझसे दस हजार रुपये उधार लिए थे। अब रकम माँगने पर गाली–गलौच करने लगता है। कहा भी गया है, 'ओछे की प्रीति बालू की भीति'।

काला अक्षर भैंस बराबर (निरक्षर आदमी)– रामलाल को बही–खाते का हिसाब दिखाना काला अक्षर भैंस बराबर है।

गेहूँ के साथ घुन भी पिसता है (बुरे के साथ भला भी बदनाम हो जाता है)– खरपतवार नाशक के छिड़काव से घास–फूस के साथ गुलाब के पौधे भी मर गए क्योंकि गेहूँ के साथ घुन भी पिसता है।

चिराग तले अँधेरा (अपनी बुराई नहीं दिखती)– बाप ने भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम चला रखा है लेकिन बेटा अव्वल दर्जे का भ्रष्ट तहसीलदार है। सच ही कहा गया है, 'चिराग तले अँधेरा'।

जान है तो जहान है (जीवन ही सब कुछ है)– नक्सल प्रभावित क्षेत्र में जान जाने का खतरा देख उसने नौकरी करने से मना करते हुये कहा, 'जान है तो जहान है'।

तुम डाल–डाल हम पात–पात (चालाकी समझ जाना)– सायबर अपराधियों पर शिकंजा कसने के लिये पुलिस 'तुम डाल–डाल हम पात–पात' के अंदाज में नये तकनीकों का प्रशिक्षण ले रही है।

नौ दिन चले अढ़ाई कोस (सुस्ती से काम करना)– सरकारी आवास योजना के तहत भवन निर्माण की राशि मिलने में 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' की तर्ज पर दो साल लग गये।

हाथी चले बाजार, कुत्ता भौंके हजार (लोगों की बातों पर ध्यान न देकर अपने काम से मतलब रखना)– गाँव में मशरूम की खेती शुरू करने पर उसे सब हँस रहे थे लेकिन लोगों की परवाह न करते हुये जब वह कमाने लगा तब अधिक आमद होने लगी। कहा भी गया है, 'हाथी चले बाजार, कुत्ता भौंके हजार'।

टिप्पणी

4.12 सारांश

हिन्दी में लिंग का पूर्ण निर्णय मुश्किल कार्य है। इसका कोई निश्चित और स्थायी नियम नहीं है। आम तौर पर हिन्दी में लिंग का निर्णय दो प्रकार से किया जाता है– 1. शब्द के अर्थ के आधार पर 2. उसके रूप के आधार पर।

संज्ञा (या सर्वनाम) के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है उस रूप को कारक कहते हैं। जैसे– तारो ने नदी पर पुल बँधवा दिया है। उपर्युक्त वाक्य में 'तारो ने', 'नदी पर' संज्ञाओं के रूपांतर हैं जिनके द्वारा इन संज्ञाओं का संबंध 'बँधवा दिया' क्रिया के साथ सूचित होता है। इसमें 'नदी पर' 'नदी' संज्ञा का रूपांतर है और इस रूपांतर की वजह से 'नदी' का संबंध पुल से बनता है। इसलिए 'नदी पर' संज्ञा का कारक कहलायेगा।

हिन्दी में दो वचन होते हैं– एकवचन और बहुवचन।

एकवचन (Singular Number)– संज्ञा के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध होता है, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे– नदी, गदहा, कपड़ा आदि।

बहुवचन (Plural Number)– संज्ञा के जिस रूप से एक से अधिक वस्तुओं का बोध होता है उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे– नदियाँ, गदहें, कपड़ें आदि।

काल 'क्रिया' का वह रूपांतर है, जिसमें उसके कार्य करने का समय और उसकी पूर्णता अथवा अपूर्णता का बोध होता है।

काल के भेद

काल तीन प्रकार के होते हैं– 1. वर्तमान काल, 2. भूतकाल, और 3. भविष्यकाल।

किसी भाषा की समस्त ध्वनियों को सही ढंग से उच्चारित करने हेतु वर्तनी की एकरूपता स्थापित की जाती है। जिस भाषा की वर्तनी में अपनी भाषा के साथ अन्य भाषाओं की ध्वनियों को ग्रहण करने की जितनी अधिक शक्ति होगी, उस भाषा की वर्तनी उतनी ही समर्थ होगी। अतः वर्तनी का सीधा सम्बन्ध भाषागत ध्वनियों के उच्चारण से है।

शब्द मूलतः एक ध्वन्यात्मक संकेत होता है जो किसी वस्तु, भाव या विचार को प्रकट करता है। शब्द जिस वस्तु, भाव या विचार को प्रकट करता है वही उसका अर्थ होता है। अर्थात् शब्द के द्वारा जो प्रतीति होती है, उसे अर्थ कहते हैं।

'विलोम' शब्द का अर्थ है 'उल्टा' या 'विपरीत'। किसी शब्द से प्रकट होने वाले अर्थ का विपरीत अर्थ प्रकट करने वाले शब्द को 'विलोम शब्द' कहते हैं। जैसे 'जन्म' शब्द का विलोम शब्द 'मृत्यु' होगा। यहाँ यह भी ध्यान रखने की बात है कि दो विलोम शब्द

अपनी प्रगति जांचिए

1. संस्कृत भाषा के दो पुल्लिंग शब्द बताइए जो हिंदी में स्त्रीलिंग हैं।
2. संस्कृत भाषा दो वे स्त्रीलिंग शब्द बताइए जो हिंदी में पुल्लिंग हैं।
3. हिंदी में कारकों की संख्या है–

   (i) 2 (ii) 4

   (iii) 6 (iv) 8
4. वचन बदलिए घर, छात्र, वस्तु, साधु, चिड़िया
5. वर्तमान काल के भेद हैं–

   (i) 2 (ii) 4

   (iii) 5 (iv) 6
6. विलोम शब्द बताइए– आस्तिक, अनुरक्ति, इच्छा, अपेक्षा।
7. दो–दो पर्यायवाची शब्द बताइए– आभूषण, गणेश, नदी, पहाड़

एक–दूसरे का विलोम होते हैं। जैसे यदि 'जन्म' का विलोम शब्द 'मृत्यु' है तो 'मृत्यु' शब्द का विलोम शब्द 'जन्म' होगा।

टिप्पणी

जिन शब्दों के अर्थ में समानता होती है, उन्हें समानार्थक या पर्यायवाची शब्द कहते हैं। हिन्दी भाषा में एक शब्द के समान अर्थ वाले कई शब्द हमें मिल जाते है, जैसे– पहाड़–पर्वत, अचल, भूधर।

ऐसा वाक्यांश अथवा पदबंध, जो अपने शाब्दिक अर्थ के बदले किसी विलक्षण अथवा लाक्षणिक अर्थ की प्रतीति कराये, 'मुहावरा' कहलाता है। जैसे– 'एक आँख से देखना' का शाब्दिक अर्थ दोनों आँखों से न देखकर किसी एक आँख से देखने की क्रिया से है लेकिन लाक्षणिक अर्थ में यह सबको समान रूप से देखने के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है।

लोकोक्ति के पीछे कोई एक कहानी अथवा घटना जुड़ी होती है। वही कहानी अथवा घटना कालांतर में जब लोगों की जुबान पर प्रचलित हो जाती है, तब 'लोकोक्ति' कहलाती है।

4.13 मुख्य शब्दावली

- **अपवाद** : सामान्य नियम से भिन्न बात।
- **अलगाव** : दूरी, अलग रखने का भाव।
- **आसन्न** : पास आया हुआ।
- **अध्यवसाय** : उद्यम, परिश्रम।
- **ईप्सित** : चाहा हुआ, प्रिय।
- **निर्विवाद** : बिना विवाद के।
- **प्रतीति** : प्रतीत होने की क्रिया।
- **संश्लिष्ट** : जोड़ा हुआ, मिलाया हुआ।
- **समीचीन** : यथार्थ, उचित।
- **सारूप्य** : एक रूप होने का भाव।
- **सोपान** : सीढ़ी।
- **संभाव्य** : हो सकने योग्य।
- **संदिग्ध** : संदेहयुक्त।
- **पूर्वाह्न** : दिन का पहला भाग।

4.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. राशि, आत्मा
2. तारा, देवता

टिप्पणी

3. 8
4. घर, छात्रगण, वस्तुएं, साधु, चिड़ियां
5. 5
6. नास्तिक, विरक्ति, अनिच्छा, उपेक्षा
7. आभूषण – भूषण, अलंकार
   गणेश – गजानन, गणपति
   नदी – सरिता, तटिनी
   पहाड़ – पर्वत, नग

4.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. वचन की परिभाषा स्पष्ट कीजिए तथा वचनों के प्रकार बताइए।
2. वर्तमान काल के भेद स्पष्ट कीजिए।
3. वाक्य शुद्ध कीजिए।
   1. आपने बड़ी अनुग्रह की।
   2. कटोरे में दही जम गई।
   3. गायित्री एक विद्वान महिला थी।
   4. मन की मैल काटती है।
4. पर्यायवाची शब्द की परिभाषा उदाहरण सहित दीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. कारक की परिभाषा बताइए तथा कारक के भेद विभक्तियों सहित स्पष्ट कीजिए।
2. 'मुहावरा' और 'लोकोक्ति' की समानताएं व अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. निम्न मुहावरों को अपने वाक्यों द्वारा स्पष्ट कीजिए–
   1. अंधे के हाथ बटेर लगना
   2. आंख का तारा
   3. टेढ़ी उँगली से घी निकालना
   4. डूबते को तिनके का सहारा
   5. बाग–बाग होना।
4. निम्न लोकोक्तियों का अर्थ स्पष्ट करते हुए वाक्यों में प्रयोग कीजिए।
   1. इधर कुँआ उधर खाई
   2. जान है तो जहान है

   3. अंधों में काना राजा
   4. ऊँट के मुंह में जीरा
   5. गेहूं के साथ घुन भी पिसता है।

टिप्पणी

4.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. हिन्दी गद्य – विन्यास और विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली।
2. हिंदी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरु, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
3. हिन्दी भाषा : संरचना और प्रयोग, डा. भोलानाथ तिवारी व डा. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव।
4. हिन्दी व्याकरण – कामता प्रसाद गुरु।
5. हिन्दी का भाषा वैज्ञानिक व्याकरण – केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।

टिप्पणी

इकाई 5 निबंध–लेखन

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 निबंध क्या है?
5.3 निबंध की परिभाषा
5.4 निबंध के प्रकार
5.5 निबंध के तत्व
5.6 निबंध–लेखन कैसे करें?
5.7 निबंध लेखन की विशेषताएं
5.8 निबंध लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियां
5.9 निबंध–लेखन
  5.9.1 विज्ञान विषय से संबंधित निबंध
  5.9.2 समसामयिक विषय से संबंधित निबंध
  5.9.3 अरुणाचल प्रदेश से संबंधित विषय
  5.9.4 हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं से संबंधित निबंध
  5.9.5 अन्य विषय
5.10 सारांश
5.11 मुख्य शब्दावली
5.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

हम सभी बचपन से ही निबंध लिखते आ रहे हैं अतः इस विधा से भली–भांति परिचित हैं। निबंध एक गद्य विधा है। इसका लेखन कविता में नहीं हो सकता। निबंध का लेखन किसी विषय को केन्द्र में रखकर किया जाता है। इसमें लेखक निर्धारित विषय पर अपने विचारों को प्रकट करता है। निबंध एक विचार–प्रधान विधा है, परंतु लेख या भाषण की तरह इसमें केवल विचारों की ही उपस्थिति नहीं होती। यह ध्यान रहे कि निबंध अंततः एक साहित्यिक विधा है इसलिए इसमें विचार भावों के साथ मिलकर आने चाहिए जिससे उसमें पाठकों को बांध सकने की क्षमता हो। रोचकता निबंध की एक प्रमुख विशेषता है। निबंध की सबसे बड़ी विशेषता उसमें लेखकीय व्यक्तित्व की उपस्थिति है। इसके बगैर निबंध की पहचान संभव नहीं है। निबंध के लेखन के दौरान निबंधकार कविता या कहानी की तरह कल्पना का प्रयोग नहीं करता। इसमें मन की उन्मुक्त उड़ान होती है लेकिन यह उड़ान भी यथार्थ की जमीन पर टिकी होती है। यह कल्पना की उड़ान से भिन्न होती है। निबंध में प्रस्तुत तथ्य सत्य होते हैं। इसको पढ़कर पाठक के मन में लेखक के प्रति विश्वास पैदा होना चाहिए। निबंध का निश्चित आकार नहीं होता। यह एक सौ शब्दों से लेकर दस हजार शब्दों में

टिप्पणी

लिखा जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का एक निबंध 'कविता क्या है?' बीस से भी ज्यादा पृष्ठों का है। लेकिन आम तौर पर निबंध का आकार छोटा ही होता है।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिन्दी में निबंध विधा का विकास भी पश्चिम के प्रभाव में ही हुआ है। भारतेन्दु युग में ही निबंध लिखा जाने लगा था लेकिन इसको ऊंचाई द्विवेदी युग में आकर मिली। हिन्दी के प्रमुख निबंधकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, सरदार पूर्णसिंह आदि का नाम लिया जाता है। इनके कुछ निबंधों का अध्ययन इस विधा को समझने में आपकी मदद करेगा।

स्कूल के दिनों में लिखे गये निबंधों से भिन्न और थोड़ा ज्यादा विकसित प्रारूप स्नातक स्तर पर लिखे जाने वाले निबंधों का होता है। बचपन में लिखे जाने वाले निबंध वास्तव में लेख होते हैं। स्नातक स्तर पर निबंध कैसे लिखें, इस पर विस्तार से विचार प्रस्तुत इकाई में हुआ है। निबंध की परिभाषा, तत्व, विशेषता और प्रकार से लेकर उसके लिखे जाने की विधि तक को यहां समझाया गया है। इकाई के अंत में प्रारूप के रूप में भिन्न–भिन्न विषयों पर निबंध भी लिखा गया है। आप इन विषयों पर भी अलग तरीके से निबंध लिख सकते हैं। यहां कुछ निबंध पांच सौ शब्दों में हैं और कुछ एक हजार शब्दों में। इसका उद्देश्य यह है कि आप यह जान सकें कि कैसे किसी विषय पर विस्तार से और किसी विषय पर संक्षेप में निबंध लिखा जाता है।

इस इकाई का गहन अध्ययन आपको एक बेहतर निबंध लेखक बनने में मददगार साबित होगा।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- निबंध के स्वरूप से परिचित हो पाएंगे;
- निबंध को परिभाषित कर पाएंगे;
- निबंध के विभिन्न प्रकारों से अवगत हो पाएंगे;
- निबंध के तत्वों को जान पाएंगे;
- निबंध लिखने की विधि से परिचित हो पाएंगे;
- निबंध की विशेषताओं से अवगत होकर उनका निबंध लेखन में उपयोग कर पाएंगे;
- निबंध लेखन के दौरान ध्यान रखी जाने वाली बातों को समझ पाएंगे;
- विभिन्न विषयों पर लिखे गये निबंधों को पढ़कर किसी विषय विशेष पर निबंध लिखने में सक्षम हो पाएंगे।

5.2 निबंध क्या है?

'निबंध' शब्द 'बंध' धातु में 'नि' उपसर्ग लगने से बना है जिसका शब्दकोशीय अर्थ होता है– व्यवस्थित तरीके से बांधना। 'निबंध' वह विधा है जिसमें लेखक अपने विचारों को व्यवस्थित

टिप्पणी

रूप में प्रस्तुत करता है। प्राचीन साहित्य में निबंध शब्द का प्रयोग लिखे हुए भोजपत्रों को संवारकर बांधने के लिए या सीने की क्रिया के लिए किया जाता था। वर्तमान में निबंध शब्द साहित्य की उस विधा के लिए प्रयुक्त होता है जो पश्चिम के प्रभाव से हिन्दी में विकसित हुई है।

हिन्दी की अन्य गद्य विधाओं की तरह 'निबंध' भी पश्चिम में विकसित विधा है। इस विधा का जन्म फ्रांस में हुआ था। इस विधा का जन्मदाता और पितामह फ्रांस के प्रसिद्ध निबंधकार मिशेल इक्वेम द मोंतेन को माना जाता है। मोंतेन के निबंध सबसे पहले सन 1580 में प्रकाशित हुए थे। फ्रेंच भाषा में निबंध को 'Essai' कहा जाता जिसका अर्थ होता है– प्रयास, प्रयोग या परीक्षण। फ्रेंच में किसी एक विषय का परीक्षण कर, उससे प्राप्त विचारों को व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत करने की प्रक्रिया को निबंध कहा जाता है। फ्रेंच के 'Essai' शब्द से ही अंग्रेजी का 'Essay' शब्द बना है जिसका हिन्दी अनुवाद 'निबंध' किया गया है।

निबंध विधा के जन्मदाता मोंतेन ने इस विधा के विषय में लिखा है कि, "निबंध विचारों, उद्धरणों एवं कथाओं का सम्मिश्रण है। अपने निबंधों का विषय स्वयं मैं हूं। ये निबंध अपनी आत्मा को दूसरों तक पहुंचाने के प्रयत्नमात्र हैं। इनमें मेरे निजी विचार और कल्पनाओं के अतिरिक्त कोई नूतन खोज नहीं है।" मोंतेन के इस वक्तव्य में अभिव्यक्त निबंध की प्राथमिक और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है– आत्माभिव्यंजना। निबंध लेखन में लेखक के निज का प्रकाशन आवश्यक है। यह विचारों से लेकर उसकी प्रस्तुति तक में झलकना चाहिए।

निबंध एक कथेत्तर गद्य विधा है। इसके लेखन में कल्पना का समावेश नहीं होता। असल में, निबंध साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमें कोई लेखक आत्मीयता और वैयक्तिकता के साथ किसी एक विषय पर दीर्घ या लघु रूप में निजी शैली में अपने विचार प्रकट करता है। निबंध में लेखक अपने विचारों की प्रस्तुति करता है लेकिन यह प्रस्तुति ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में व्यक्त विचारों से अलग होती है। जहां ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में प्रस्तुत विचार निरपेक्ष, शुष्क और निर्वैयक्तिक रूप में हमारे सामने आता है वहीं निबंध में विचार आत्मपरक, रागात्मक और व्यक्तित्व के प्रकाशन के साथ प्रस्तुत होता है। इसमें वस्तुनिष्ठता कम होती है और रागतत्व की प्रधानता होती है। निबंध में विचारों की प्रधानता जरूर रहती है लेकिन इसे साहित्य की विधा बनाती है इसकी शैली। निबंध लेखन की शैली अन्य वैचारिक रूपों से भिन्न होती है। इसमें विचार को रोचक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है जिससे लेखकीय व्यक्तित्व का प्रकाशन हो।

5.3 निबंध की परिभाषा

साहित्य की किसी भी विधा की परिभाषा कठिन है लेकिन उसमें भी निबंध की परिभाषा सर्वाधिक कठिन है। स्वरूप और रचना की दृष्टि से निबंध इतना बहुआयामी हो गया है कि उसकी कोई निश्चित परिभाषा संभव नहीं है। निबंध अपने शाब्दिक अर्थ के विपरीत एक बंधनमुक्त विधा है। निबंध की परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध निबंधकार जॉनसन ने इसे 'मुक्त मन की मौज, अनियमित, अपक्व–सी रचना, न कि नियमबद्ध और व्यवस्थित कृति' कहा था। प्रमुख भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निबंध की दी गयी परिभाषा निम्न है–

टिप्पणी

ओ. विलियम्स : The most delightful, airy mould of thought which admits of every literary grace and every high quality of mind, compatible with its essential smallness of scale.

हिन्दी साहित्य कोश : निबन्ध लेखक की विचार–प्रगल्भता, अनुभवशीलता और प्रौढ़ता का परिचय देता है परन्तु वह एक विशेष मनोदशा में लिखा जाता है इसलिए उसमें परिपूर्णता स्वभावतः नहीं होती। परन्तु ऐसा नहीं कि वह लेखक के किसी भी विषय–संबंधी विचारों का संक्षेप व सार हो, प्रत्युत सीमित दृष्टिकोण से किसी विशेष मनोदशा के अन्तर्गत लेखक उसमें अपने विचार प्रकट करता है। परिणामस्वरूप निबंध का आकार साधारणतया अधिक लम्बा नहीं हो सकता।

गुलाब राय : निबंध उस गद्य–रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन, एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।

अरुण प्रकाश : निबंध उस साहित्यिक रचना को कहते हैं जिसमें किसी विषय के एक पहलू पर लेखक के विचार को प्रस्तुत किया गया हो। आकार में संक्षिप्त परंतु अनौपचारिक शैली वाला यह रूपबंध थीसिस, विनिबंध आदि से अलग तो होता ही है।

5.4 निबंध के प्रकार

हिन्दी में निबंध लेखन की समृद्ध परंपरा रही है। भारतेंदु युग की सर्वाधिक सशक्त विधा निबंध थी। इस युग के प्रायः सभी गद्य लेखकों ने निबंध लिखे हैं। इनमें राष्ट्र की समस्या से लेकर शरीर के अलग–अलग अंगों पर निबंध लिखे गये। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के भाव और मनोविकार संबंधी निबंध, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध और हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबंधों ने इस विधा को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित किया। निबंध के विषय में ऊपर हुई चर्चा से इतना तो स्पष्ट है कि निबंध के विषय से लेकर उसकी प्रस्तुति तक में पर्याप्त विविधता है। इन आधारों पर निबंध को मुख्य रूप से चार प्रकारों में विभाजित किया गया है। ये हैं– 1. वर्णनात्मक निबंध, 2. विवरणात्मक निबंध 3. विचारात्मक निबंध और 4. भावात्मक निबंध।

1. **वर्णनात्मक निबंध :** वर्णनात्मक निबंध में किसी विषय को केन्द्र में रखकर उसका सीधे–सीधे वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। इसमें निबंधकार वस्तु को स्थिर होकर देखता है। इसमें विषय विशेष के अलग–अलग पक्षों का विवरण होता है। इस प्रकार के निबंध सूचना प्रधान होते हैं। इसमें बहुत ही सरल तरीके से किसी विषय का स्थूल वर्णन किया जाता है। वर्णनात्मक निबंधों में विषय की व्याख्या न कर उसे रोचक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। इन निबंधों में विषय का वर्णन इतना चमत्कारपूर्ण और जीवंत होता है कि पाठक उससे मंत्रमुग्ध हो जाता है और उसके समक्ष वर्ण्य विषय साक्षात हो जाता है। किसी देश, स्थान, घटना, पर्व, प्राकृतिक दृश्य आदि पर लिखे गये विवरण प्रधान निबंधों को इस कोटि में रखा जा सकता है। विद्यार्थियों द्वारा किसी पूर्वनिर्धारित विषय पर लिखवाये जाने वाले निबंध प्रायः इसी कोटि के होते हैं।

टिप्पणी

वर्णनात्मक निबंध में स्थान या देश की प्रधानता होती है। यह घटना की अपेक्षा दृश्य प्रधान होता है। इसमें वर्तमान समय की बहुत महत्ता होती है। वर्णनात्मक निबंध निबंधकार द्वारा स्वयं देखे गये सत्य पर आधारित होता है। यदि किसी व्यक्ति ने कुम्भ का मेला देखा हो तो वह उस पर वर्णनात्मक निबंध लिख सकता है। इसमें वह उस मेले का यथातथ्य वर्णन करने के साथ ही उस विषय में हुई अपनी मानसिक प्रतिक्रिया को भी स्थान देता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने कई निबंधों में वर्णनात्मक निबंध के लेखन के प्रारूप को अपनाते हैं।

2. **विवरणात्मक निबंध :** वर्णनात्मक निबंध में जहां देश की प्रधानता होती है वहीं विवरणात्मक निबंध में काल या समय की। जब हम किसी विषय का वर्णन करते हैं तब सीधे ही उस विषय से संबंधित अपने विचार प्रकट करने लगते हैं लेकिन जब उसी विषय का विवरण देने को कहा जाय तो पहले हम उसके स्थूल तथ्यों का विवरण देते हैं तब मूल विषय पर आते हैं। वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबंध का मूल अंतर यह है कि पहला विषय केंद्रित होता है जबकि दूसरे में कल्पना का भी समावेश होता है।

विवरणात्मक निबंधों में कथात्मकता का अंश रहता है। इसको पढ़ने पर ऐसा लगता है जैसे आप कोई कहानी पढ़ रहे हों। परंतु इन निबंधों में कथा साधन होता है साध्य नहीं। विवरणात्मक निबंध प्रायः साहसिक विषयों पर लिखे जाते हैं, जैसे– पहाड़ पर चढ़ाई, शिकार की कहानी, कष्ट साध्य यात्रा आदि। इन निबंधों में रोचकता और भावुकता का तत्व प्रधान होता है। इसके लेखन में चित्रात्मक, आत्मकथात्मक, आलंकारिक, व्यंग्यात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी में श्रीराम शर्मा के निबंध इसी कोटि में आते हैं।

3. **विचारात्मक निबंध :** जब किसी निबंध में विचार पक्ष की प्रधानता होती है तो उसे विचारात्मक या विचारप्रधान निबंध कहते हैं। वैसे कोई भी निबंध विचार के स्तर पर शून्य नहीं होता, फिर भी किसी में यह ज्यादा प्रभावी होता है और किसी में कम। विचारात्मक निबंधों में निबंधकार जिस विषय को उठाता है उसके प्रत्येक पक्ष पर गहन चिंतन करता है। जैसे रामचन्द्र शुक्ल अपने भाव या मनोविकार से संबंधित निबंधों में जिस भाव को लक्ष्य करते हैं उसके सभी संभावित सामाजिक और निजी व्यवहार पर विस्तार और गहराई में जाकर विचार करते हैं। आचार्य शुक्ल ने विचारात्मक निबंधों के विषय में लिखा है कि, "शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरमोत्कर्ष वहीं कहा जा सकता है जहां एक–एक पैराग्राफ में विचार दबा–दबाकर कसे गए हों और एक–एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार खण्ड के लिए हों।"

विचारात्मक निबंधों के लेखन के दौरान निबंधकार का मस्तिष्क पक्ष ज्यादा सक्रिय रहता है। विचारात्मक निबंध आम तौर पर सैद्धांतिक विषयों को केन्द्र में रखकर लिखे जाते हैं। इस प्रकार के निबंधों से लेखक की विश्लेषण क्षमता, तार्किकता, वैचारिकता, मौलिकता और गहन अन्तःदृष्टि की परख हो जाती है। ऐसे निबंध व्यापक अध्ययन और सूक्ष्म समझ की मांग करते हैं। विचारात्मक निबंधों की

टिप्पणी

प्रस्तुति तार्किक और विश्लेषणात्मक शैली में की जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अधिकांश निबंध इसी कोटि में आते हैं। विचारात्मक निबंध को समझने के लिए आचार्य शुक्ल के एक निबंध 'करुणा' की कुछ पंक्तियां यहां दी जा रही हैं– "मनुष्य के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यंत संकुचित होती है। मनुष्य जिस वस्तु को जिस समय और जिस स्थान पर देखता है, उसकी उसी समय और उसी स्थान की अवस्था का अनुभव उसे होता है। पर स्मृति, अनुमान या दूसरों के प्राप्त ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लांघता हुआ अपना देशकाल–सम्बन्धी विस्तार बढ़ाता है। प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विस्तार कभी–कभी आवश्यक होता है। मनोविकारों की उपयुक्तता कभी–कभी इस विस्तार पर निर्भर करती है। मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है, पर जब हम सुनते हैं कि कई बार वह बड़े–बड़े अपराध कर चुका है, इससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा, तो हमें अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है।"

4. **भावात्मक निबंध :** जब किसी निबंध में भाव पक्ष की प्रधानता होती है तब उसे भावात्मक या भावप्रधान निबंध कहते हैं। भावात्मक निबंध वैचारिक रूप से कमजोर नहीं होते लेकिन उनमें विचार भावनाओं के प्रवाह में आते हैं। मनोवेगों की तीव्रता और भावों की बहुलता इन निबंधों की प्रधान विशेषता है। भावात्मक निबंधों के लेखन में मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय का प्रयोग अधिक होता है। इसमें निबंधकार किसी विषय को भावों के रस में लपेटकर इस कदर प्रस्तुत करता है कि पाठक न चाहते हुए भी उसके प्रवाह में बह जाता है। भावों की प्रधानता होने के कारण भावात्मक निबंधों की भाषा में स्वाभाविक रूप से लालित्य का समावेश हो जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में इसे आसानी के साथ देखा जा सकता है। कुछ विद्वानों ने इस प्रकार की शैली को देखकर निबंध के एक अन्य प्रकार 'ललित निबंध' की भी कल्पना कर ली है, लेकिन 'ललित निबंध' निबंध का कोई अलग प्रकार न होकर भावात्मक निबंध के लेखन की एक शैली मात्र है।

विचारप्रधान निबंधों में अन्यपरक शैली का प्राधान्य होता है जबकि भावात्मक निबंधों की शैली आत्मपरक होती है। इसमें लेखक का व्यक्तित्व ज्यादा प्रभावी रूप में पाठकों के समक्ष आता है। आत्मानुभूति की प्रमाणिकता के बिना भावात्मक निबंध का लेखन सम्भव नहीं। निबंधकार का विषय के साथ आत्यंतिक लगाव भी आवश्यक है। हिन्दी में सरदार पूर्णसिंह के अधिकांश निबंध इसी श्रेणी के हैं। सरदार पूर्णसिंह के निबंध 'आचरण की सभ्यता' की इन पंक्तियों से आप भावात्मक निबंध के विषय में कुछ अनुमान लगा सकते हैं – "यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षा के लिए– चाहे वह कन्या जिस जाति की हो, जिस किसी मनुष्य की हो, जिस किसी देश की हो– अपने आपको गंगा में फेंक दे– चाहे उसके प्राण यह काम करने में रहें चाहे जायं– तो इस कार्य में प्रेरक आचरण की मौनभाषा किस देश में, किस जाति में और किस काल में, कौन नहीं समझ सकता?"

निबंध के इन चार प्रकारों के अतिरिक्त भी विद्वानों ने अन्य अनेक आधारों पर निबंध का वर्गीकरण किया है। लेखक के व्यक्तित्व के आधार पर निबंध को आत्मपरक और

टिप्पणी

वस्तुपरक दो प्रकारों में विभाजित किया गया है। निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व की प्रधानता रहती है इसलिए इस प्रकार का विभाजन बहुत उपयोगी नहीं है। निबंध लेखन की शैली के आधार पर भी निबंध को कई प्रकारों में विभाजित किया गया है, जैसे– वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, ललित शैली, व्यंग्य शैली, समास शैली, व्यास शैली आदि। भाषा के आधार पर भी निबंध को भेदों–उपभेदों में विभाजित किया जा सकता है। पर इन समस्त भेदों को हम ऊपर के चार भेदों में समाहित कर सकते हैं। अतः निबंध के उपर्युक्त तीन प्रकारों को ही उचित और सटीक मानना चाहिए।

5.5 निबंध के तत्व

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह निबंध के भी कुछ प्रमुख तत्व होते हैं जिनके आधार पर निबंध की रचना होती है। निबंध के तत्व के रूप में वैयक्तिकता, वैचारिकता, स्वच्छन्दता, एकान्विति, भाषा, शैली, कलात्मकता, संक्षिप्तता आदि अनेकानेक बिन्दुओं की गणना की जाती है। इनमें से निम्न को निबंध का प्रमुख तत्व मान सकते हैं–

1. **आत्माभिव्यंजना या वैयक्तिकता :** आत्माभिव्यंजना का मतलब होता है अपने आप की अभिव्यक्ति। निबंध विधा का यह प्राथमिक तत्व है। हिन्दी के सबसे सम्मानित निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि, "आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात व्यक्तिगत विशेषता हो।" कोई भी निबंध तब तक निबंध नहीं माना जा सकता जब तक कि उसमें से लेखक का व्यक्तित्व न झांक रहा हो। हजारीप्रसाद द्विवेदी और रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों को पढ़कर पाठक को सहजता से यह अंदाजा लगा लेना चाहिए कि इसके लेखक शुक्लजी हैं और दूसरे के द्विवेदीजी। रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों को पढ़कर हम आसानी से उनके व्यक्तित्व की गंभीरता का अंदाजा लगा लेते हैं। इसीलिए बाबू गुलाबराय कहते हैं कि किसी निबंध में लेखक के व्यक्तित्व को छुपाया ही नहीं जा सकता।

निबंध विधा के जन्मदाता मोंतेन ने कहा था कि अपने निबंधों का विषय मैं हूं और मैं अपनी मन की मौज में निबंध लिखता हूं। इससे स्पष्ट होता है कि निबंध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व आत्माभिव्यंजना है। वैसे मोंतेन आत्माभिव्यंजना को स्वच्छंदता के स्तर तक ले जाते हैं। निबंध में निबंधकार की चेतना का मुक्त–प्रवाह तो होता है लेकिन उस प्रवाह की भी एक सीमा होती है और उसका एक निश्चित प्रारूप भी होता है। किसी भी निबंध में निबंधकार का व्यक्तित्व दो रूपों में आता है। पहला, निबंध के लिए निर्धारित विषय के प्रति निबंधकार की तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में और दूसरा उसकी जीवन–दृष्टि के रूप में। पहले स्तर पर उसका तात्कालिक व्यक्तित्व प्रकट होता है और दूसरे स्तर पर उसका मूल व्यक्तित्व प्रकाशित होता है। तात्पर्य यह कि किसी भी निबंध में निबंधकार के सम्पूर्ण आत्म या पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यंजना होनी चाहिए केवल उसके एक पक्ष की नहीं। व्यक्तित्व का यह प्रकाशन विषय के चयन से लेकर उसकी प्रस्तुति तक

टिप्पणी

में झलकता है। आचार्य शुक्ल पश्चिमी ज्ञान से प्रभावित थे और उसकी उनकी चेतना के निर्माण में बड़ी भूमिका थी इसीलिए उन्होंने मनोविकार जैसे गंभीर विषय पर निबंध लिखे जबकि हजारीप्रसाद द्विवेदी को भारतीय परंपरा का बेहतर ज्ञान था जिस वजह से उन्होंने 'अशोक के फूल' और 'कुटज' जैसे निबंध लिखे।

2. वैचारिकता : वैचारिकता निबंध का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। साहित्य की सभी विधाओं में निबंध सर्वाधिक विचार–प्रधान विधा है। यदि किसी निबंध में वैचारिकता का अभाव और तथ्यों की भरमार हो तो उसे लेख कहेंगे, निबंध नहीं। हमारी आम समझ के अनुसार साहित्य में संवेदना या भावना की प्रधानता होती है, ऐसे में साहित्य की किसी विधा में विचारों की प्रधानता की बात थोड़ी खटकती है। परंतु कोई भी भाव विचार शून्य नहीं होता। यहां विचारों की प्रधानता का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में निबंध में विचारों की प्रधानता होती है। वैसे निबंध में भी विचार भावना से युक्त होकर ही आते हैं। अंतर सिर्फ इतना होता है कि इसमें कविता या कहानी की तरह भावों का घनीभूत रूप नहीं मिलता। साहित्य की अन्य विधाओं में विचार भावों के भीतर छिप कर आता है जबकि निबंध में भाव और विचारों की अलग–अलग सत्ता बनी रहती है। विचारप्रधान निबंधों में यह अलगाव ज्यादा दिखता है और ललित निबंधों में कम। निबंध में उपस्थित विचारों की सबसे बड़ी खासियत यह होती है कि इस पर निबंधकार की छाप होती है। यह उसके निजी विचार होते हैं। किसी विषय, वस्तु या घटना को देखकर उसके मन जो विचार उत्पन्न होते हैं उन्हें ही वह अपने निबंध में प्रस्तुत करता है। विचारों की यह मौलिकता जितनी अधिक होगी निबंध की श्रेष्ठता उतनी अधिक होगी। निबंध में विचारों की उपस्थिति तथ्यात्मक न होकर कथात्मक तरीके से होनी चाहिए। जो निबंध विचारों के बोझ से पाठकों के भीतर ऊब पैदा कर दे उसे बेहतर निबंध नहीं कहा जायेगा। निबंध में विचार रोचक तरीके से आने चाहिए। उसमें अपने पाठकों को डुबो देने की क्षमता होनी चाहिए। निबंध में विचारों की क्रमबद्ध उपस्थिति आवश्यक है। ये विचार तार्किक तरीके से आने चाहिए। विषय से संबंधित केंद्रीय विचार के बाद उसकी क्रमवार व्याख्या हो। केंद्रीय विषय के एक–एक पहलू को खोला जाय। निबंध में विचारों का मुक्त प्रवाह भी हो लेकिन यह ध्यान रखते हुए कि उसमें एक भी बात अतिरिक्त न हो। इसमें विचारों की ठूंस–ठांस की जगह उसका व्यवस्थित रूप ज्यादा आवश्यक है। साहित्य एक विचार–प्रधान विधा है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उसमें विचारों की अतिशय उपस्थिति हो। इसमें विचार ऐसे सजाये जाने चाहिए जिसको पढ़कर लगे कि न तो इसमें कोई बात छूटी है और न ही कोई बात अतिरिक्त है। इसमें आये विचार प्रमाणिक होने चाहिएं जिससे पाठकों के भीतर विश्वसनीयता का जन्म हो। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि एक निश्चित सीमा में व्यवस्थित तरीके से आये विचार ही निबंध को पूर्ण बनाते हैं।

3. शैली : निबंध के तत्वों में शैली की महत्ता असंदिग्ध है। काव्य में कल्पना, उपन्यास में कथा और नाटक में संवाद की जो भूमिका होती है वही निबंध में शैली की भूमिका होती है। साहित्य की अन्य सभी विधाओं में निबंध शैली पर सर्वाधिक

टिप्पणी

आश्रित है। साहित्य की अन्य विधाओं में शैली उसके शिल्प का एक हिस्सा मात्र होती है। कोई कहानीकार चाहे तो आत्मव्यंजक शैली में कहानी लिख दे या संबोधनात्मक शैली में। पर निबंधकार को इतनी छूट नहीं होती। यदि किसी कहानीकार की शैली कमजोर हो और कथा मजबूत हो तो भी वह पाठक को प्रभावित कर पाने में सक्षम हो सकता है। लेकिन निबंध के साथ ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि निबंध का कोई निश्चित शिल्प नहीं होता, उसकी सारी व्यंजनाएं शैली पर ही आधारित होती हैं। शिल्प सामूहिक होता है लेकिन शैली निजी। निबंध का मूलभूत तत्व आत्माभिव्यक्ति है इस कारण निबंध लेखन में निबंधकार की निजी शैली की छाप आवश्यक है। यदि किसी निबंधकार की अपनी शैली नहीं है तो उसे कमजोर रचनाकार माना जायेगा। शैली का चयन लेखक की व्यक्तिगत पसंद होती है। यह निबंध लेखन की प्रक्रिया में भी विकसित होती है।

निबंध की शैली सरस, सजीव और उन्मुक्त होनी चाहिए जिससे पाठक का मन रमे। निबंध की शैली में उन्मुक्तता पर सर्वाधिक बल दिया गया है। उन्मुक्तता का अर्थ है कि लेखक विचार के घोड़े को अपनी मर्जी के साथ सरपट दौड़ाये। ऑरलो विलियम नाम के एक विद्वान ने लिखा है कि, "निबंध लेखक अपनी वैयक्तिकता की सम्पूर्ण विचित्रताओं को चित्रित करने के लिए अपनी लेखनी को स्वच्छन्द छोड़ देता है। शैली की यह उन्मुक्तता ही तो निबंध का एक प्रमुख तत्व है। जिसके पास यह शैली नहीं, उसे निबंध की ओर कदम क्यों बढ़ाना चाहिए?" निबंधकार अपनी शैली के द्वारा ही कठिन–से–कठिन विषय को भी कई रंग और रूपों में सजाकर पाठकों के लिए रोचक बना देता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने निबंधों में कितनी सारी गूढ़ बातें गप्प की शैली में कह जाते हैं। निबंध की शैली स्वीकारात्मक, आकर्षक और मनोरंजक होनी चाहिए जिससे पाठकों का भरोसा जीत कर उसे आसानी से अपनी बात समझायी जा सके। बौद्धिक विचारों की शुष्कता और दुरूहता को दूर करने में शैली की प्रभावी भूमिका होती है। निबंध की प्रभावशाली शैली का निर्माण शब्द–चयन और उसके कौशलपूर्ण प्रयोग, लोकोक्ति–मुहावरे और दैनिक जीवन की घटनाओं के उचित समावेश और भाषा के सामर्थ्य के सदुपयोग के द्वारा होता है। निबंध लेखन में व्यंग्यात्मक, विचारात्मक, समास–प्रधान, व्यास–प्रधान, आत्मव्यंजक, वर्णनात्मक, भावात्मक आदि कई शैलियों का उपयोग होता है।

5.6 निबंध–लेखन कैसे करें?

निबंध को 'रूपहीन रूपबंध' कहा जाता है। मतलब यह कि निबंध लिखने की कोई खास प्रविधि नहीं है। निबंध में जो चीज सबसे आवश्यक है वह लेखकीय व्यक्तित्व का प्रकाशन। वैसे पारम्परिक रूप से निबंध लिखने का एक निश्चित ढांचा विकसित हुआ है जिसमें बंध कर विद्यार्थी निबंधों का लेखन करते हैं। परंतु इस पद्धति से लिखे जाने वाले निबंधों को लेख कहना ज्यादा श्रेयस्कर है। लेख और निबंध का सबसे बड़ा अंतर यह है कि निबंध आत्मपरक होता है जबकि लेख वस्तुपरक। लेख प्रायः तात्कालिक होते हैं जबकि निबंध दीर्घकालिक। लेख में संरचना और सूचना पर बल होता है जबकि निबंध में बातों को कहने

टिप्पणी

की शैली पर। विद्यार्थियों द्वारा लिखे जाने वाले निबंध वस्तुपरक ज्यादा होते हैं, आत्मपरक कम। हमें निबंध लेखन के दौरान निबंध और लेख के बीच की राह निकालनी होती है। उसमें व्यक्तित्व का प्रकाशन भी होना चाहिए और तथ्यों की प्रस्तुति भी। निबंध लेखन को निम्न क्रम में लिखा जा सकता है– 1. प्रस्तावना, 2. सामग्री और पद्धतियां, 3. परिणाम, 4. वाद–विवाद और 5. निष्कर्ष। वैसे हर विद्यार्थी निबंध–लेखन की अपनी शैली निर्मित और विकसित करने के लिए स्वतंत्र है और उसे ऐसा करना भी चाहिए।

1. **प्रस्तावना :** यह निबंध का आरम्भिक हिस्सा होता है, जो एक पैराग्राफ में लिखा जाता है। इसके माध्यम से ही पाठक निबंध में प्रवेश करता है, अतः आपसे अपेक्षा की जाती है आप इसमें निबंध से संबंधित सभी महत्वपूर्ण तथ्यों को सिलसिलेवार तरीके से रख देंगे। तथ्यों को विस्तृत रूप में न रखकर इस तरह रखा जाना चाहिए कि पाठक के मन उस विषय के प्रति जिज्ञासा पैदा हो जाये और वह अगला पैराग्राफ पढ़ने के लिए बाध्य हो जाये।
2. **सामग्री :** प्रस्तावना में प्रस्तुत विचारों को उसके अगले हिस्से में विस्तार दिया जाता है। निबंध की शब्द–सीमा के अनुसार यह एक या दो पैराग्राफ में लिखा जाता है। इसमें तथ्यों को आंकड़ों और प्रमाण के साथ पुष्ट किया जाता है। ध्यान रहे कि आपके द्वारा प्रस्तुत आंकड़ें गलत न हों, वर्ना पाठक का भरोसा टूट जायेगा। उन्हीं आंकड़ों को दिया जाना चाहिए जो विषय से संबंधित हों। विषय से असम्बद्ध आंकड़े अनावश्यक जगह घेरने के साथ ही निबंध को कमजोर बनाते हैं। निबंध लेखन के दौरान विषय के चयन के दौरान इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिस विषय से संबंधित आंकड़े आपके पास हों उसी विषय पर आप निबंध लिखें।
3. **परिणाम :** जिस विषय पर आप निबंध लिख रहे हैं उसके बारे में निबंध के इस हिस्से में आपकी अपनी जो राय है उसे रखें। आपकी राय तार्किक और तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। आपकी राय जितनी प्रभावी होगी आपका निबंध उतना ही बेहतर होगा। निबंध के इस भाग में आपको अपने व्यक्तित्व के प्रकाशन का पर्याप्त मौका रहता है, अतः आपको निर्भीक होकर अपनी बात कहनी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि आप 'आतंकवाद' विषय पर निबंध लिख रहे हैं तो बगैर किसी धार्मिक पूर्वाग्रह के आपको आतंकवाद के विषय में अपनी निष्कर्षात्मक टिप्पणी देनी चाहिए।
4. **वाद–विवाद :** जिस विषय पर आप निबंध लिख रहें हैं उसके पक्ष या विपक्ष में आपने अपनी जो राय रखी है उसका तार्किक आधार आपको निबंध के इस हिस्से में रखना होगा। केवल अपनी राय रख देने मात्र से पाठक आश्वस्त नहीं हो जायेगा, क्योंकि प्रत्येक मुद्दे पर हर व्यक्ति की अपनी एक राय होती है। वाद–विवाद के द्वारा हमें उस राय का खंडन और अपने पक्ष की स्थापना करनी होगी। इसके लिए जरूरी आंकड़े और मौलिक तर्क दिये जाने चाहिएं।
5. **निष्कर्ष :** निबंध के अंतिम पैराग्राफ में हमें अपना निष्कर्ष दे देना चाहिए। यह निष्कर्ष बिल्कुल साफ और दुविधारहित होना चाहिए। हमारा निष्कर्ष ऊपर लिखी गयी बातों के क्रम में होना चाहिए। ऐसा न हो कि हमने तर्क–वितर्क कुछ किया हो और निष्कर्ष कुछ और दे रहे हों।

5.7 निबंध लेखन की विशेषताएं

टिप्पणी

निबंध की परिभाषा से लेकर, उसके तत्वों के विश्लेषण के क्रम में आप निबंध विधा से अच्छी तरह से परिचित हो गये होंगे। इस दौरान निबंध विधा की तमाम विशेषताओं की पहचान भी आपको हो गयी होगी। यहां हम उन्हीं के आधार पर निबंध लेखन की कुछ प्रमुख विशेषताओं को आपके सामने रख रहें जिससे आपको निबंध लेखन में मदद मिल सके–

व्यक्तित्व का प्रकाशन : आत्माभिव्यक्ति नामक निबंध के तत्व के अंतर्गत आपने निबंध के लेखन में लेखकीय व्यक्तित्व की भूमिका को जान लिया है। निबंध में निबंधकार के व्यक्तित्व की विशेषताओं का उभर कर सामने आना आवश्यक है। व्यक्तित्व का यह प्रकाशन स्वाभाविक रूप से होता है। निबंधकार पाठकों से मित्र की तरह बातें करते हुए सहज भाव से अपने विचारों को उसके समक्ष रखता है। पाठक और निबंधकार के बीच की दूरी जितनी कम होगी निबंधकार का व्यक्तित्व उतना खुल कर आयेगा और निबंध में उतनी ही सरसता बढ़ेगी।

एकान्विति : किसी भी निबंध में विचार एक–दूसरे से गुथे होने चाहिए। विचारों का अनियंत्रित बिखराव निबंध की बहुत बड़ी कमजोरी है। विषय विशेष पर निबंधकार की पकड़ के आधार पर ही निबंध की एकान्विति या एकसूत्रता टिकी होती है। यदि हमें विषय का बेहतर ज्ञान होगा तो हम उसे सूत्रबद्ध और क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत करेंगे। व्यक्तित्व के प्रकाशन के बहाने से विचारों की असम्बद्ध प्रस्तुति कमजोर निबंध की पहचान है। आचार्य शुक्ल का कहना है कि, "व्यक्तिगत विशेषता का मतलब यह नहीं है कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की शृंखला रखी ही न जाय या जानबूझकर उसे जगह–जगह से तोड़ दिया जाय। भावों की विचित्रता दिखाने के लिए अर्थयोजना की जाय, जो अनुभूति के प्रकृत या लोकसामान्य स्वरूप से कोई सम्बंध ही न रखे, अथवा भाषा से सरकस वालों की–सी कसरतें या हठयोगियों के–से आसन कराये जायें, जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवा और कुछ न हो।"

प्रवाह : निबंध में विचारों का प्रवाह होना चाहिए। विचारों के क्रम में टूटन और विषय से हटकर किसी अन्य तथ्य की ओर का भटकाव निबंध के प्रवाह को बाधित करता है। निबंध का रचाव ऐसा होना चाहिए कि पाठक एक बार उसे पढ़ना प्रारम्भ करे तो उसे अंत तक समाप्त करके ही दम ले।

रागतत्व की प्रधानता : निबंध लेख की तरह शुष्क नहीं होता। इसमें निबंधकार पाठक के साथ आत्मीय नाता बनाकर अपनी बात कहता है। निबंध पढ़ते हुए पाठक का विषय के साथ–साथ निबंधकार से भी रागात्मक नाता विकसित हो जाता है। यह जुड़ाव ही निबंध को खास बनाता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी या सरदार पूर्णसिंह के निबंधों के अध्ययन के दौरान आप विषय से इस कदर जुड़ जाते हैं कि वह आपकी भावना का हिस्सा हो जाता है। द्विवेदीजी के निबंध 'कुटज' को पढ़ने के बाद प्रकृति के छोटे–से–छोटे पौधे के प्रति राग उत्पन्न हो जाता है।

5.8 निबंध लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियां

टिप्पणी

निबंध का लेखन आसान काम नहीं है। आचार्य शुक्ल का कहना है कि 'यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है।' निबंध लेखन तात्कालिक काम नहीं। यह किसी व्यक्ति के समस्त ज्ञान और जीवनानुभवों के आधार पर लिखा जाता है। इसके लेखन की कोई निर्धारित प्रविधि भी नहीं है। ऊपर निबंध के तत्व और उसकी विशेषताएं बतायी गयी हैं जिनको ध्यान में रखकर हम किसी विषय पर निबंध लिख सकते हैं। निबंध का लेखन हमारे अभ्यास पर आधारित है। हम जितने अधिक निबंध लिखेंगे उतना अधिक हमारा निबंध लेखन उत्कृष्ट होता जायेगा। यहां हम निबंध लेखन के दौरान ध्यान रखने वाले मुद्दों पर विचार करेंगे। निबंध लेखन के दौरान निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. **विषय का चयन** : निबंध के लिए निर्धारित विषय के चयन के दौरान इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम उसी विषय को चुनें जिसके विषय में हमारी समझ सबसे अधिक हो। इसके लिए थोड़ा समय देकर विचार करना चाहिए। जिस विषय पर हम निबंध लिखना चाहते हैं उसके कुछ प्रमुख बिन्दुओं को रफ–कार्य की जगह लिख लेना चाहिए। ऐसा करने से दो बातें स्पष्ट हो जायेगी। पहली यह कि हमने जिस विषय का चयन किया है उसके प्रमुख बिन्दु हमारे सामने आ जायेंगे, और दूसरा यह कि जिस विषय का चयन हमने किया है यदि उससे संबंधित तथ्य या विचार हमारे पास नहीं है तो आरंभ में ही हम उसका निराकरण कर लेंगे। कभी–कभी ऐसा होता है कि चयनित विषय पर निबंध लिखने के क्रम में इस बात का अहसास होता है कि इसकी जगह पर यदि दूसरे विषय का चयन किया होता तो बेहतर होता। विषय के चयन के क्रम में दो–तीन बातों का ध्यान रखें। चयनित विषय से संबंधित हमारे पास प्रचुर तथ्य हों। केवल तथ्यों के आधार पर निबंध नहीं लिखा जा सकता। तो हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि उन तथ्यों का सही विश्लेषण कर उससे संबंधित कुछ मौलिक विचार दे सकने की क्षमता भी हमारे पास होनी चाहिए।

2. **निबंध का प्रारूप** : मोटे तौर पर निबंध तीन हिस्सों में बंटा होता है– प्रस्तावना, विश्लेषण और निष्कर्ष। निबंध के आरंभ में ही हमें विषय से संबंधित सभी महत्वपूर्ण पक्षों को रख देना चाहिए। इसमें हमें केवल अपनी पसंद की ही बातों को नहीं बल्कि उसके विरोधी पक्ष को भी प्रमुखता से रखना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि हम 'विज्ञान: वरदान या अभिशाप' विषय पर निबंध लिख रहे हैं तो विज्ञान के वरदान और अभिशाप साबित करने वाले सभी विचार उसकी प्रस्तावना में ही आ जायेंगे। प्रस्तावना में केवल मूल विचार ही रखे जाते हैं, उसका विश्लेषण नहीं होता। कोशिश करनी चाहिए कि प्रस्तावना इस प्रकार लिखी जाय कि पाठक विषय के प्रति आकृष्ट हो जाए। पैराग्राफ परिवर्तित कर हमें विषय के विश्लेषण की ओर बढ़ना चाहिए। प्रस्तावना में प्रस्तुत विचारों का तथ्यात्मक और तार्किक आधारों पर विश्लेषण किया जाना चाहिए। विश्लेषण के दौरान हमें अपने मौलिक

टिप्पणी

विचारों को प्रकट करना चाहिए। इसको पढ़कर पाठक को लगना चाहिए कि यह निबंध–लेखक के अपने विचार हैं, कहीं और से नहीं लिये गये हैं। विश्लेषण के दौरान हमें निर्णयात्मक नहीं होना चाहिए। किसी एक पक्ष की ओर झुकाव हो तो कोई बात नहीं। यह निबंध लेखन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। निबंध की शब्द–सीमा के अनुसार यह एक पैराग्राफ से लेकर कई पैराग्राफ तक में फैला हो सकता है। निबंध का अंतिम पैराग्राफ उसका निष्कर्ष होता है। निष्कर्ष स्पष्ट होना चाहिए भ्रामक नहीं। ऊपर दिये गये तथ्यों और प्रस्तुत विचारों के आधार पर ही हमें निष्कर्ष देना चाहिए।

3. **क्रमबद्धता** : निबंध में विचारों का क्रमबद्ध रूप में आना अति–आवश्यक है। कई लोग निबंध को मन की मुक्त उड़ान मान कर अपने विचारों की असम्बद्ध प्रस्तुति को ही निबंध मान लेते हैं। हमारे विचार निबंध में एकसूत्र में बंधे होने चाहिए। विचार को एक शृंखला में रखने के लिए आप निबंध लिखने के पहले ही अपने विचारों का क्रम निर्धारण कर लें। उदाहरण के लिए यदि आपको 'जनसंख्या–समस्या' पर निबंध लिखना है तो पहले जनसंख्या समस्या के स्वरूप पर विचार करें, फिर उसके वर्तमान रूप पर, फिर भविष्य में पड़ने वाले उसके प्रभाव पर। यदि निबंध का स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट नहीं होगा तो उसमें व्यक्त विचारों में क्रमबद्धता भी नहीं होगी। अतः निबंध लेखन आरंभ करने के पहले ही थोड़ा समय निकालकर विचारों का क्रम–निर्धारण कर लेना चाहिए।

4. **आत्माभिव्यक्ति** : निबंध के विषय में अध्ययन करते समय हमने देखा कि निबंध की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है निबंध में निबंधकार के आत्म या व्यक्तित्व का प्रकाशन। यदि किसी निबंध को पढ़ते हुए हमें निबंधकार के व्यक्तित्व का आभास नहीं मिलता तो वह निबंध न होकर लेख हो जायेगा। इसके लिए हमें निबंध की शैली और भाषा को अपनी प्रवृत्ति के अनुसार निर्मित और विकसित करना चाहिए। यदि हम गंभीर व्यक्तित्व के हैं तो हमें भाषा में भी वैचारिकता को प्रधानता देनी चाहिए और विचार–प्रधान शैली में निबंध लिखने चाहिए। वैसे यह चीज सायास नहीं लायी जाती बल्कि यह अनायास ही हमारी भाषा में चली आती है।

5. **रोचकता** : निबंध को हमें रोचक तरीके से लिखना चाहिए। इसके लिए हमें अपने भीतर की झिझक को निकालना होगा। निःसंकोच भाव से मुहावरों, लोकोक्तियों और भाषिक विविधता का प्रयोग निबंध–लेखन में किया जाना चाहिए। स्थानीय तथ्यों और सत्यों का उपयोग भी निबंध–लेखन में रोचकता लाता है। भाषा और शैली में नयापन लाकर भी निबंध को रोचक बनाया जा सकता है।

6. **शब्द–सीमा** : निबंध लेखन में शब्द–सीमा का बहुत अधिक महत्व है। जितने शब्दों का निर्धारण है उसी के तहत हमें अपनी बात कहनी चाहिए। कई बार यह शिकायत होती है कि विषय का रूप बहुत बड़ा है उसको कम शब्दों में नहीं लिखा जा सकता। बड़ी–से–बड़ी बात हम एक पंक्ति में कह सकते हैं और छोटी–से–छोटी बात भी कई पन्नों में लिखी जा सकती है। वैसे निबंध छोटा ही होना चाहिए। इसके लिए हमें तथ्यों और विचारों की पुनरावृत्ति या दोहराव से बचना चाहिए। एक

टिप्पणी

बात यदि हमने लिख दी है तो कोशिश करें कि घुमा–फिरा कर पुनः उसी बात का प्रकाशन न हो। इसमें होता यह है कि किसी विषय से संबंधित कोई बात हमारे दिमाग में इस कदर हावी हो जाती है कि बार–बार हम उसी को कहते हैं। इससे बचने का रास्ता यह है कि हम निबंध लेखन के पहले ही मुख्य बिंदुओं को कहीं लिख लें। फिर उसका विस्तार करें।

7. **भाषा और शैली** : निबंध की भाषा बहुत ही कसी हुई और शुद्ध होनी चाहिए। निबंध–लेखन में व्याकरण और वर्तनी की भूलें नहीं होनी चाहिएं। सटीक शब्दों का चयन भी आवश्यक है। भाव के अनुरूप भाषा का रचाव होना चाहिए। इसके लिए शब्दकोशों की सहायता से हमें शब्दों के सटीक अर्थ जानना जरुरी है। वाक्य छोटे–छोटे और स्पष्ट होने चाहिए।

भाषा और भाव के समन्वित रूप को शैली कहते हैं। हमें अपनी शैली स्वयं विकसित करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति की मनोवृतियां अलग–अलग होती हैं। इसी आधार पर उनके बात करने की शैली भी अलग–अलग होती है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम निबंध अपने अंदाज में लिखें। किसी की नकल न करें। अच्छी शैली वह होती है जो पाठक को प्रभावित करती है। वह पाठक को उलझन में न डालकर विषय को उसके सामने स्पष्ट कर देती है। निबंध लेखन के लिए कई शैलियां हैं लेकिन उनमें प्रसाद और समास नामक दो शैलियां प्रमुख हैं। प्रसाद शैली में लेखक अपने विचारों को अति साधारण ढंग से सहज–सुगम भाषा में प्रस्तुत करता है जबकि समास शैली में वह कठिन शब्दों के माध्यम से अपनी बात कहता है। विद्यार्थियों को प्रसाद शैली का ही प्रयोग करना चाहिए।

5.9 निबंध–लेखन

निबंध की सभी प्रमुख विशेषताओं से आप परिचित हो चुके हैं। यहां आपके अध्ययन के लिए कुछ निबंध दिये जा रहे हैं। इनके अध्ययन से आप निबंध के प्रारूप से परिचित हो सकेंगे। इसके साथ ही आप निबंध लिखने की विधि को भी जान सकेंगे। इसमें कुछ निबंध पांच सौ शब्दों के हैं और कुछ एक हजार शब्दों के। इससे आपको छोटे निबंधों के लेखन के साथ–साथ बड़े निबंधों को लिखने में भी मदद मिलेगी।

5.9.1 विज्ञान विषय से संबंधित निबंध

विज्ञान : वरदान या अभिशाप

विश्व के इतिहास में उन्नीसवीं और बीसवीं सदी विज्ञान के विकास की सदी रही। सदियों से चली आ रही मान्यताओं, आस्थाओं और जीवन–पद्धति में वैज्ञानिक खोजों ने आमूल–चूल बदलाव कर दिया। प्राचीन काल के सपनों को विज्ञान की खोजों ने हकीकत में बदल दिया। हम आसमान में पुष्पक विमान की तरह उड़ने लगे, दूर की घटनाओं को संजय की तरह देखने लगे, लाखों मील दूर बैठे व्यक्ति से देवपुरुषों की तरह बातें करने लगे। विज्ञान ने हमारे जीवन को बहुत सहज और सरल बना दिया। हमें कठिन श्रम से मुक्त किया और सोचने–विचारने व मनोरंजन के लिए अवकाश प्रदान किया। लेकिन इन सब सकारात्मक

टिप्पणी

चीजों के साथ–साथ विज्ञान ने मानव–संहारक ही नहीं सृष्टि–विनाशक हथियारों का निर्माण कर समस्त पृथ्वी की मौत की आशंका को भी जन्म दिया। अनेकानेक आविष्कारों और उसके अनियंत्रित उपयोग ने पर्यावरण के लिए भयानक संकट पैदा कर दिया है। हमारी पृथ्वी दिनोंदिन गर्म हो रही है और यदि यह ऐसे ही गर्म होती रही तो जल्द ही समस्त भूमंडल प्राकृतिक आपदाओं का शिकार हो जायेगा। सूचना और क्रांति ने भौगोलिक दूरियां तो कम कर दी हैं लेकिन मानव मन की दूरियां बढ़ा दी हैं। वैज्ञानिक खोजों ने ईश्वर के अस्तित्व पर सवाल खड़ा कर उस बुद्धिवाद को जन्म दिया जिसने अधिकांश मानवीय मूल्यों का खात्मा कर स्वार्थ, व्यक्तिवाद और लाभ का संसार निर्मित कर दिया। दूसरी ओर आई. एस. आई. एस. जैसी कट्टरपंथी ताकतों ने इन्हीं आविष्कारों का सहारा लेकर दुनिया भर में धार्मिक आतंकवाद का प्रचार–प्रसार कर दिया है। ऐसे में यह विचार का विषय है कि विज्ञान वरदान है या अभिशाप।

संसार में प्रत्येक वस्तु के दो पक्ष होते हैं– एक सकारात्मक और दूसरा नकारात्मक। भोजन मनुष्य के जीवन के लिए अतिआवश्यक है लेकिन इसका अतिशय उपयोग जीवन के लिए संकट भी पैदा कर सकता है। विज्ञान के अभिशाप होने का एक पक्ष यह भी है। विज्ञान के विकास ने मानवीय जीवन को बहुत अधिक सरल बनाया है। इससे मनुष्य तमाम असाध्य रोगों से मुक्त हुआ। दुनिया के तमाम रहस्यों से परिचित हुआ। लेकिन इसी दौरान कुछ मानव विरोधी शक्तियों ने अपने निहित स्वार्थों द्वारा विज्ञान का उपयोग अपने स्वार्थों की पूर्ति और शक्ति के विकास के लिए करना आरंभ किया। जैसे अल्ट्रासाउंड मशीन का विकास मनुष्य के पेट में विकसित हो रही बीमारियों की जांच के लिए हुआ था, लेकिन आज उसका उपयोग कन्या–भ्रूण की हत्या के लिए किया जा रहा है। इसमें उस मशीन या विज्ञान का कोई दोष नहीं है। यह तो उस मानस का दोष है जो इसका दुरुपयोग कर रहा है। विज्ञान के ऐसे दुरुपयोगों के लिए हम उसे अभिशाप नहीं कह सकते।

विज्ञान के अभिशाप होने का एक दूसरा पक्ष यह है कि तमाम उद्योग–धंधों, परमाणु संयंत्रों, शहरों के तीव्र विकास, संचार क्रांति के उद्भव के कई साइड–इफेक्ट भी हैं। उद्योग और परमाणु संयंत्र अनेक प्रकार के प्रदूषण पैदा करते हैं। शहरों का विकास पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहा है। संचार क्रांति से अनेक नवीन रोगों का जन्म हो रहा है। यह सब मानवीय जीवन की सहजता को भी बाधित कर रहा है। यदि हम इसकी जानकारी में जाएं तो यह विज्ञान की वजह से कम हमारी विलासिता का परिणाम ज्यादा है। सरकारों की लापरवाही, कम्पनियों की मुनाफाखोरी और हमारे लोभ की वजह से ये समस्यायें ज्यादा बढ़ी हैं। यदि हम नियंत्रित रहें और सरकारें सचेत तो इन समस्याओं का मुकाबला किया जा सकता है। मोबाईल के अविष्कार ने हमारे संसार को छोटा कर दिया है लेकिन यदि हम उसी को अपना संसार बनाकर अनेक बीमारियों से ग्रस्त हो जाएं तो इसमें विज्ञान का नहीं हमारा दोष होगा। अतः हम कह सकते हैं कि विज्ञान अपने आप में अभिशाप नहीं है इसका उपयोग करने वाला मनुष्य ही इसे वरदान या अभिशाप में बदलता है।

वैज्ञानिक चेतना और धर्म

वैज्ञानिक चेतना और विज्ञान के बीच का संबंध व्यापक और गहरा है। विज्ञान उस व्यवस्थित ज्ञान अथवा विद्या को कहा जाता है– जो विचार, अवलोकन, अध्ययन और प्रयोग से मिलती

टिप्पणी

है तथा जिसका उपयोग किसी अध्ययन के विषय की मूल प्रकृति या सिद्धान्त को जानने के लिए किया जाता है। विज्ञान शब्द का प्रयोग ज्ञान की ऐसी शाखा के लिए भी करते हैं, जो तथ्य, सिद्धान्त और तरीकों को परिकल्पना से स्थापित और व्यवस्थित करती है। इस प्रकार किसी भी विषय के क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है।

चिकित्सा क्षेत्र में विज्ञान की बदौलत आज विभिन्न प्रकार की असाध्य बीमारियों का इलाज संभव हो सका है। नये–नये आविष्कारों से रोटी, कपड़ा और मकान ही नहीं बल्कि शिक्षा, मनोरंजन और यातायात जैसी सुविधाओं का स्तर भी दिनों–दिन बेहतर होता जा रहा है। लेकिन वैज्ञानिक चेतना का संबंध ज्ञान–विज्ञान की जानकारी और सुख–सुविधाओं के निर्माण हेतु भौतिक संसाधनों का आविष्कार करना भर नहीं है, अपितु इसका संबंध तर्कशीलता और विवेक से है। जिन लोगों को ज्ञान–विज्ञान की जानकारी और उपलब्धियां हासिल हों, वे सभी तर्कशील और विवेकी हों, यह जरूरी नहीं है। अक्सर यह देखा जाता है कि विज्ञान पढ़ने अथवा वैज्ञानिक आविष्कार करने वाले वैज्ञानिकों का विशेष झुकाव टोना–टोटका, आस्था, अंधविश्वास और कर्मकाण्ड की ओर रहता है।

ईश्वर, परलोक आदि के संबंध में विशेष प्रकार का विश्वास और उपासना की पद्धति को धर्म अथवा मजहब कहा गया है एवं इस आधार पर हिन्दू, जैन, बौद्ध, इस्लाम और यहूदी इत्यादि अलग–अलग धर्म हैं। इनकी अपनी मान्यता संबंधी अलग–अलग धर्म–ग्रन्थ भी हैं। जिसमें मानवीय जीवन को सुखमय बनाने हेतु अनेक प्रकार के आचार–विचार एवं नियम–कानून बताये गए हैं। प्राचीन काल में सत्ता पर पूरा नियंत्रण धर्म का ही था। कालान्तर में धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा, जातिपांति, छूआछूत और बलि–प्रथा जैसी अनेक कुरीतियां शामिल हो गई। धर्म के नाम पर ही स्त्रियों पर नाना प्रकार के शिकंजे कस दिए गए। टोनही के नाम पर प्रताड़ित करना, बालिका–वधू, सती प्रथा, दासी और विधवा जैसी समस्याएं इसी की देन हैं ।

यूरोप में पुनर्जागरण के काल से विज्ञान के प्रति एक नयी चेतना विकसित हुई। गैलिलियो, कॉपरनिकस और ब्रूनों जैसे वैज्ञानिकों ने धार्मिक मान्यताओं को प्रश्नांकित कर संसार एवं प्रकृति के बारे में वैज्ञानिक विधि से सोचना आरंभ किया। पूंजीवादी दौर में वैज्ञानिक चेतना के विकास के फलस्वरूप ईश्वर केन्द्रित सामन्ती समाज अब मनुष्य केन्द्रित पूंजीवादी समाज में तब्दील हो गया। तथ्य और तर्क की कसौटी पर परखने के कारण धर्म की जगह वैज्ञानिक चेतना का महत्व बढ़ने लगा।

लेकिन विज्ञान और तकनीकी के इस आधुनिक युग में आज भी धर्म के नाम पर जो प्रक्षेप चल पड़े हैं, उसका निर्मूलन अब भी नहीं हो सका है। आज भी डायन होने के संदेह पर महिलाओं को मौत के घाट उतार दिया जा रहा है। जादू–टोना, भूत–प्रेत, छुआछूत, अंधविश्वास जैसी कुरीतियों का धर्म के नाम पर आज भी बोलबाला है। आज फेसबुक, ट्विटर और व्हाट्स–एप इत्यादि अन्य इंटरनेट एप्लीकेशन धर्म और जातिगत विभेद पैदा करने का सशक्त माध्यम बन चुके हैं। टी.वी. चैनलों एवं अखबारों में नजर सुरक्षा कवच, हनुमान सिद्धि यंत्र अथवा अल्लाह की बरकत वाली ताबीज बिकना सामान्य बातें बन चुकी हैं। धर्म के स्थान पर विज्ञान के सहारे हम जिस आधुनिकता के प्रवेश की बात करते हैं दरअसल उस विज्ञान में अब पुनः धर्म ने सेंध लगा ली है। अब अपने–अपने धर्म के वर्चस्व

टिप्पणी

की खातिर जगह–जगह साम्प्रदायिक तनाव फैलता जा रहा है। इसलिए हम वैज्ञानिक आविष्कारों को जितना अधिक महत्व देते हैं, उससे कम महत्व यदि वैज्ञानिक चेतना का न समझें तब निश्चित ही धर्म की तमाम बुराइयों के प्रतिकार करने का एक सशक्त विकल्प के रूप में यह प्रस्तुत होगा।

5.9.2 समसामयिक विषय से संबंधित निबंध

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या

पृथ्वी पर उपस्थित संपूर्ण जड़ और चेतन पदार्थों के सम्मिलित रूप को पर्यावरण, पारिस्थितिकी, जैवमंडल अथवा वातावरण के नाम से संबोधित किया जाता है। आधुनिक समय में प्रौद्योगिक तकनीक के उदय ने जिन भौतिक संसाधनों की अभिवृद्धि की वे सभी अन्ततोगत्वा प्रदूषणकारी साबित हुए हैं। आज जबकि प्रौद्योगिकी अपने चरम पर है तब प्रदूषण की समस्या भी विकराल होती जा रही है।

प्रदूषण की समस्या को अनेक रूपों में वर्गीकृत किया गया है। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण सबसे महत्वपूर्ण हैं। वाहनों की बढ़ती तादाद को वायु और ध्वनि प्रदूषण की एक बड़ी वजह मान सकते हैं। फैक्ट्रियों, कल–कारखानों और औद्योगिक परिसर में लगी चिमनियां लगातार जहरीली गैस का उत्सर्जन कर वायुमण्डल को प्रदूषित कर रही हैं । अपशिष्ट पदार्थों, प्लास्टिक कचरा इत्यादि को खुले में जलाकर वायु की गुणवत्ता को बिगाड़ा जा रहा है। अधिकतर वायु प्रदूषण रोजमर्रा के परिवहन के द्वारा होता है। इससे निकलने वाली कार्बन डाइऑक्साइड और कार्बन मोनो ऑक्साइड जीव–जन्तुओं की प्राणवायु ऑक्सीजन के स्तर को कम कर रही हैं। वायु प्रदूषण के कारण दमा, कैंसर, हार्ट–अटैक और श्वसन तंत्र से संबन्धित रोग बढ़ते जा रहे हैं।

जल प्रदूषण भी एक गंभीर मुद्दा है। कल–कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों, केमिकलों और अणु बिजली घरों से निकलने वाले कचरों को बिना फिल्टर किए सीधे नदी एवं नालों में प्रवाहित कर दिया जाता है। गांवों एवं शहरों की गंदगी भी नालियों से होकर नदी के द्वारा समुद्र में मिल जाती है। इस दौरान जहां से भी होकर वह प्रवाहित होती है, पानी को प्रदूषित करती चली जाती है। इसका असर जलीय जीव–जन्तुओं पर तो पड़ता ही है साथ ही साथ स्थलीय जीव–जंतुओं पर भी विभिन्न प्रकार के रोगों के लक्षण इसके प्रयोग से दिखने लगे हैं। भू–खदानों के अन्धाधुन्ध दोहन के कारण भूमिगत जलस्रोतों में फ्लोराइड इत्यादि की अधिकता के कारण लोगों में असमय बुढ़ापे का असर दिखने लगता है। हाथ–पैर के अचानक पंगु हो जाने और लकवा जैसी असाध्य बीमारियों का कारण भी यही जल–प्रदूषण है। खेतों में रासायनिक खाद तथा हानिकारक कवक एवं कीटनाशकों के प्रयोग से कई लाभकारी जलीय जीव जो खेतों की उर्वरक शक्तियों को बढ़ाने में मदद करते हैं, उनकी भी मृत्यु हो जाती है।

मृदा प्रदूषण अथवा भूमि प्रदूषण के कारण धरती की ऊपज शक्ति क्रमशः क्षीण होती चली जा रही है। खदानों से बाक्साइड, कोयला एवं लौह तत्वों की खुदाई कर भूमि खोखली कर दी जा रही है और उसके अपशिष्टों को फेंककर कचरों का पहाड़ बना दिया जा रहा है, जिसके कारण भू–स्खलन और बाढ़ और अकाल जैसी समस्याएं दिन–प्रतिदिन बढ़

टिप्पणी

रही है। ध्वनि प्रदूषण भी पर्यावरण प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है। लगातार बढ़ रहे कल–कारखानों, वाहनों तथा लाऊडस्पीकरों के प्रयोग से यह समस्या विकराल रूप ग्रहण करती चली जा रही है। आजकल लोगों को कम सुनाई देना, एलर्जी एवं त्वचा रोग जैसी समस्याएं इसी की देन हैं। इलेक्ट्रॉनिक्स कचरा भी आज एक नयी समस्या बन कर उभर रही है।

पर्यावरण प्रदूषण से निजात तभी संभव है जब कि हम आधुनिक भौतिक संसाधनों का कम–से–कम उपयोग करें और विकल्प के रूप में सोलर एनर्जी, वायु तथा जल संपदा का अधिकाधिक दोहन करें एवं अधिक–से–अधिक वृक्षारोपण के लिए लोगों को जागरूक करें।

परिवार नियोजन : समस्या और समाधान

भारत में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या आज देश की एक गंभीर समस्या बन गई है। देश में बेरोजगारी, भूखमरी, कुपोषण और गरीबी जैसी सैकड़ों समस्याएं इसी की देन हैं। संपूर्ण विश्व में चीन के पश्चात् भारत सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। जिस तीव्र गति से हमारी जनसंख्या बढ़ रही है उसे देखते हुए यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि आगामी कुछ वर्षों में यह चीन से भी अधिक हो जाएगी। जनसंख्या वृद्धि की दर का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद केवल सात दशकों में यह तैंतीस करोड़ से सौ करोड़ के आंकड़े को पार कर गई है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत इस समय दुनिया का दूसरा बड़ा देश है।

भारत में आदिम युग से ही संयुक्त परिवार की मान्यता रही है। कृषि प्रधान देश होने के कारण पहले श्रम हेतु परिवार में अधिक–से–अधिक व्यक्तियों का आशय– अधिक से अधिक उपज था। ग्रामीण समाज में जनबल का आशय सुरक्षा बोध को विकसित करना था। इसलिए परिवार में किसी स्त्री की मंगलकामना हेतु प्रचलित वाक्य– 'दूधो नहाओ, पूतो फलो' था। जनसंख्या वृद्धि के मुख्य कारण अशिक्षा, अन्धविश्वास, मृत्यु दर में नियंत्रण, बहु–विवाह और बाल–विवाह इत्यादि हैं। पुरुष समाज की प्रधानता और अशिक्षा के कारण लड़के की चाह में कई संतान पैदा कर लेना यहां आम बात रही है। लेकिन इसके बाद उनका उचित भरण–पोषण न कर पाने की सामर्थ्य के कारण वे गरीबी एवं कष्टमय जीवन जीते रहते हैं। बाल–मजदूरी जैसी समस्या इसका मूलाधार है।

परिवार नियोजन समूची मानव जाति के कल्याण के लिए आवश्यक है। एकल परिवार में व्यक्ति अपनी संतान की परवरिश अच्छी तरह से कर सकता है। कम बच्चे हों तब उन्हें अच्छा स्वास्थ्य, अच्छी शिक्षा प्रदान करने में माता–पिता को विशेष परेशानी नहीं होती। देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए, निर्धनता, बेरोजगारी, कुपोषण एवं भुखमरी जैसी समस्याओं के समाधान हेतु परिवार नियोजन नितान्त आवश्यक है। आंकड़ों के अनुसार, जिन राज्यों में शिक्षा का स्तर बढ़ा है, वहां जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी आई है और निर्धनता भी घटी है। राजस्थान, बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि प्रान्तों में धीमे विकास के कारण जनसंख्या वृद्धि का अनुपात भी ज्यादा है।

संयुक्त परिवार के बदले एकल परिवार की अवधारणा पर बल देना परिवार नियोजन है। 'बच्चे दो ही अच्छे' जैसे स्लोगन और नियोजन के विविध तरीकों जैसे– निरोध, गर्भ

टिप्पणी

निरोधक गोलियां एवं इन्जेक्शन, कॉपर टी, पुरुष नसबन्दी और वैवाहिक जीवन की आयु सीमा तय करना, महिलाओं एवं शिशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा करने हेतु अन्तराल विधियों का महत्व समझाना आदि अनेक उपायों से जन–जन को परिचित करवाते हुए सरकार इस दिशा में निरन्तर प्रयासरत् है।

भारत सरकार द्वारा चलाये जा रहे इतने सारे उपायों के बावजूद आज परिवार नियोजन का कार्यक्रम पूर्णतः सफल नहीं हो सका है। अन्धविश्वास, रूढ़ियां और धार्मिक मान्यताएं इसके मार्ग में बाधक हैं। आज भी भारतीय जन मानस में कई लोग गर्भपात कराना और गर्भ–निरोधक का उपयोग करना, नसबन्दी करना आदि धर्मविरुद्ध आचरण मानते हैं। दूसरे शब्दों में, परिवार नियोजन के प्रति जागृति की कमी है। यदि भारत का प्रत्येक व्यक्ति परिवार नियोजन के प्रति जागरुक हो, तब जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण संभव हो सकता है।

5.9.3 अरुणाचल प्रदेश से संबंधित विषय

अरुणाचल प्रदेश और हिन्दी

'अरुणाचल' शब्द 'अरुण' और 'आंचल' शब्दों से बना है, जिसका अर्थ है 'सूर्य का आंचल'। अरुणाचल प्रदेश अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। 1972 ई० में अरुणाचल प्रदेश एक राज्य के रूप में अपने अस्तित्व में आया। सूर्य की पहली किरण इसी धरती से होते हुए भारत में प्रवेश करती है, जिसके कारण इस प्रदेश को अरुणाचल प्रदेश कहा जाता है। अपनी सांस्कृतिक विविधता के कारण यह 'लघु भारत' के रुप में जाना जाता है। अरुणाचल प्रदेश में कई प्रकार के जाति–उपजाति एवं धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं जिनकी अपनी अलग–अलग भाषा, बोली तथा रीति–रिवाज हैं। अरुणाचल प्रदेश भारत के सुदूर उत्तर–पूर्वीय कोने में बसा हुआ है। यह पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्यों– असम, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, मेघालय तथा सिक्किम में क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है। इसका कुल क्षेत्रफल 83,943 वर्ग कि०मी० है। अरुणाचल प्रदेश एक सीमावर्ती राज्य है। इसकी पश्चिमी सीमा भूटान से, उत्तर और पूर्व की सीमा तिब्बत–चीन से और दक्षिण–पूर्व की सीमा म्यांमार से मिलती है। तीन दिशाओं से अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं से घिरे हुए इस प्रदेश के दक्षिण में असम और नागालैण्ड है।

अरुणाचल एक पर्वतीय राज्य है जिसके अलग–अलग पर्वतीय क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न जनजातियां निवास करती हैं। इन जनजातियों के बीच भौगोलिक दूरी होने की वजह से इनकी अलग–अलग भाषायें हैं जिनके बोलने वालों के बीच आपसी संवाद कठिन है। आजादी के पहले तक इन समुदायों के बीच भौगौलिक बाधा के कारण बहुत अधिक संवाद–संपर्क स्थापित नहीं हो पाया था। अंग्रेजों ने यहां के आपसी समुदाय की संस्कृति की रक्षा के लिए इस इलाके में बाहरी लोगों के निर्बाध प्रवेश को रोक दिया था। इस वजह से अरुणाचल की अनेक जनजातियां अपने क्षेत्रों और भाषा तक ही सीमित थीं। आजादी के बाद अरुणाचली समाज का आपस में और उसके साथ ही पड़ोसी राज्य असम से सम्पर्क बढ़ा। चूंकि अरुणाचल की कोई सम्पर्क भाषा नहीं थी इसलिए आरम्भ में असमिया अरुणाचल की सम्पर्क भाषा बन गयी। लेकिन सन 62 में चीन के आक्रमण के बाद बड़ी

टिप्पणी

संख्या में सेना के जवानों और शिक्षकों की भर्ती अरुणाचल में हुई। व्यापारी भी अरुणाचल में आये। इनमें से अधिकांश हिन्दी भाषी थे और जो अन्य भाषाभाषी थे वे भी हिन्दी बोल सकते थे। इससे अरुणाचल में हिन्दी विद्यालय से लेकर बाजार तक में बोली जाने लगी। धीरे–धीरे हिन्दी का विस्तार इस तेजी से बढ़ा कि आज अरुणाचल की सम्पर्क भाषा हिन्दी हो गयी है। परंतु असमिया समाप्त नहीं हुई। अरुणाचली लोग असमिया में भी बात करते हैं।

आज अरुणाचल प्रदेश भारत का एकमात्र ऐसा अहिन्दी भाषी राज्य है जिसकी संपर्क भाषा हिन्दी है, और यहां हिन्दी का एक बिल्कुल नवीन रूप विकसित हो गया है जिसे हम 'अरुणाचली हिन्दी' कहते हैं। यह अरुणाचली समाज की उदार राष्ट्रभक्ति का भी प्रतीक है कि उन्होंने हिन्दी को अपनी सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया। बोलचाल के स्तर पर अरुणाचल के बाजार से लेकर प्रशासन तक का कामकाज हिन्दी में ही चलता है। 'अरुणाचली हिन्दी' यहां अब केवल बाजारों तक सीमित नहीं है बल्कि इसमें साहित्यिक अभिव्यक्ति भी हो रही है। अरुणाचल प्रदेश के एक उभरते हुए रचनाकार ताई तुगुंग ने 'अरुणाचली हिन्दी' में 'लाप्या' नामक नाटक लिखकर इसकी शुरुआत कर दी है। अभी हाल ही में जोराम यालम नाबाम का कहानी–संग्रह 'साक्षी है पीपल' का भी प्रकाशन हुआ है जिसकी हिन्दी जगत में पर्याप्त चर्चा हुई है।

अरुणाचल प्रदेश का साहित्यिक–परिदृश्य

भारत के सुदूर उत्तर–पूर्व में हिमालय की गोद में बसा राज्य अरुणाचल प्रदेश अपनी प्राकृतिक सुषमा, भाषायी विविधता, सामाजिक समरसता एवं राष्ट्रवादी निष्ठा के लिए प्रसिद्ध है। अरुणाचल प्रदेश भाषायी विविधता का अद्भुत नमूना है। 'मोनो लिंग्वल' समाज बनने की ओर बढ़ रहे भारतीयों के लिए यह एक प्रेरणा भी है और प्रमाण भी। एक आम अरुणाचली कम–से–कम पांच भाषायें बोलता है– अपनी मातृभाषा, पड़ोस की जनजातीय भाषा, पड़ोसी राज्य की भाषा असमिया, सम्पर्क भाषा हिन्दी और ज्ञानार्जन की भाषा अंग्रेजी। ऐसा वह स्वेच्छा से करता है किसी राजनीतिक प्रेरणा से नहीं। भारत जैसे विशाल, प्राचीन और लोकतान्त्रिक भारत की भाषायी जरूरत इससे कम से पूरी ही नहीं होती। 'त्रिभाषा सूत्र' पर जूझ रहे और केवल अपनी ही भाषा के साम्राज्यवादी विस्तार के पूर्वाग्रह के साथ जी रहे भारतीयों के लिए अरुणाचल एक मिसाल है।

भाषिक विविधता की तरह अरुणाचल प्रदेश का साहित्यिक परिदृश्य भी वैविध्यपूर्ण है। आजादी के पहले तो यहां पर किसी भी प्रकार की साहित्यिक हलचल नहीं थी। तब यहां जो कुछ भी साहित्य था वह लोकभाषाओं में विद्यमान लोक साहित्य ही था। अरुणाचल की सभी जनजातियों के पास लोककथाओं, लोकगीतों, लोकगाथाओं की एक समृद्ध परंपरा है। आधुनिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार के साथ अरुणाचली युवाओं ने असमिया भाषा में साहित्य लेखन आरंभ किया। अरुणाचल के पहले रचनाकार लुम्मेर दायी असमिया भाषा में ही साहित्य लेखन करते थे। लुम्मेर दायी मूलतः उपन्यासकार थे। सन 1959 में प्रकाशित उनके पहले उपन्यास 'पहारोर हिले हिले' को अरुणाचल का पहला उपन्यास माना जाता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'उदयांचलर साधु' (1959 ई०), 'पृथ्वीर हांही' (1962 ई०), 'मोन आरु मोन' (1965 ई०), 'कन्यार मूल्य' (1965 ई०), एवं 'ऊपर महल' नामक उपन्यासों की

टिप्पणी

रचना की। अरुणाचल प्रदेश के पहले और एकमात्र साहित्य अकादमी विजेता श्री वाई०डी० थोंगची जी को उनकी असमिया कृति 'मौन उट मुखर हृदय' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। येशी दोरजी थोंगची मूलतः कहानीकार एवं उपन्यासकार हैं। इनका संबंध अरुणाचल प्रदेश की एक छोटी सी बौद्ध जनजाति से है। इनके रचना–कर्म के केन्द्र में इनकी अपनी ही जनजाति की मान्यतायें एवं रीति रिवाज हैं। इनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'सोनाम' है जिस पर एक फिल्म भी बन चुकी है। इसके अतिरिक्त उनके 'कामेंग हिमान्तर साधु', 'लिड.जिंक', 'विष्णु कन्यार देशात' नामक उपन्यास एवं 'पापोर पुखुरी', 'मौन उट मुखर हृदय' एवं 'बांह फूलर गंद' नामक कथा संग्रह प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त तागाड. ताकी, सामुरु लुड.चाड., रिंचीन नोर्बू मासोबी जैसे कुछ और रचनाकार हैं जिन्होंने असमिया में अपनी लेखनी चलायी है। श्री तागाड़ ताकी ने चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर 'बार्डर इमि' (सीमा अग्नि) नामक एक नाटक लिखा है, जो इस मामले में एक दुर्लभ पुस्तक है कि यह किसी भुक्तभोगी की लेखनी से निकली है। अरुणाचल में असमिया भाषा में साहित्य लेखन की समृद्ध परंपरा है।

असमिया के साथ–साथ अरुणाचल की स्थानीय भाषाओं में भी कहानी और कविताएं लिखी गयी हैं। अरुणाचल की 'आदी' भाषा में सर्वाधिक आधुनिक साहित्य लिखा गया है। श्री ओकेप तायेंग को आदी भाषा का पहला लेखक माना जाता है जिन्होंने सन् 1947 में ही 'पादाम आखोर' नामक पुस्तक की रचना की थी। श्री तालोम रुकबो इस भाषा के सर्वाधिक प्रतिष्ठित लेखक हैं जिन्होंने सौ से भी अधिक कवितायें 'आदी' भाषा में लिखी हैं। इनकी प्रमुख रचनायें हैं– 'आदी मीरी गोमुक', पेंगे', सोलुंग गीदी आंग' आदि। तालुक तामुक की 'नेयिये नो नेयांग नो' और 'बिक्के मिनाम्पे ई दुंग', तापोन जामो की 'सोलुंग नो आयर लंका' और 'दोन्यी पीलो ये लामे डूयारये', प्रो. तामो मिबाड. की 'तालुम लामांग', 'काड्कुट सीला' और 'बुलासी' आदी भाषा में लिखी गयी कुछ प्रसिद्ध रचनाएं हैं। अरुणाचल की अन्य भाषाओं में 'आदी' भाषा जैसी साहित्यिक समृद्धि नहीं है लेकिन उनमें भी वैचारिक अकुलाहटें शुरु हो गयी हैं। गालो भाषा के चर्चित रचनाकार जुमसी सिराम ने अपनी भाषा में 'तिंगी आलुक' नामक एक लघु उपन्यास लिखा है।

अरुणाचल की आधुनिक पीढ़ी खुद को हिन्दी और अंग्रेजी में सहज महसूस करती है इसलिए इन भाषाओं में भी इस प्रदेश में बहुत कुछ लिखा जा रहा है। वर्ष 2012 में पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित लेखिका ममाङ दायी अरुणाचल ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत में अंग्रेजी की सर्वाधिक प्रसिद्ध लेखिका हैं। पेंग्विन से प्रकाशित इनकी कहानियों के संग्रह 'द लिजेंड्स आफ पैंसम' और 'रिवर पोयम्स' शीर्षक कविता संग्रह पर देशभर में चर्चा हुई है। एल. डब्ल्यु. बापू नामक एक युवा लेखक ने अपने पहले ही उपन्यास 'खान्डुमाज कर्स' से पर्याप्त लोकप्रियता पायी है। इनके साथ–साथ प्रदीप कुमार बेहरा, मिहिन कानी, शेरफ्यू निमाचो, लोवाङ चातुङ, बोम्पी रीबा जैसे कुछ नौजवान लेखक और लेखिकायें इस प्रदेश में अंग्रेजी साहित्य के लेखन की दिशा को तय करने के लिए प्रयासरत हैं।

अरुणाचल में हिन्दी में साहित्यिक अभिव्यक्ति सबसे बाद में शुरु हुई लेकिन आज सबसे अधिक कहानियां एवं कवितायें इसी भाषा में लिखी जा रही हैं। जुमसी सिराम को हिन्दी का पहला लेखक माना जाता है। 'शिला का रहस्य', 'जाई बोने' और 'मेरी आवाज

टिप्पणी

सुनो' उनके बेहद चर्चित उपन्यास हैं। ताई तुगुंग नामक एक युवा लेखक ने सबसे पहले 'अरुणाचली हिन्दी' में 'लाप्या' नामक एक नाटक लिखकर और उसके दस से अधिक बेहद सफल मंचन कर हिन्दी की लोकप्रिय छवि को एक नया आयाम दिया है। डॉ. जोराम यालाम नाबाम का 'साक्षी है पीपल' नामक कथा– संग्रह प्रकाशित हुआ है। अरुणाचल में हिन्दी–लेखन की दिशा में उठाया गया यह एक मजबूत कदम है। इनके अलावा जमुना बीनी, तारो सिन्दिक, दोगे डोमदीर, वनश्री पार्टीन जैसे कुछ युवाओं ने राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में रचनात्मक हस्तक्षेप के माध्यम से उम्मीद जगायी है। जमुना बीनी की 'वर्दी में भिखारी' नामक कहानी और तारो सिंदिक की भारतीय समाज और राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ आग उगलती कविताओं ने अरुणाचली जनता के आक्रोश को न केवल सहलाया है बल्कि उन्हें जागरूक भी किया है।

संख्या के लिहाज से देखें तो अरुणाचल प्रदेश का साहित्यिक परिदृश्य बहुत भरा–पूरा नजर नहीं आता लेकिन गुणवत्ता भाषिक विविधता और विषय वैविध्य के लिहाज से यह परिदृश्य उत्साहवर्द्धक है। अरुणाचली रचनाकारों ने जो कुछ भी लिखा वह अपनी अंतः प्रेरणा एवं रचनात्मक निष्ठा के कारण। उन्हें न छपने की चिंता रही और न ही नाम कमाने की। छपायी की उचित व्यवस्था के अभाव में न जाने कितने अरुणाचली रचनाकार अपने लिखे शब्दों के भीतर ही खोकर रह गये। अरुणाचली युवाओं के बीच हो रही साहित्यिक सुगबुगाहटें और अंग्रेजों से मिल रहा उचित मार्गदर्शन निश्चित तौर पर अरुणाचली साहित्य को भविष्य में नए मुकाम तक पहुंचाएगा।

5.9.4 हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं से संबंधित निबंध

रिपोर्ताज और अन्य गद्य विधाएं

आधुनिक काल में विकसित हिन्दी साहित्य की अनेकानेक विधाओं में 'रिपोर्ताज' एक प्रमुख गद्य विधा है। इस विधा का विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान यूरोप में हुआ था। 'रिपोर्ताज' मूलतः फ्रांसीसी भाषा का शब्द है, फ्रांसीसी में इसे 'रिपोर्टाज' कहा जाता है। यह अंग्रेजी के 'रिपोर्ट' का लगभग समानार्थी है। हिन्दी में 'रिपोर्ट' और 'रिपोर्ताज' दोनों शब्दों का प्रचलन है। अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषा से इन्हें शब्द–अर्थ सहित स्वीकार कर लिया गया है। वैसे 'रिपोर्ताज' के लिए हिन्दी में 'सूचनिका' और 'प्रसंग–चित्र' जैसे कुछ नये पारिभाषिक शब्दों का भी निर्माण किया गया लेकिन वे प्रचलन में नहीं आ सके। समाचार–पत्रों में किसी घटना के यथातथ्य वर्णन को 'रिपोर्ट' कहा जाता है जबकि किसी प्रमुख घटना की तह में जाकर उसके मूल यथार्थ को मानवीय संवेदना और साहित्यिक भाषा के साथ अभिव्यक्त करना 'रिपोर्ताज' है। वास्तव में, 'रिपोर्ताज' वर्णन तत्व प्रधान एक घटनापरक विधा है जिसमें भावनामय सूचनाओं की प्रधानता होती है। यह सूचना–क्रांति के वर्तमान दौर की गतिशील वास्तविकता को अभिव्यक्त करने में सबसे सशक्त और सक्षम विधा है।

कई बार लोग 'रिपोर्ट' और 'रिपोर्ताज' के अंतर को महज कलात्मकता और साहित्यिकता तक सीमित कर देते हैं जबकि इनका मूल अंतर दृष्टिकोण का है। 'हिन्दी साहित्य कोश' में 'रिपोर्ताज' की परिभाषा देते हुए लिखा गया है कि, "'रिपोर्ट' के कलात्मक

टिप्पणी

और साहित्यिक रूप को ही 'रिपोर्ताज' कहते हैं।" रिपोर्ट–लेखक और रिपोर्ताज–लेखक के दृष्टिकोण में उतना ही अंतर होता है जितना बाढ़ के विषय में बाढ़ देखने गये व्यक्ति और बाढ़ में डूब रहे इंसान के बीच होता है। स्वानुभूति के स्तर पर संवेदित हुए बिना किसी घटना पर रिपोर्ताज लेखन संभव नहीं है। रामविलास शर्मा का मानना है कि रिपोर्ताज लिखने के लिए जनता से सच्चा प्रेम होना चाहिए। 'रिपोर्ताज' की भाषा साहित्यिक जरूर होती है लेकिन यह साहित्यिकता लेखक के बाहर से नहीं बल्कि उसके भीतर से आती है। चूंकि लेखक किसी घटना के प्रति अंतरतम की गहराइयों से आहत अथवा आह्लादित होता है इसलिए उसकी भाषा स्वाभाविक रूप से कलात्मक हो जाती है।

'रिपोर्ट' से विकसित होने के कारण 'रिपोर्ताज' के भीतर उसके अनेक गुणों का समावेश स्वाभाविक है। प्रमाणिकता, तात्कालिकता, सत्यता और तथ्यात्मकता जैसी 'रिपोर्ट' की विशेषतायें अनिवार्य रूप से 'रिपोर्ताज' का भी अंग होती हैं। 'रिपोर्ताज' का लेखन किसी वास्तविक घटना पर ही संभव है, कल्पना के आधार पर रिपोर्ताज–लेखन संभव नहीं है। 'रिपोर्ताज' भले ही एक साहित्यिक विधा हो लेकिन इसमें कल्पना का केवल उतना ही उपयोग संभव है जिससे किसी घटना के सत्य पर ज्यादा–से–ज्यादा तीखी रौशनी पड़ सके। साहित्य की अन्य विधाओं में किसी तथ्य से रचनाकार समय की पर्याप्त दूरी के बाद ही मुखामुखम करता है जबकि 'रिपोर्ताज' विधा में उसे किसी पत्रकार की तरह तत्काल किसी घटना के प्रति राय देनी पड़ती है। रिपोर्ताज–लेखन में यह संभव नहीं है कि आप किसी घटना के घट जाने के कई वर्षों के बाद उस पर अपनी लेखनी चलायें। समय की दूरी किसी तथ्य और उसके सत्य पर पड़ी धूल की चादर को काफी कुछ हटा देता है लेकिन साथ ही उससे जुड़े भावनात्मक आवेग को भी मद्धिम कर देता है। रिपोर्ताज–लेखक की सबसे बड़ी चुनौती सत्य और संवेदना के बीच समय के साथ संतुलन बनाने की ही होती है। एक बेहतर रिपोर्ताज–लेखक में पत्रकार जैसी तटस्थता और साहित्यकार जैसी मानवीय संवेदना और सरोकार होता है।

'रिपोर्ट' से विकसित होने के कारण 'रिपोर्ताज' में पत्रकारिता की तरह प्रत्यक्षदर्शिता और लेखक के निजी नजरिये की उपस्थिति आवश्यक है। किसी घटना से सीधे साक्षात्कार के बगैर सुनी सुनायी बात पर रिपोर्ताज नहीं लिखा जा सकता। किसी घटना के कई पहलू होते हैं, जो प्रत्यक्षानुभव के बगैर खुलते नहीं। एक बेहतर 'रिपोर्ताज' बहुकोणीय होता है। उसमें केवल किसी घटना की जानकारी संवेदना के रंग में रंग कर साहित्यिक भाषा में नहीं प्रस्तुत कर दी जाती। किसी भी घटना के कई पहलू होते हैं, जापानी फिल्म 'रोशोमन' में इसे बेहद खूबसूरती से दिखाया गया है। रिपोर्ताज–लेखक की नजर घटना के हर पहलू पर रहती है। श्रेष्ठ रिपोर्ताज–लेखक रिपोर्टर की तरह घटना का केवल बाहरी और तात्कालिक स्वरूप ही प्रकट नहीं करता बल्कि उसके इतिहास और आंतरिक पहलू पर भी प्रकाश डालता है। तात्पर्य यह कि 'रिपोर्ताज' में रिपोर्ट की तरह केवल वर्तमान नहीं रहता बल्कि उसमें भूत की जानकारी और भविष्य का दिशा–निर्देश भी रहता है, इसीलिए यह आधुनिक युग का एक 'क्रांतिकारी साहित्य रूप' है।

'रिपोर्ताज' को एक अकाल्पनिक कथेतर साहित्यिक विधा माना जाता है लेकिन कल्पना और कथा का समावेश कर इसमें सरसता और मार्मिकता के साथ–साथ विषय को

टिप्पणी

समग्रता प्रदान की जाती है। संसार का कोई भी व्यक्ति किसी भी घटना को समग्रता में नहीं देखता या नहीं देख सकता है। हम किसी घटना के महज एक पहलू को ही देखते हैं। अब यदि रिपोर्ताज लेखक महज उस देखे हुए पक्ष को ही लिख दे तो वह बहुत ही बिखरा हुआ एक अपरिपक्व रिपोर्ताज होगा। ऐसे में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर अपनी उर्वर कल्पना के आधार पर एक बेहतर रिपोर्ताज लेखक घटना के हर पहलू को जानने की कोशिश करता है और उसे अपने रिपोर्ताज में प्रस्तुत करता है। 'रिपोर्ट' जहां एक यथातथ्यवादी रचना होती है वहीं 'रिपोर्ताज' एक यथार्थवादी रचना। इसमें यथार्थ के तीनों पक्ष– भूत, वर्तमान और भविष्य– विद्यमान रहते हैं। इसीलिए संभवतः महान रिपोर्ताज–लेखक फणीश्वरनाथ रेणु ने 'रिपोर्ताज' को 'कथा–विभाग' के अंतर्गत रखा था। 'रिपोर्ताज' और 'यात्रा–वृत्तान्त' इस मामले में एक हैं कि दोनों के लेखन के लिए रचनाकार को यात्रा करनी पड़ती है, लेकिन रिपोर्ताज–लेखक की यात्रा सुनिश्चित होती है जबकि यात्रा–वृत्तान्त के लेखक की नहीं। एक के लिए यात्रा साधन है तो दूसरे के लिए साध्य। एक यात्रा में बंधा होता है जबकि दूसरा परम स्वतंत्र। एक की यात्रा का लक्ष्य मानवीय प्रकृति है तो दूसरे का ईश्वर द्वारा रचित अद्भुत प्राकृतिक संसार। रिपोर्ताज–लेखक अपने विषय के प्रति जिज्ञासा, खोजपरक आकुलता और वस्तुपरकता का आग्रही होता है तो यात्रा–वृत्त का रचनाकार निजीपन, रोमांच और प्रकृति के प्रति मुग्धभाव का। यात्रा–वृत्त में विषय को ब्यौरों में प्रस्तुत किया जाता है और यही काम रिपोर्ताज–लेखन में भी होता है।

रिपोर्ताज में रेखाचित्र विधा की भी कुछ विशेषताएं समाहित होती हैं। रिपोर्ताज में किसी घटना या हालात का चित्रण होता है जबकि रेखाचित्र के केन्द्र में सामान्यतः कोई व्यक्ति या स्थान होता है। एक में कल्पना का समावेश नहीं होता जबकि दूसरे का कल्पना और स्मृतियों के सहारे ही निर्माण होता है। रेखाचित्र में किसी वस्तु या व्यक्ति का शब्दों के द्वारा इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि उसकी भीतरी–बाहरी समस्त विशेषताएं पाठक के मनोजगत में जीवंत हो जाएं। रिपोर्ताज में भी किसी घटना को इस बारीकी से चित्रित किया जाता है कि पाठक के मन में उसका पुनर्सृजन हो जाए। इसके लिए रिपोर्ताज–लेखक रेखाचित्र विधा की तरह शब्दों के माध्यम से घटना के हर पहलू का सूक्ष्म चित्रण करता है।

वास्तव में, विधा के स्तर पर रिपोर्ताज का शिल्प बेहद लचीला है। साहित्य की किसी विधा के साथ जोड़कर इसकी रचना संभव है और इसमें सभी विधाओं के थोड़े–थोड़े गुण शामिल होते हैं। रेणु ने अपने रिपोर्ताजों में इस तरह के प्रयोग किये हैं। उन्होंने कथात्मक, संस्मरणात्मक, यात्रा–कथात्मक, औपन्यासिक सभी तरह की शैलियों में रिपोर्ताज लिखे हैं।

व्यंग्य विधा और समाज

आधुनिकता के आगमन के साथ–साथ दुनिया में गद्य विधा का जन्म और विकास हुआ, और गद्य की तमाम विधाओं में व्यंग्य नामक विधा ने दुनिया भर में आधुनिक होने के मानदंड निर्मित किये। विचारशीलता, तार्किकता, प्रश्नाकुलता, जनपक्षधरता, ईश्वर पर प्रश्न, अव्यवस्था के प्रति विद्रोह और व्यवस्था में बदलाव की कोशिश जैसे आधुनिकता को स्थापित करने वाले तमाम विचार प्रत्यक्ष रूप में जिस एक विधा में विद्यमान रहते हैं वह है–व्यंग्य विधा। यह महज संयोग नहीं है कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत जिस 'भारतेंदु युग' से होती है उसकी मुख्य विशेषता है– व्यंग्यात्मकता। यह व्यंग्य का शिल्प ही था जिसने

टिप्पणी

भारतेंदु युगीन लेखकों को अंग्रेजीराज की आलोचना का एक हथियार दिया और अंग्रेजों के कहर से उन्हें बचाया भी। भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'अंधेर नगरी चौपट राजा' इस युग की प्रतिनिधि रचना है, जिसे हिन्दी के आरंभिक व्यंग्य–नाटकों में से एक माना जाता है।

हिन्दी में व्यंग्य को साहित्य की एक स्वतंत्र विधा के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है जबकि यूरोपीय साहित्य में यह एक स्वतंत्र विधा है। अंग्रेजी साहित्य में तो सोलहवीं सदी से ही व्यंग्य लेखन हो रहा है और उसकी अठारहवीं सदी को 'एज ऑफ सैटायर' कहा जाता है। अंग्रेजी साहित्य में गद्य और पद्य दोनों शैलियों में व्यंग्य लिखा जाता है। व्यंग्य को स्वतंत्र विधा न मानने की एक बड़ी वजह इस विधा को गंभीरता से न लेना है। बहुत सारे विद्वान तो हास्य और व्यंग्य में अंतर ही नहीं करते, जबकि हास्य महज मनोरंजन तक सीमित रहता है और व्यंग्य सामाजिक बदलाव का हथियार होता है। गहन वैचारिकता ही वह बिन्दु है जो व्यंग्य को हास्य से अलग और विशिष्ट बनाता है। हास्य–लेखन में लेखक की दृष्टि पाठक की ओर होती है जबकि व्यंग्य लेखन में विषय की ओर। हास्य–लेखक विषय के साथ हल्का–फुल्का वर्ताव कर अपने पाठक का मनोरंजन करना चाहता है, जबकि व्यंग्य लेखक विषय के प्रति गहरे लगाव के कारण पाठक को गुदगुदाकर उसके प्रति जागरूक करना चाहता है। यही कारण है कि एक हास्य रचना मस्तिष्क से चलकर होंठों से ठहाके के रूप में बाहर निकल जाती है जबकि एक व्यंग्य रचना होंठों पर मुस्कान बनकर, दिल को छूकर, फिर वापस मस्तिष्क में बेचैनी पैदा कर देती है। तब स्पष्ट है कि हास्य की गति अंदर से बाहर की ओर और व्यंग्य की गति बाहर से अंदर की ओर होती है।

वास्तव में व्यंग्य जीवन से गहरी संपृक्ति, मानवता में गहन आस्था और जीवन में घनघोर विश्वास की परिणति होता है–जीवन में भी और साहित्य में भी। जीवन में जब हम किसी व्यक्ति या हालात द्वारा प्रदत्त पीड़ा से गहरे आहत और उसे बदल पाने में पूरी तरह असमर्थ हो जाते हैं तब उसपर व्यंग्य करते हैं। साहित्य में व्यंग्य–लेखन इन्हीं मनःस्थितियों में होता है। सामाजिक उत्तरदायित्व के गहन–बोध से ही व्यंग्य का सृजन संभव हो पाता है। यह बोध जितना गहरा होगा व्यंग्य की तीव्रता और कलागत श्रेष्ठता उतनी अधिक होगी। व्यंग्य की प्राथमिक शर्त है अपने समय और समाज की समस्याओं की सूक्ष्म समझ और उसे बदलने की गहरी बेचैनी। इस मायने में व्यंग्य साहित्य की सर्वाधिक समाजोन्मुखी विधा है। जहां साहित्य की अन्य विधाओं से समाज का आइना होने की चाह होती है, वहां व्यंग्य समाज का दर्पण हुए बिना सृजित और संप्रेषित ही नहीं होगा। एक व्यंग्य–लेखक की अदम्य चाह मानव की जड़ता पर प्रहार कर उसे सामाजिक विषमताओं के खिलाफ सक्रिय करने की होती है।

लोकतंत्र और व्यंग्य विधा के बीच का संबंध भी बहुत ही गहरा है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव ही नहीं है। अलोकतांत्रिक समय और समाज इतना अवकाश देता ही नहीं है कि आप उसमें घटी किसी घटना पर तंज कस सकें। उसमें तो आप सिर्फ सत्ता की भृकुटियों की परवाह करते हुए उसके इशारे पर कठपुतलियों की तरह भद्दी भंगिमायें बनाकर विचारशून्य हंसी हंस सकते हैं। सच्चे लोकतंत्र में ही आलोचना सुनने और सहने का साहस होता है। पहले तो वह ऐसे हालात पैदा नहीं करता कि किसी को व्यंग्य लिखने की आवश्यकता हो और यदि कोई व्यंग्य लिखता है तो उसको शिद्दत से पढ़ता है। तब

टिप्पणी

किसी समाज में व्यंग्य की दिशा और दशा उस समाज में लोकतंत्र के हालात को मापने का एक पैमाना भी है।

व्यंग्य में महज आलोचना नहीं होती, उसमें एक गहरी विचार–दृष्टि भी होती है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध व्यंग्यकार जेम्स सदरलैण्ड व्यंग्य के अनेक प्रयोजनों में से एक 'निरंतर और सुनिश्चित प्रयोजन' समाज में 'क्या होना चाहिए' और 'क्या है' के बीच के अंतराल के प्रति एक असमान्य संवेदनशीलता बनाये रखने को मानते हैं। 'जो है' और 'जो होना चाहिए' के बीच का द्वंद्व व्यंग्य–लेखक के भीतर तब तक पैदा नहीं हो सकता जब तक समाज को देखने की उसके पास एक सुचिंतित दृष्टि नहीं होगी। तीव्र सामाजिक संवेदनशीलता से पैदा हुई समझ को प्रकट करने के लिए ही व्यंग्य–लेखक अपनी लेखनी उठाता है, पर बहुत सावधानी से।

कई बार लोग दूसरों का मखौल उड़ाने को ही व्यंग्य मान लेते हैं, लेकिन सच्चा व्यंग्य मनुष्य मात्र को वास्तविक गरिमा प्रदान करने से जन्मता है, न कि उन्हें नीचा समझने या दिखाने से। व्यंग्य वह नहीं है जो किसी को अवसाद में डाल दे, व्यंग्य तो वह है जो उससे बाहर निकाले। व्यंग्य विधा अपनी पराकाष्ठा पर तब पहुंचता है जब उसके घेरे में 'अन्य' के साथ–साथ 'आत्म' भी आता है। हरिशंकर परसाई और रवींद्रनाथ त्यागी आदि आधुनिक व्यंग्य लेखकों की रचनाओं का सबसे प्रिय पात्र वे स्वयं होते हैं। आत्मालोचन व्यंग्य–लेखक का सर्वाधिक जरूरी औजार है। संवादधर्मिता के बगैर व्यंग्य–लेखन संभव नहीं है। व्यंग्य संवादहीनता की स्थिति नहीं, संवाद की ही एक भिन्न शैली है। जो व्यंग्य संवाद को भंग कर दे वह व्यंग्य नहीं हो सकता। व्यंग्य का उद्देश्य असंगति से संगति की ओर ले जाने का होता है। व्यंग्य अपनी रोचकता के कारण संवाद को सरस और मर्मभेद के कारण उसे परिणामी बनाता है।

हिन्दी में व्यंग्य के विकास की गतिकी यह बताती है कि जब–जब भारतीय समाज में पाखंडी और नकारात्मक प्रवृतियां प्रभावी हुई हैं तब–तब व्यंग्य की मार भी तीव्र हुई है। भारतेंदु युग में व्यंग्य साहित्य की मूल प्रवृति बनकर उभरी थी। द्विवेदी युग के बाद स्वाधीनता संघर्ष के उफान के दौर में व्यंग्य–लेखन धीमा हुआ, क्योंकि जब समाज सक्रिय होता तब व्यंग्य निष्क्रिय हो जाता है और जब समाज निष्क्रिय होता है तब व्यंग्य सक्रिय। आजादी मिलने के बाद लोगों की उम्मीदों ने सपनों के साहित्य को रचा, लेकिन जैसे ही सन साठ के बाद उससे मोहभंग हुआ हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य–लेखन हमारे सामने आया। यही वह समय है जब हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल और रवीन्द्र नाथ त्यागी जैसे व्यंग्य–लेखक सक्रिय हुए और व्यंग्य एक बार फिर हिन्दी साहित्य के केंद्र में स्थापित हो गया। धार्मिक आतंकवाद में उलझा वर्तमान पूंजीवादी समय मानव इतिहास का सर्वाधिक पाखंडी समय है, जहां दिखावा और फरेब युग–धर्म बन गया है। तब ऐसे समय में व्यंग्य लेखन की जरूरत किसी भी अन्य समय की तुलना में ज्यादा बढ़ी है।

5.9.5 अन्य विषय

शब्द दुधारी तलवार से ज्यादा तीक्ष्ण होते हैं

शब्द की महिमा का बखान करते हुए उपनिषदों में शब्द को ब्रह्म कहा गया है। शब्द को ईश्वर के समकक्ष स्थापित करने का सबसे बड़ा कारण सांसारिक जगत के संचालन में

टिप्पणी

उसकी प्रभावी और निर्णायक भूमिका है। 'काव्यादर्श' के लेखक दण्डी ने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कहा था कि यदि भाषा रूपी ज्योति नहीं जलती तो यह संसार अंधकारमय ही होता। शब्द भाषा की मूलभूत इकाई है, और इसकी अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना शब्दशक्तियों के माध्यम से भाषा का समस्त कार्यव्यापार संचालित होता है। भाषा के बगैर मानवीय अस्तित्व की कल्पना असंभव है।

भाषा का समस्त सांसारिक कार्यव्यापार उसकी व्याकरणिक संरचना और सांस्कृतिक संदर्भों पर आधारित होता है। इन दोनों स्तरों पर की गयी किसी भी प्रकार की भूल किसी शब्द या वाक्य के अर्थ का अनर्थ कर देती है। जब हम कहते हैं कि शब्द दुधारी तलवार से भी ज्यादा तीक्ष्ण होता है तब हमारा आशय यही है कि भाषा का सचेत प्रयोग जहां हमारे लिए उन्नति के मार्ग खोल सकता है वहीं इसमें हमसे हुई कोई भी भूल हमारे लिए संकट भी पैदा कर सकती है। तात्पर्य यह कि भाषा की मार दोरतफा होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कबीरदास जी ने लिखा है कि– *'एक शब्द सुखरास है, एक शब्द दुखरास, एक शब्द बंधन कटै, एक शब्द गलफास।'*

शब्द के दुधारी तलवार होने की एक वजह उसकी समाज–संस्कृति आधारित अर्थनिष्पत्तियां भी हो सकती है। शब्द और अर्थ के बीच का संबंध यादृच्छिक होता है, और इसका निर्णय शब्द के सामाजिक–सांस्कृतिक प्रयोग के द्वारा होता है। 'पंकज' एक शब्द है, जिसमें कई अर्थ निहित हैं, अब सामाजिक हालातों में किया जाने वाला इसका प्रयोग ही यह तय करेगा कि यह किसी व्यक्ति के लिए कहा जा रहा है या फूल के लिए, या कीचड़ में जन्मे किसी कीड़े के लिए। कभी–कभी समय और समाज में बदलाव के कारण किसी शब्द का बिल्कुल भिन्न ही नहीं बल्कि उल्टा अर्थ हो जाता है, और वह संकट भी पैदा कर देता है। प्राचीन काल में 'असुर' देवताओं के लिए प्रयुक्त होता था लेकिन आज किसी को असुर कह देना मुश्किल खड़ा कर देगा। कहते हैं कि हिरोशिमा पर बम गिराने की एक वजह सामाजिक–सांस्कृतिक भिन्नता के कारण शब्द के अर्थ में आने वाला बदलाव भी था। अमेरिका द्वारा पूछे गये किसी सवाल के जवाब में जपानियों ने अपनी भाषा में कहा कि 'हम विचार करेंगे', लेकिन अमेरिकी उसका मतलब 'हमें परवाह नहीं है' समझ बैठे, और हिरोशिमा पर बम गिरा दिया।

शब्द की मार दोतरफा होती है। एक तरफ वह जहां सामने वाले को आहत करती है वहीं दूसरी तरफ वक्ता को भी, इसीलिए इसकी उपमा दोधारी तलवार से दी गयी है। सामाजिक–पारिवारिक संबंधों में क्रोध में आकर किसी गलत बात को कह देने से संबंधों में टूटन आम बात है, यह टूटन दोनों को आहत करता है। जिसको कही गयी है वह तो दुखी होता ही है, क्रोध उतर जाने के बाद जिसने कही है उसे भी दुख होता है। जब हम शब्द की तीक्ष्णता की बात करते हैं तब उसके सावधान प्रयोग की ओर भी इशारा कर रहे होते हैं। शब्द का सावधान प्रयोग यदि तमाम सुखों का साधन होता है तो उसका असावधान प्रयोग अनेकानेक संकटों को आमंत्रित भी कर सकता है। लोक में एक कहावत है कि 'बात ही हाथी पाइये, बात ही हाथी लात', मतलब कि बात के द्वारा हाथी की सवारी भी संभव है और बात के ही कारण हाथी के लात के नीचे भी आना पड़ सकता है। व्यावहारिक दुनिया में वाणी के सचेत प्रयोग की बात संतों ने भी की है। रहीम कवि ने लिखा है कि– *'रहिमन जिह्वा बावरी, कहै गई सरग पताल। आप तो भीतर गई, जूती खात कपाल।'*

टिप्पणी

भाषा के बगैर मानवीय व्यवहार की परिकल्पना संभव नहीं है। आदमी के आदमी होने की पहचान और तमीज़ भाषा ही देती है, वर्ना आदमी एक दोपाया जानवर होता। किसी व्यक्ति की सामाजिक पहचान उसके भाषिक व्यवहार से ही निर्धारित होती है। हम अपने शब्द–प्रयोग के आधार पर ही बेहतर या बदतर इंसान होते हैं। मन के भीतर हम क्या सोचते–विचारते हैं, यह कौन जानता है? इसीलिए हमसे संयमित भाषा की अपेक्षा की जाती है। भाषिक व्यवहार में एक गलत शब्द का एक बार का प्रयोग भी हमारी छवि को हमेशा–हमेशा के लिए खराब कर सकता है। इसके विपरीत सही जगह पर एक सही शब्द का उच्चारण हमारी पहचान को पुख्ता बना सकता है। स्वामी विवेकानंद द्वारा शिकागो में भाषण के आरंभ में किये गये संबोधन 'माई डियर ब्रदर एंड सिस्टर्स' के प्रभाव और प्रसार को आज भी याद किया जाता है।

तलवार की तीक्ष्णता से हम सब परिचित हैं क्योंकि उसका वार बाहरी होता है, लेकिन शब्द की मार के विषय में हमें उतना पता नहीं होता, क्योंकि इसका असर आंतरिक होता है। पर यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाय तो तलवार की मार से ज्यादा भयानक वाणी का वार होता है, जो दिखता तो नहीं पर सीधे दिल में ही सुराख कर देता है। तलवार का घाव तो समय के साथ धीरे–धीरे भर जाता है लेकिन शब्द का वार तो जब कभी याद आ जाये हरा हो जाता है। यह बात व्यक्तिगत स्तर पर भी सही है, और सामाजिक स्तर पर भी। अतीत के जख्म शब्दों के माध्यम से ही आज भी हरे हो जाते हैं, वर्ना इतिहास की गलतियों का बदला हम आज से क्यों लेते?

अपनी प्रगति जांचिए

1. निबंध विधा का जन्म किस देश में हुआ?
   (i) फ्रांस
   (ii) जर्मनी
   (iii) भारत
   (iv) चीन
2. निबंध विधा को मूलतः कितने प्रकारों में विभाजित किया गया?
   (i) दो
   (ii) तीन
   (iii) चार
   (iv) पांच
3. निबंध लेखन के तीन प्रमुख तत्व बताइए।
4. निबंध लेखन की चार प्रमुख विशेषताएं बताइए।

ऋग्वेद के एक सूक्त में वाणी को 'कामधेनु–सी आनन्दप्रदा' कहा गया है। वाणी का सार्थक रूप शब्द है, अतः शब्द का सही प्रयोग समस्त मनोवांछित कामनाओं की पूर्ति में समर्थ है। वाणी द्वारा ईश्वर तक की प्राप्ति संभव हो जाती है तो सांसारिक समृद्धि की बात ही क्या है। अपनी वाक्पटुता के बल पर ही बीरबल और तेनालीराम जैसे चरित्रों ने तमाम राजसी शक्तियों और सुखों का उपभोग किया। भाषा के सावधान प्रयोग मात्र से तमाम सांसारिक सुखों की प्राप्ति बिना धन गवाये ही हो जाती है। कबीर ने लिखा है– *शब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जानै बोल। हीरा तो दामो मिलै, शब्द न मोल न तोल।*

अंत में हम कह सकते हैं कि शब्द की महिमा अपरंपार है। इसका वार अचूक होता है और असर दीर्घकालिक। यह तलवार की तरह केवल प्रतिपक्षी को ही चोट नहीं पहुंचाता, बल्कि दुधारी तलवार की तरह कभी–कभी धारक को भी अपना शिकार बना लेता है। इसलिए शब्द का प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। शब्द के उचित प्रयोग से सांसारिक के साथ–साथ ईश्वरीय भोग की प्राप्ति भी संभव है। महाभाष्य में लिखा है– *'एकः शब्दः सम्यक ज्ञानः उप्रयुक्तः स्वर्गं लोके च कामधुग भवति।'*

5.10 सारांश

'निबंध' शब्द 'बंध' धातु में 'नि' उपसर्ग लगने से बना है जिसका शब्दकोशीय अर्थ होता है– व्यवस्थित तरीके से बांधना। 'निबंध' वह विधा है जिसमें लेखक अपने विचारों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करता है। प्राचीन साहित्य में निबंध शब्द का प्रयोग लिखे हुए भोजपत्रों को

टिप्पणी

संवारकर बांधने के लिए या सीने की क्रिया के लिए किया जाता था। वर्तमान में निबंध शब्द साहित्य की उस विधा के लिए प्रयुक्त होता है जो पश्चिम के प्रभाव से हिन्दी में विकसित हुई है। फ्रेंच में किसी एक विषय का परीक्षण कर, उससे प्राप्त विचारों को व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत करने की प्रक्रिया को निबंध कहा जाता है। फ्रेंच के 'Essai' शब्द से ही अंग्रेजी का 'Essay' शब्द बना है जिसका हिन्दी अनुवाद 'निबंध' किया गया है।

निबंध के विषय से लेकर उसकी प्रस्तुति तक में पर्याप्त विविधता है। इन आधारों पर निबंध को मुख्य रूप से चार प्रकारों में विभाजित किया गया है। ये हैं– 1. वर्णनात्मक निबंध, 2. विवरणात्मक निबंध 3. विचारात्मक निबंध और 4. भावात्मक निबंध ।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह निबंध के भी कुछ प्रमुख तत्व होते हैं जिनके आधार पर निबंध की रचना होती है। निबंध के तत्व के रूप में वैयक्तिकता, वैचारिकता, स्वच्छन्दता, एकान्विति, भाषा, शैली, कलात्मकता, संक्षिप्तता आदि अनेकानेक बिन्दुओं की गणना की जाती है।

मोटे तौर पर निबंध तीन हिस्सों में बंटा होता है– प्रस्तावना, विश्लेषण और निष्कर्ष। निबंध के आरंभ में ही हमें विषय से संबंधित सभी महत्वपूर्ण पक्षों को रख देना चाहिए।

विश्लेषण के दौरान हमें निर्णयात्मक नहीं होना चाहिए। किसी एक पक्ष की ओर झुकाव हो तो कोई बात नहीं। यह निबंध लेखन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। निबंध का अंतिम पैराग्राफ उसका निष्कर्ष होता है। निष्कर्ष स्पष्ट होना चाहिए भ्रामक नहीं।

5.11 मुख्य शब्दावली

- **वस्तुपरक** : वस्तु या हालात के बाहरी रूप के विषय में।
- **आत्मपरक** : वस्तु या स्थिति के निजी रूप के बारे में।
- **आत्मनिष्ठ** : व्यक्ति के आत्म से आबद्ध।
- **अपरिहार्य** : अनिवार्य, जिसको हटाया न जा सके।
- **स्वच्छंदता** : अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करना।
- **क्षत–विक्षत** : नष्ट होना।
- **लालित्य** : सुंदर।
- **पूर्वाग्रह** : पहले से ही तय किये गये मत के प्रति आग्रह।
- **यादृच्छिक** : स्वतंत्र, ऐच्छिक।
- **एकान्विति** : एकत्व।
- **संपृक्ति** : संबद्धता, सटा हुआ।
- **दुरूह** : कठिन।
- **स्वानुभूति** : अपना अनुभव।
- **कवक** : फफूंद, कुकुरमुत्ता।

1. फ्रांस

2. चार

3. (i) आत्माभिव्यंजना (ii) वैचारिकता (iii) शैली

4. (i) व्यक्तित्व का प्रकाशन

   (ii) एकान्विति

   (iii) प्रवाह

   (iv) रागतत्व की प्रधानता

5.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. निबंध क्या है? इसके तत्वों पर विचार प्रकट कीजिए।
2. निबंध की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
3. निबंध लेखन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियों पर प्रकाश डालिए।
4. 'रिपोर्ताज' पर टिप्पणी लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित विषयों में से किन्हीं तीन पर अपने शब्दों में निबंध लिखिए–

1. नारी और समाज
2. हिन्दी कहानी का विकास
3. राष्ट्रभाषा की समस्या
4. विज्ञान और साहित्य
5. अरुणाचल प्रदेश का प्रमुख त्योहार
6. अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजातियां
7. अधजल गगरी छलकत जाय
8. भाषा और संस्कृति
9. दैव दैव आलसी पुकारें
10. भ्रष्टाचार की समस्या
11. धर्म निरपेक्षता और भारत

1. गद्य की पहचान : अरुण प्रकाश, अंतिका प्रकाशन, दिल्ली।
2. हिन्दी विधाएं : स्वरूपात्मक अध्ययन : डॉ बैजनाथ सिंहल, हरियाणा ग्रंथ अकादमी।
3. साहित्यिक निबंध : द्वारिका प्रसाद सक्सेना, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
4. काव्य के रूप : डॉ गुलाब राय।